ISSN : 2350-0441

Shodh Chetna

शोध चेतना

The International Reffered, Reviewed & Multifocal Research Journal

Year - 2 **(Oct. - Dec., 2016)** **Volume - 4**

Chief Advisor
Ajay Srivastava
Librarian, State Central Library, Rewa

Chief Editor
Sushil Kumar Kushwaha

Honourary Editor
Dr. Sanjay Shankar Mishra
Professor and Head, Department of Commerce
Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.)

Editor
Dr. Surya Naryan Gautam
Associate Professor (Sanskrit)
J.J.T. University (Raj.)

Managing Editor
Harsh Kushwaha

- The persons holding the posts of the Journal are not paid any salary or remunaration. The Journal's work is purely academic, non political, posts of Journal are honorary.
- The Journal will be regularly indexed and four issues will be released every year in (January to March) - 1, (Apr. to Jun.) - 2, (July to Sept.) - 3, (Oct. to Dec.) - 4

Editorial Board

Shri Narendra Shashtri
Ved Pravakta, Arya Samaj, **Singapore**

Dr. Umakant Mishra
Prof. & HOD (Sanskrit-Academic)
T.R.S. College, **Rewa**

Dr. D. N. Tripathi
Associate Professor & HOD (Sanskrit)
Dharma Samaj P.G. College, **Aligarh**

Dr. Narendra Kumar Gupta
Professor, Department of Law
Himachal Pradesh University, **Shimla**

Dr. (Major) Vibha Srivastava
Professor & Head, Department of History
Govt. Girls P.G. College, **Rewa (M.P.)**

Dr. Sudha Soni
Prof. Department of History
Govt. Girls P.G. College, **Rewa**

G.H. PUBLICATION
121, Shahrarabag, Allahabad-211 003
e-mail : ghpublication@gmail.com
website : www.ghpublication.com

© *Publishers*

Registration Fee : **Rs. 1300.00**

Membership Fee :

Single Copy **Rs. 350.00 (Individual)**

Rs. 500.00 (Institution)

Annual (4 Issues) **Rs. 2000.00 (Institution)**

Life Member Fee **Rs. 5000.00**

Mode of Payment :

DD/Cheque/Cash should be sent in favour of

G. H. PUBLICATION
Union Bank of India
Chowk, Allahabad-211 003
A/c. No. 394301010122432
IFSC-UBIN 0539431

SUBJECT EXPERT/ ADVISORY BOARD

Dr. Smt. Poonam Mishra (History)
Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.)

Dr. Rajendra Prasad Chaturvedi
Prof. & HOD (Sanskrit)
Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.)

Dr. Dinesh Kumar Singh (Botany)
J.J.T. University (Raj.)

Mr. Vineet Kumar Gupta (English)
Govt. Acharya Sanskrit College
Alwar (Rajasthan)

Dr. Vinod Tiwari (Law)
Rajeev Gandhi Law College, Bhopal (M.P.)

Prof. Ratan Lal Bhojak (Education)
Principal, B.T.T. College
Sardar Sahar, Churu (Raj.)

स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक : सुशील कुमार कुशवाहा द्वारा 'शोध चेतना', जी.एच. पब्लिकेशन, 121 शहरारा बाग, इलाहाबाद-211 003 से प्रकाशित एवं श्री विष्णु आर्ट प्रेस, 332/257, चक जीरो रोड, इलाहाबाद-3 से मुद्रित। प्रधान संपादक : सुशील कुमार कुशवाहा, (M) 09329225173, 9532481205, E-mail : ghpublication@gmail.com website : www.ghpublication.com

जनरल में प्रस्तुत विचार और तथ्य लेखक का है, जिसके विषय में प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक मंडल सहमत हो, आवश्यक नहीं। सभी विवादों का न्यायिक क्षेत्र इलाहाबाद रहेगा।

विशेष आवश्यक सूचना

आपको सूचित करते हुए हमें हर्ष की प्रतीति हो रही है कि
हमारी त्रैमासिक, अन्तर्राष्ट्रीय पंजीकृत पत्रिका

''शोध-चेतना''

में प्रकाशित माननीय लेखकों के शोध-पत्र विभिन्न विश्वविद्यालयों
(केन्द्रीय/राज्य), महाविद्यालयों (शासकीय/अशासकीय),
शैक्षणिक संस्थानों एवं अन्य बौद्धिक मठों, आश्रमों/शोध-संस्थानों
के पुस्तकालयों में अनवरत् रूप से भेजी जा रही है जिससे,
इन शोध दृष्टियों से

'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'

का

उद्देश्य पूर्ण हो सके।

...प्रकाशक

आज ही आदेश करें।

अप्रकाशित मौलिक शोध-पत्र, शोध प्रबन्ध, पुस्तक समीक्षा एवं
पुस्तकों के प्रकाशन हेतु सम्पर्क करें :-

जी.एच. पब्लिकेशन

121, शहराराबाग, इलाहाबाद-211 003
e-mail : ghpublication@gmail.com
Ph. : 0532-2563028 (M) 09329225173

सम्पादकीय

विन्ध्य के सपूत स्व. यमुना प्रसाद शास्त्री

रीवा जिले के सूरा नामक गाँव में 12 जून, 1927 को (भीमसेनी एकादशी तिथि को) विन्ध्येश्वरी प्रसाद पुरानिक के घर महान् समाजवादी, त्यागी तथा संघर्ष की प्रतिमूर्ति श्री यमुना प्रसाद शास्त्री का जन्म हुआ। जब शास्त्री जी कुछ बड़े हुए तब आपकी शिक्षा की शुरुआत गाँव से लगे दूसरे धवैया नामक गाँव की निजी पाठशाला से हुई। आठवीं तक इस क्षेत्र में विद्यालय न होने के कारण आपको अध्ययन के लिए रीवा आना पड़ा। रीवा में रहते हुए आप विद्यालयीन सभी कक्षाएँ प्रथम श्रेणी और प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण करते रहे। शास्त्री जी जब कक्षा तीन में अध्ययनरत थे तभी संस्कृत व्याकरण का अच्छा ज्ञान हो गया था। सन् 1936 में जब शास्त्री जी रीवा पहुँचे तभी उनके जीवन में आमूलचूल परिवर्तन दिखायी देने लगे थे। वे अपने निर्धारित पाठ्यक्रम के साथ–साथ अन्त्याक्षरी आदि कार्यक्रमों में भी बढ़–चढ़ कर भाग लिया करते थे। यह थी विद्यालयी जीवन की कहानी।

इसके बाद शास्त्री जी महाविद्यालयीन जीवन में ही आजादी की क्रान्ति में भाग लेने लगे और 1942 में गांधी जी द्वारा चलाये जा रहे ''अंग्रेजों भारत छोड़ो'' क्रान्ति को विन्ध्यक्षेत्र में निर्णायक मोड़ तक पहुँचाने में अहम भूमिका निभाने लगे थे।

आजादी के बाद आपने जयप्रकाश नारायण द्वारा संस्थापित सोशलिस्ट पार्टी के ध्वज के तले अपनी सेवाएँ देने का संकल्प लिया और अन्त तक उसकी सेवा की। रीवा लोकसभा से सांसद के रूप में निर्वाचित होने के बाद आप सदन में निर्भीक तथा ओजस्वी वक्ता के रूप में जाने जाते रहे हैं।

आपने गोवा आन्दोलन में मुख्य भूमिका निभाई तथा वहीं आपकी दोनों आखें खराब हो गईं। नेत्रहीन जीवन में भी आपने अपने को कभी कमजोर नहीं माना और न ही किसी को अपना सहारा बनाया। बल्कि जीवन के उन कठिन दिनों में भी आप निरीहजनों का सहारा बनते रहे।

आपने राजनीति के माध्यम से जहाँ विन्ध्यक्षेत्र में अनेकों संसाधनों को जनता के लिए जुटाया वहीं शिक्षा के क्षेत्र में महान योगदान भी दिया। आपने रीवा में मूकबधिर विकलांग महाविद्यालय, सेमरिया और सिरमौर तहसीलों में महाविद्यालयों की स्थापना की। सूरा, मऊ, महमूदपुर और चचाई गाँवों में उच्च. माध्य. विद्यालयों की स्थापना की।

इसके अलावा भी आपने जहाँ विद्यालयों की स्थापनाएँ की थी आज उनके अनुयायियों द्वारा उनके नाम से संचालित किया जा रहा है। आपकी लोकप्रियता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि, भाजपा सरकार में रीवा जिले में बने ओवर ब्रिज का निर्माण भी आपके नाम पर किया गया है। आपका चिंतन सदा पार्टी और राजनीति से ऊपर उठकर रहा है। आप सच्चे अर्थों में समाजवाद और लोकतन्त्र के पुजारी रहे हैं। गणतन्त्र दिवस की पावनवेला में विन्ध्य के समस्त नागरिकों की ओर से आपका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए **'शोध चेतना'** का यह **द्वितीय वर्ष** का **चतुर्थ पुष्प** आपको सादर समर्पित है।

–डॉ. सूर्यनारायण गौतम

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4
ISSN : 2350-0441

अनुक्रम

अंग्रेजी विभाग

1. **MORPHOLOGICAL AND BIOCHEMICAL RESPONSES OF CHICKPEA (CV. P-391) GROWN ON FLY ASH AMENDED SOIL IN PRESENCE AND ABSENCE OF *Meloidogyne incognita and Rhizobium leguminosarum*** **11-18**
Navneet Sharma
Dinesh Kumar Singh

2. **PROBLEMS OF MARKETING IN AGRO-BASED INDUSTRIES, REWA DISTRICT** **19-25**
Dr. Sanjay Shankar Mishra
Dr. Sanjay Pathak

3. **HUMAN RESOURCE CONDITIONS AND EMPLOYER'S MOTIVAION IN SBI AND ICICI BANKS** **26-34**
Indu Singh
Dr. Rafiqur Rehman

4. **HAND-PAINTED TEXTILES EXPRESSING EPIC ART : KALAMKARI** **35-37**
Ankita Agarwal
Dr. Indira Agrawal

5. **THE DIVERSITY OF THRIPS SPECIES (THYSANOPTERA : THRIPIDAE) EFFECT ON ONION CROP, ALLIUM CEPA IN DISTRIC ALIGARH** **38-44**
Neetu Singh
Virendra Kumar

6. **ROLE OF INFORMATION TECHNOLOGY SERVICES IN EDUCATION LIBRARIES** **45-48**
Tej Pratap Singh

7. **"PANNA TIGER RESERVE MANAGEMENT AND SOCIAL PER SPECTIVES** **49-52**
Pushpendra Singh
Neerja Khare

8. **SOME WILD PLANTS ARE USED AS FOOD MATERIAL BY THE TRIBES OF DEOSAR** **53-56**
I.P. Kumhar
R.L. Patel
Prabha Prajapati

हिन्दी विभाग

9.	**बाल दुर्व्यवहार के कारण** प्रो. डॉ. विनोद कुमार तिवारी, वीरेन्द्र कुमार तिवारी	**57-62**
10.	**नागौद राज्य के शासकों का कला में योगदान** डॉ. सुधा सोनी	**63-66**
11.	**आर्यावर्तीय पर्वत एवं कालिदास : एक भौगोलिक अध्ययन** डॉ. शीलेन्द्र कुमार पाठक	**67-70**
12.	**अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में रक्षा समझौतों के नये आयाम** डॉ. रोहित कुमार तिवारी	**71-76**
13.	**''हितोपदेश में प्रतिपादित आत्मबोधक तत्त्व : एक अनुशीलन''** डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी, बाला प्रसाद विश्वकर्मा	**77-79**
14.	**वाल्मीकि रामायण में वर्णित राजा की स्थिति एवं महत्व** डॉ. संध्या कुमारी	**80-83**
15.	**प्रो. अनिल सिंह के काव्य में जीवन मूल्य** प्रो. सुरेन्द्र बहादुर सिंह	**84-87**
16.	**''21वीं सदी के उभरते परिदृश्य में महिलाओं का योगदान''** डॉ. गीता तिवारी	**88-90**
17.	**वाल्मीकि रामायण और अर्थालंकार** अनामिका चतुर्वेदी	**91-93**
18.	**महिलाओं में मतदाता जागरूकता (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में)** डॉ. गायत्री मिश्रा, संजली गुप्ता	**94-101**
19.	**गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि में श्रीराम** डॉ. वाल्मीकि प्रसाद मिश्र	**102-105**
20.	**कोरिया जिला एवं पर्यटन विकास की सम्भावनाएँ** डॉ. श्रीमती आरती तिवारी, कु. रजनी सेठिया	**106-108**
21.	**भवन निवेश की प्राचीनता और महत्ता** डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी, डॉ. कृष्णा मिश्रा	**109-114**
22.	**रीवा एवं शहडोल संभाग में पर्यटन स्थलों का विकास** डॉ. के. के. शर्मा, मुकेश कुमार तिवारी	**115-121**
23.	**''भारत में कुपोषण की समस्या एवं निदान''** डॉ. गोकुल प्रसाद द्विवेदी, विजय शंकर चौधरी	**122-131**

24.	**पंचायती राज में महिलाओं का योगदान** डॉ. प्रवीर चन्द्र दुबे	**132-133**
25.	**रीवा जिले में जनसंख्या जनांकिकीय प्रवृत्तियाँ** डॉ. एम.एल. तिवारी, सीमा दुबे	**134-137**
26.	**गरीबों के विकास में स्वसहायता समूह की भूमिका** डॉ. अनुपम सिंह	**138-140**
27.	**भारतीय समाज की सुसंस्कृत संरचना में साहित्य का योगदान** डॉ. रेखा रानी	**141-144**
28.	**कबीर तथा गोरखनाथ की कविताओं में सामाजिक चेतना का तुलनात्मक अध्ययन** नलनी वर्मा	**145-148**
29.	**विश्वविद्यालय पंचवर्षीय योजना के अनुदानों के व्यय का विश्लेषण** पंकज सिंह तिवारी	**149-152**

संस्कृत विभाग

30.	**महाभारते सत्यात्मको धर्मः** डॉ. उमाकान्त मिश्र	**153-155**
31.	**श्रुतं नोगोपाय वेदार्थावगमने आचार्ययास्कस्ययोगदानम्** डॉ. द्वारिका नाथ त्रिपाठी	**156-161**
32.	**''धातुकाव्ये कारकसमासयोः समीक्षणम्''** डॉ. रावेन्द्र कुमार मिश्र	**162-167**
33.	**सुसंगत कृषि विकास हेतु नवीनतम तकनीकें** शिव प्रसाद विश्वकर्मा, एस. पी. वर्मा	**169-172**
34.	**VERMICOMPOSTING AND ITS IMPORTANCE : A REVIEW** Dr. S.P. Verma	**173-181**
35.	**HUMAN RIGHTS, IMMIGRATION AND HAPPINESS** Dr. Sheetla Prasad Verma	**182-185**
36.	**कौशल पलायन की समस्याएँ** डॉ. जे.पी. सिंह	**186-188**

ISSN : 2350-0441

इस भौतिक जगत में हर व्यक्ति को
किसी-न-किसी प्रकार के
कर्म में
प्रवृत्त होना पड़ता है।
किन्तु
ये कर्म ही
उसे इस जगत से
बाँधते या मुक्त कराते हैं।
निष्काम भाव से परमेश्वर की प्रसन्नता
के लिए कर्म करने से
मनुष्य कर्म के नियम से
छूट सकता है और आत्मा
तथा परमेश्वर विषयक
दिव्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

कर्मयोग-गीता

वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है।
वेद का पढ़ना-पढ़ाना
तथा
सुनना-सुनाना
सब आर्यों का परम धर्म है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

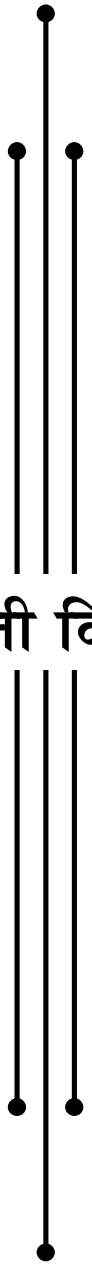

अंग्रेजी विभाग

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

MORPHOLOGICAL AND BIOCHEMICAL RESPONSES OF CHICKPEA (cv. P-391) GROWN ON FLY ASH AMENDED SOIL IN PRESENCE AND ABSENCE OF *Meloidogyne incognita and Rhizobium leguminosarum*

❐ **Navneet Sharma***
❐ **Dinesh Kumar Singh****

ABSTRACT

Increase in the growth, yield and protein contents of chickpea at lower level (20% and 40%) of fly ash but reverse was true at higher level (80% and 100%) soil amended in 60% fly ash could cause suppression in growth and yield in respect to 40% fly ash treated chickpea plant but former was found at par with controlled fly ash untreated plant. Maximum growth occurred in plants growth in soil amended with 40% fly ash, nitrogen contents of chickpea was suppressed progressively increasing level of fly ash. Moreover Rhizobium leguminosarum influenced the growth and yield positively out Meloidogyneincongita used opposite effects particularly at 20% and 40% fly ash levels. The positive effects of R. leguminoarum were marked by M. incognita at initial levels. However at 80% and 100% fly ash levels the positive and negative effects of R. leguminosarum and/or M. incognita did not appear as insignificant difference persist among such treatment.

Key words : *Meloidogyne incognita, Rhizobium leguminosarum, fly ash, growth, yield.*

* Section of Environmental Nematology, Department of Botany, J.J.T. University, Jhunjhunu (Rajasthan), India, E-mail : navneetp218@gmail.com

** Section of Environmental Nematology, Department of Botany, J.J.T. University, Jhunjhunu (Rajasthan), India, E-mail : singhdk.singh955@gmail.com

Fly ash is one of the major particulate air pollutant and is a major problem in the developing countries like India. It is mainly produced by the thermal power plants and other industries using coal as fuel. Its deposition on the soil and foliage causes varied responses of the plants depending upto its level of deposition. Not much is known about the effect of fly ash on growth and yield of Cicerarietinum particularly on root-knot nematode infected plant in presence or absence of root nodule bacteria. Although some studies have been conducted at different research centres with regard to this effect (Siddiqui and Singh, 2005; Singh et al., 2010) but they are not sufficient to make the systematic generalization. This section has considered the impact of thermal power plant originated fly ash on the growth and yield of Meloidogyne incognita race 1 infected chickpea plant under the artificial treatment conditions with or without the presence of Rhizobium and leguminosarum.

Materials and Methods

The autoclaved field soil and fly ash (obtained from thermal power plant, Kasimpur, Aligarh, India) were mixed with field soil in order to obtain 20, 40, 60, 80 and 100% levels. These mixtures were filled in 30 cm diameter clay pots and surface sterilized seeds (dipped in 0.01% HgCl2 for 15 minutes) of Cicerarietinum cv. P-391 (chickpea) were sown in the pots and simultaneously inoculated with Rhizobium leguminosarum. Three week-old seedlings were inoculated with freshly hatched 2nd stage juveniles of M. incognita. The following were the treatments in the experiment.

Control

Plant + 4000g soil+ Nil fly ash
Plant + 4000g soil+ R. leguminosarum
Plant + 4000g soil+ Nematode (=M. incognita)
Plant + Rhizobium + Nematode

Fly ash treatment

Plant + Fly ash (20%) = 800g fly ash + 3200g soil
Plant + Fly ash (20%) = Rhizobium
Plant + Fly ash (20%) = Nematode
Plant + Fly ash (20%) + Nematode + Rhizobium
Plant + Fly ash (40%) = 1600g fly ash + 2400g soil
Plant + Fly ash (40%) = Rhizobium
Plant + Fly ash (40%) = Nematode
Plant + Fly ash (40%) + Nematode + Rhizobium
Plant + Fly ash (60%) = 2400g fly ash + 1600g soil
Plant + Fly ash (60%) = Rhizobium
Plant + Fly ash (60%) = Nematode
Plant + Fly ash (60%) + Nematode + Rhizobium
Plant + Fly ash (80%) = 3200g fly ash + 800g soil
Plant + Fly ash (80%) = Rhizobium
Plant + Fly ash (80%) = Nematode
Plant + Fly ash (80%) + Nematode + Rhizobium
Plant + Fly ash (100%) = 4000g fly ash + Nil soil
Plant + Fly ash (100%) = Rhizobium
Plant + Fly ash (100%) = Nematode
Plant + Fly ash (100%) + Nematode + Rhizobium

Each treatment was replicated five times. After the termination of the experiment (120 days after sowing), lengths and dry and fresh weights of shoot and root were determined as per procedure. Number of flowers and fruits were counted at 10 day intervals in the last two months of the experiment and an average was calculated. Amount of chlorophyll (a, b and total) and carotenoid contents were calculated by using the method given by MacKinney (1941) and MacLachlan and Zalik (1963), respectively. Moreover, protein (soluble, insoluble and total) and nitrogen contents were determined by employing Lowry et al. (1951) and Linder (1944) methods, repsecitvely.

All the data were analysed by using Fischer (1950) factorial method. Treatments with fly ash were considered as factor one (F1) and treatments with root-knot nematode and/or root-nodule bacteria were considered as factor two (F2). This way three CD (i.e. F1=, F2and F1 x F2) were calculated by putting the data to Analysis of Variance Table.

Results and Discussion

Fly ash variably affected the plant growth (length, fresh and dry weights of shoot and root), yield (flowering and fruiting), pigments (chlorophyll a, b and total and carotenoids), protein (soluble, insoluble and total) and nitrogen contents of chickpea. Chickpea plants showed enhanced plant growth and yield in soils amended with 20 and 40% fly ash (Tables 1-4). Utilizable plant nutrients are found in fly ash (Druzinaet al., 1983) and its addition can enrich the soil in macro and micro-nutrients which may have favourable effect on crop productivity (Martens and Beahm, 1978). Addition of fly ash to soil can neutralize soil acidity and can increase ion exchange capacity, water holding capacity and pore size (Elseewi et al., 1981), which may ameliorate plant growth and yield. These factors may have played some role in improving the growth and biomass of the chickpea plants. Improvements in plant leaf pigments (chlorophylls and carotenoids) and protein of seeds were also recorded at 20 and 40% being maximum at 40% level (Tables 5-7), further increase in the fly ash level caused suppression in growth, yield and pigments of chickpea. It is indicated that the changes exerted by fly ash 40% level in the physico-chemical characteristics of soil were optimal for chick-pea crop which was evident from the improved plant growth and yield and enhanced leaf pigments and protein contents.

Higher levels of fly ash (60,80 and 100%) were harmful for plant growth of chick-pea. However, at 60% fly ash level, suppression to growth and other parameters occurred in comparison to 40% treatment but still the parameters were at par to the control (i.e,fly ash untreated plants). Fly ash contains some toxic compounds life dibenzofuran and dibenzo-p-dioxime (Helderet al., 1982). At 60,80 and 100% fly ash level, concentration of these substances may have exceeded three threshold limit for chick-pea causing adverse effects on plant growth, yield, leaf pigment

and protein contents of seeds.High alkalinity and excess of salts and nutrients in soil (Adrianoet al., 1980) may also have contributed towards the poor performance of chick-pea an 60.80 and 100% fly ash levels.

Plant growth and other characters of chick-pea with root nodule bacteria at 20 and 40% levels wererelativelybetter than non-nodulated plants. Thisimprovements was comparatively less in the presence of M. incognita. Chick-pea plants inoculated with R.leguminosarum and M.incognita in fly ash treatments (20and40%) showed a significant enhancement in all the parameters as compared to the inoculated plants grown in non-amended soils. These effects were, however, reduced at 60% fly ash level. The differences in plant growth, yield etc. of nematode and bacteria inculated plantsIn 100% fly ash level were non-significant. So, it is obvious that mutual effects of R. leguminosarum and M. incognita were adversely effected by higher levels of fly ash particularly at 100% fly ash. Higher levels of fly ash, due to accumulation of toxic substances, may have suppressive effect for microbial activity (Wong and Wong, 1986) like root nodule bacteria and root-knot nematode (Singh et al.,1994).

Nitrogen content of leaves of chick-pea were progressively decreased with an increase in fly ash level (table 8). Adverse effect on nitrogen content may have resulted from the absence of nitrogen in fly ash (Mishra and Shukla, 1986). The reduction reported by Khan et al (1988) and accumulation of heavy metals (Eiceman and Vandiver, 1983) in soils amended with fly ash. Plant growth, yield, leaf pigments and dead protein might be effected adversely through poor nitrogen availability in fly ash amended soils.

Reduction in nitrogen content of chickpea leaves was comparatively less in the presence of root-nodule bacteria. The reverse was true in presence of M. incognita. Root-nodule bacteria and root-knot nematode both together could cause more reduction in nitrogen content than in plants inoculated with R. leguminosarum. Singh et al (1994) have also reported that in soyabean, nitrogen content was decreased gradually with an increase in the fly ash concentration.

The study showed that fly ash amendment of soil was beneficial for plant growth and yield of chickpea at 20 and 40% being maximum at 40% level, in presence or absence of M. incognita and/or R. leguminosarum. At the initial (20 and 40%) levels, the beneficial effects of fly ash were suppressed by the presence of M. incognita but reverse was true with root-nodule bacteria. However, fly ash at the higher levels (80 and 100%) suppressed the positive effects of R. leguminosarum and also increased the negative effects of M. incognita.

Acknowledgements: The authors are thankful to Department of Science and Technology , Government of India for providing financial assistance.

Table 1. Effect of fly ash (P) on length of shoot and root of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Shoot length (cm)							Root length (cm)						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	30.30	36.25*	39.68*	32.70*	28.28ns	24.96ns	32.03	12.26	15.75*	20.95*	13.62*	10.95ns	8.65ns	13.70
P+R	39.17*	43.18*	46.32*	40.62*	34.78*	29.32ns	38.90@	16.85*	19.35*	24.60*	17.32*	14.86*	12.85ns	17.64@
P+Mi	25.72ns	30.65ns	35.74*	28.32ns	25.36ns	23.74ns	28.26@	9.46ns	13.70*	17.25*	11.60ns	8.40ns	6.90ns	11.22@
P+R+Mi	29.00ns	34.58*	39.36*	31.89*	27.74ns	24.86ns	31.24@	14.60*	16.30*	20.50*	14.80*	11.87ns	9.55ns	14.60@
MM	31.05	36.17#	40.28#	33.38#	29.04#	25.72#		13.29	16.28#	20.83#	14.34#	11.52#	9.49#	

CD at P=0.05, Treat = 0.654; Fly ash = 0.534; Treat x Fly ash = 1.308 Treat = 0.305, Fly ash = 0.249; Treat x Fly ash = 0.611

Table 2. Effect of fly ash (P) on fresh weight of shoot and root of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Shoot fresh weight (g)							Root fresh weight (g)						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	35.21	38.47*	40.19*	36.47ns	33.70ns	30.54ns	35.76	23.90	27.74*	25.48*	24.21ns	23.20ns	22.84ns	24.56
P+R	47.72*	49.40*	50.24*	48.04*	42.74*	33.04ns	45.20@	28.67*	29.04*	30.47*	28.87*	27.90*	24.10ns	28.18@
P+Mi	28.75ns	30.67ns	33.79ns	29.17ns	28.70ns	28.54ns	29.94@	21.37ns	23.42ns	24.22ns	21.94ns	21.24ns	21.80ns	22.33@
P+R+Mi	39.20*	40.17*	40.98*	38.87*	35.72ns	32.14ns	37.85@	26.12*	26.20*	26.68*	26.22*	25.04*	24.17ns	25.74@
MM	37.72	39.68#	41.30#	38.14ns	35.22#	31.07#		25.02	26.60#	26.71#	25.31ns	24.35#	23.23#	

CD at P=0.05, Treat = 0.746; Fly ash = 0.609; Treat x Fly ash = 1.492 Treat = 0.486, Fly ash = 0.397; Treat x Fly ash = 0.973

Table 3. Effect of fly ash (P) on dry weight of shoot and root of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Shoot dry weight (g)							Root dry weight (g)						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	9.18	10.10*	11.47*	10.14*	9.04ns	8.98ns	9.82	5.98	6.77*	7.54*	6.04ns	5.77ns	5.12ns	6.20
P+R	11.93*	12.94*	13.88*	12.17*	11.03*	9.67*	11.94@	8.23*	9.17*	10.15*	8.94*	7.98*	6.74*	8.54@
P+Mi	7.12ns	8.87ns	9.07ns	10.04*	6.99ns	6.74ns	8.14@	4.10ns	5.10ns	6.04ns	4.97ns	4.01ns	4.00ns	4.70@
P+R+Mi	10.86*	10.97*	11.98*	10.09*	9.72*	8.82ns	10.41@	7.14*	7.82*	8.47*	7.01*	6.90*	6.25ns	7.27@
MM	9.77	10.72#	11.60#	10.61#	9.20#	8.55#		6.36	7.22#	8.05#	6.74#	6.17#	5.53#	

CD at P=0.05, Treat = 0.201; Fly ash = 0.164; Treat x Fly ash = 0.402 Treat = 0.138, Fly ash = 0.113; Treat x Fly ash = 0.276

Table 4. Effect of fly ash (P) on number of flowering and fruiting of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Flowering							Fruiting						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	25.10	30.20*	35.40*	27.25*	23.40ns	18.70ns	26.68	22.15	27.30*	32.25*	26.50*	20.70ns	12.50ns	23.57
P + R	32.20*	38.15*	48.05*	35.06*	28.43*	21.30ns	33.87@	30.65*	36.20*	45.15*	33.45*	25.17*	16.80ns	31.24@
P +Mi	22.40ns	25.40ns	30.12*	23.13ns	20.20ns	16.18ns	22.91@	20.75ns	23.12ns	27.40*	21.20ns	16.70ns	10.75ns	19.99@
P + R + Mi	26.45*	29.06*	36.05*	28.23*	24.20ns	19.20ns	27.20ns	24.60*	27.00*	33.12*	26.18*	20.23ns	13.55ns	24.13@
MM	26.54	30.70#	37.41#	28.42#	24.06#	18.85#		24.54	28.41#	34.48#	26.83#	20.70#	13.43#	

CD at P=0.05, Treat = 0.576; Fly ash = 0.470; Treat x Fly ash = 1.152 Treat = 0.538, Fly ash = 0.439; Treat x Fly ash = 1.076

Table 5. Effect of fly ash (P) on chlorophyll a and b of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Chlorophyll a (mg/g)							Chlorophyll b (mg/g)						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	0.994	1.052*	1.252*	1.120*	0.934ns	0.823ns	1.029	0.857	0.923*	1.142*	0.830ns	0.798ns	0.683ns	0.872
P + R	1.134*	1.502*	1.577*	1.227*	1.008ns	0.829ns	1.213@	0.984*	1.192*	1.322*	1.004*	0.933*	0.704ns	1.023@
P +Mi	0.728ns	0.907ns	1.057*	0.823ns	0.775ns	0.765ns	0.843@	0.639ns	0.723ns	1.004*	0.704ns	0.620ns	0.620ns	0.718@
P + R + Mi	0.897ns	0.456ns	1.214*	0.910ns	0.899ns	0.833ns	0.868@	0.844ns	0.921*	1.140*	0.883ns	0.794ns	0.623ns	0.868ns
MM	0.938	0.979#	1.275#	1.020#	0.904#	0.813#		0.831	0.940#	1.152#	0.855#	0.786#	0.658#	

CD at P=0.05, Treat = 83.876; Fly ash = 68.485; Treat x Fly ash = 167.752 Treat = 0.042, Fly ash = 0.034; Treat x Fly ash = 0.084

Table 6. Effect of fly ash (P) on total chlorophyll and carotenoid content of leaves of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Total chlorophyll (mg/g)							Carotenoid (mg/g)						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	1.950	2.154*	2.433*	2.133*	2.004ns	1.487ns	2.027	0.493	0.507ns	0.712*	0.490ns	0.429ns	0.395ns	0.504
P + R	2.217*	2.738*	2.938*	2.337*	2.003ns	1.452ns	2.281@	0.537*	0.612*	0.699*	0.580*	0.510ns	0.419ns	0.560@
P +Mi	1.472ns	1.732ns	2.154*	1.944ns	1.437ns	1.451ns	1.698@	0.386ns	0.427ns	0.511ns	0.396ns	0.362ns	0.320ns	0.400@
P + R + Mi	1.841ns	2.124*	2.430*	2.124*	1.635ns	1.437ns	1.932@	0.419ns	0.502ns	0.701*	0.421ns	0.419ns	0.397ns	0.477@
MM	1.870	2.187#	2.489#	2.135#	1.770#	1.457#		0.459	0.512#	0.656#	0.472#	0.430#	0.383#	

CD at P=0.05, Treat = 0.0403 Fly ash = 0.0329; Treat x Fly ash = 0.0805 Treat = 0.0099, Fly ash = 0.0081; Treat x Fly ash = 0.0198

Table 7. Effect of fly ash (P) on soluble and insoluble protein contents of seeds of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Soluble protein (%)							Insoluble protein (%)						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	13.19	13.74*	13.87*	13.16ns	12.84ns	12.08ns	13.15	15.62	16.12ns	16.94*	15.68ns	14.60ns	13.98ns	15.49
P+R	14.24*	14.36*	14.57*	14.12*	13.93*	12.10ns	13.89@	16.67*	16.96*	17.38*	16.70*	15.14ns	13.87ns	16.12@
P+Mi	12.79ns	13.04ns	13.53ns	12.82ns	12.07ns	12.02ns	12.71@	14.91ns	15.90ns	16.14ns	14.97ns	14.21ns	13.83ns	14.99@
P+R+Mi	13.04ns	13.00ns	13.21ns	13.08ns	12.80ns	12.10ns	12.87@	15.66ns	16.43*	17.99*	15.69ns	14.58ns	13.90ns	15.71ns
MM	13.32	13.54#	13.80#	13.30ns	12.91#	12.08#		15.72	16.35#	17.11#	15.76ns	14.63#	13.90#	

CD at P=0.05, Treat = 0.251Fly ash = .0.205; Treat x Fly ash = 0.503 Treat = 0.298, Fly ash = 0.244; Treat x Fly ash = 0.597

Table 8. Effect of fly ash (P) on total protein content of seeds and nitrogen content of leaves of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Total protein (%)							Nitrogen (%)						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	28.81	29.86ns	30.81*	28.84ns	27.44ns	26.06ns	28.64	446	3.96ns	3.16ns	2.96ns	2.66ns	2.48ns	3.28
P+R	30.91*	31.32*	31.95*	30.82*	29.07ns	25.97ns	30.01@	5.91*	4.91*	4.03ns	3.92ns	3.09ns	2.57ns	4.07@
P+Mi	27.70ns	28.94ns	29.67ns	27.79ns	26.28ns	25.85ns	27.71@	4.33ns	3.87ns	3.09ns	2.89ns	2.59ns	2.38ns	3.19@
P+R+Mi	28.70ns	29.43ns	31.20*	28.77ns	27.38ns	26.00ns	28.58ns	5.02*	4.12ns	3.32ns	3.04ns	2.71ns	2.38ns	3.43@
MM	29.03	29.89#	30.91#	29.06ns	27.54#	25.97#		493	4.22#	3.40#	3.20#	2.76#	2.45#	

CD at P=0.05, Treat = 0.549,Fly ash = . 0.449; Treat x Fly ash = 1.099 Treat = 0.074, Fly ash = 0.061; Treat x Fly ash = 0.149

* = data significant with 0% fly ash and at P treatment only at P = 0.05
ns = Not significant
@ = data significant within a column at P=0.05
# = data significant in a raw at P =0.05
P = chickpea plant, R = *Rhizobium leguminosarum*, Mi = *Meloidogyne incognita*

References

Adriano, D.C., A.L. Page, A.L. Elseewi, A.C. Chang and J.A. Straughan, 1980. Utilization and disposal of fly ash and other coal residues in terrestrial ecosystems: A review. J. Environ. Qual. 9: 333-344.

Druzina, V.D., E.D. Miroshracheuko and O.D. Chertov, 1983.Effect of industrial pollution on nitrogen and ash content in meadow phyto-coenotic plants.BotanizhnylZhurnal. 68: 1853.

Eiceman, G.A. and V.J. Vandiver, 1983. Absorption of polycyclic aromatic hydrocarbons on fly ash from a municipal incinerator and a coal fired power plant. Atmos Environ. 15: 247-259.

Elseewi, A.A., S.R. Grimm, A.L. Page and I.R. Straughan. 1981. Boron-enrichment of plants and soils trated with coal ash. J. Plant Nutr. 3: 409-427.

Fischer, R.A. 1950. Statistical Methods for Research Workers (11thed.) Oliver and Boyd, Edinburgh.

Helder, T., E. Stutterheim and K. Olie. 1982. The toxicity and toxic potential of fly ash from municipal incinerators assessed by means of a fish early life stage test. Chemosphere 11: 965-972.

Khan, M.R. and M.W. Khan 1996.The effect of fly ash on plant growth and yield of tomato.Environ. Pollution 92: 105-111.

Khan, M.R., S.K. Singh and M.W. Khan. 1988. Response of lentil to cobalt as soil pollutant. Ann. Appl. Biol. (Supplement) TAC-9: 103-104.

Linder, R.C. 1944. Rapid analytical methods for some of the more common inorganic constituents of plant tissue.Plant Physiol. 19: 76-89.

Lowry, O.H., M.J. Rosebrough, A.L. Farr and R.J. Randoll. 1951. Protein measurement with folin phenol reagent. J. Biol. Chem. 193: 265-275.

Mackinney, G. 1941. Absorption of light of chlorophyll solution.J Biol. Chem. 140: 315-322.

Maclachlan, S and S Zalik. 1963. Plastid structure, chlorophyll concentration and free amino acid composition of chlorophyll mutant of barley. Can. J. Bot. 41: 1053-1062.

Martens, D.C. and B.R. Beahm. 1978. Chemical effects on plant growth of fly ash incorporation into soil. In: Environmental Chemistry and Cycling Processes. EDRA, Symp. Ser. Conf. 760429, U.S. Dept. Commerce, Springfield, V.A., USA.

Mishra, L.C. and K.N. Shukla 1986.Effects of fly ash deposition on growth metabolism and dry matter production of maize and soyabeanEnviron.Pollution. 42: 1-13.

Siddiqui, ZA. And Singh, L.D. 2005. Effects of fly ash, Pseudomonas striata and Rhizobium on the reproduction of nematode Meloidogyne incognita and on the growth and transpiration of pea Journal of Environmental Biology, 26/ 1: 117-122.

Siddiqui, Z.A. and Singh, L.P. 2005. Effects of fly ash and soil microorganisms on plant growth, photosynthetic pigments and leaf blight of wheat. Zeitschrift Fur Pflanzenkrakheiten and Pflanzenshutz, 112(2): 146-155.

Singh, K., M.W. Khan and M.R. Khan. 1994. Growth and root-knot disease of soyabean under the stress of fly ash. In: Emerging Technologies in Environmental Conservation National Symposium (Abs), JamiaHamdard and Eco-Transformation Centre, New Delhi, India.

Singh, K., Khan, A.A., Rizvi, I.R. and Saquib, M. 2010. Morphological and biochemical responses of cowpea (cv. PusaBarsati) grown on fly ash amended soil in presence and absence of Meloidogynejavanica and Rhizobium leguminosarum. Ecoprint, 17: 17-22.

Wong, M.H. and J.W.C. Wong. 1986. Effects of fly ash on soil microbial activity. Environ. Pollution 40: 127-144.

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

PROBLEMS OF MARKETING IN AGRO-BASED INDUSTRIES, REWA DISTRICT

❐ Dr. Sanjay Shankar Mishra*
❐ Dr. Sanjay Pathak**

ABSTRACT

Entrepreneurs are facing many hurdles for smooth running of industries. The number of units are increasing day by day. The owners want to earn sufficient money for running their business. They are not able to give more margins to the retailers. Many salesmen are not happy with the commission. The number of industries are increasing so they are not able to earn more profit margins. The owners provide many concessions to the customers. The entrepreneur sells agro products on credit basis. The roads are not good in rural areas so it very difficult to deliver products timely. The problems also rise due to perishable nature of products. Many enterprises are not financial sound to cross boundary of the district. They are not interested either for target market or market segmentation and are happy in selling in their local markets. There is no proper arrangement for inventory, transport, warehouse and they do not want to adopt modern method of distribution. Fluctuation in the market arises due change in the rate of raw materials. They are not able to make good combination of different tools of promotion. They are not very serious about packaging. Entrepreneurs are not happy with subsidy rate. Many problems arise in obtaining it. The owners provide cash discount for receiving promptly payment. It is difficult to obtain credit from the financial institutes due to cumbersome process of obtaining it and repayment terms are not in favour of owners. They depend on agents for selling their products who search for customers and solve their various

* Professor & Head (Commerce Deptt.), Govt. T. R. S. (Auto.) College , Rewa (M.P.)
** Asst. Prof., Shepa, Varanasi

problems. They use mainly trucks for transportation. Agents are exploiting the owners of rural area. There is no proper marketing channel and marketing organization. Multiplicity of taxes, local taxes is problems for the owners of small scale enterprises. They are also not interested in market research. The owners who are grinding paddy of the government have to give 65 to 68 percent rice according to agreement. The problems arise when quality of paddy is not good. There is different wages and salaries in different small units. The rules in different state are different which also affect cost.

(I) INTRODUCTION

Marketing is important for attracting and retaining customers. In present scenario satisfaction of customer is necessary for running business. Many problems arise in the marketing of the products. Entrepreneurs have to focus on the marketing as there is so many products in the markets. The owners are facing many problems in the markets. More and more new industries are coming so it is not possible to earn maximum profit. Entrepreneurs are bound to provide cash discount for retaining customers. This help in receiving promptly payment and also in bulk selling. Mostly entrepreneurs in this district are dependent on agents for selling their products. The owner has to sold their products on credit and has to provide commission to the agents. This commission effect profit of the enterprises. Entrepreneurs are not interested in marketing. Many of them are not financial sound to cross the boundary of the district or think for advertising. The well known enterprises keep their price less than other for maximizing their sales volume. The fluctuation occurs in the cost of the products due to change in the price of raw materials. The owners are not happy with capital investment subsidy. The procedure of obtaining loan from financial institutes is tough. The repayment terms are not favorable for entrepreneurs. There is shortage of good markets. The industries in rural areas are exploited by agents. They are earning from both purchasers and sellers. There is shortage of cold storage and transport facility. Fluctuations in the electricity create problems in production work. The government is not supporting small units in proper way. The cost of production in small scale enterprises is more which also effect profit of the enterprises. The problems like low quality, faulty organization, poor standard effect marketing. Entrepreneurs are not interested in marketing research. The raw materials are not cheaply available in all seasons for small industries.

(II) LESS PROFIT AND CASH DISCOUNT

The owners of small scale units are facing many problems, though government has formed many policies in favour of them. The small scale industries are increasing day by day. Entrepreneurs want to earn profit from their business. The middlemen are also

increasing day by day in business and they want to earn maximum money. Bakery industries give margin of Rs. 2 and Rs. 1 on bread of Rs. 18 and Rs. 12 respectively to retailers. The percentage of profit is not very high. Salesmen are also not provided sufficient commission. The dal mills sell on margin of 1 to 2 percent. The owners of dairies charge 8 to 11 percent margin. The bakeries who have good reputation in the markets charge around 20% profit margin from customers.

Many agro-based industries provide concessions to customer who purchases in bulk quantity. The owners also give discount for receiving payment promptly. Many rice mills, dal mills and other sells their products on credit basis .Some units focus on quality and not provide any discount. It is found during survey reputed units like good will bakers (bread) provide commission to the salesmen. The jeet industries (flour mill) and bake bihari industries (rice mill and dal mill) situated in udyog vihar industrial area Chorahata provides 1 and 2 percent respectively cash discount to buyers.

(III) DEPENDENCE ON AGENTS

Agents have big role in the agro-based industries. The owners of dal mill are totally depending on them which effect profit of the enterprises. Brokers maintain cordial relationship between purchasers and sellers. They collect payment from buyers and provide to the owners. They also provide information about the markets. The commission rate varies from broker to broker. These commissions affect working of enterprise. The poha mills provide 1percent commission to brokers. The rate of commission also varies from one unit to another. Some rice mill provide commissions of about 5 Rs. per quintal to the brokers while some dal mill give commission of 7Rs. per quintal to brokers. The commission of agent reduce profit of the units. The agents also manage for transportation.

The rice mills in Chorahata industrial area deliver their products in 2 to 3 days. They use trucks for delivering rice. The rice are delivered with six and ten wheeler trucks whose capacity to load is about 9 and 15 tons respectively. When charge of transport increases than profit of the units are affected. Salesmen deliver breads through auto rickshaw, motor cycle or cycle.

(IV) DISTRIBUTION STRATEGY

The owners of agro-based industries are not serious for their distribution purpose. They are not interested in market survey. It is important to keep all information about customers. In Rewa district owners are not interested in market segmentation. They do not want to search potential markets. They are happy in selling products through agents in local and nearby markets.

It is the general habit that people want convenience in purchasing products. The owner of small scale industries not want to adopt new pattern of distribution system. The standard of work is not good in some industries. In this district some owner are fully dependent on agents. They have full trust on them. There is no planning for transportation, inventories and warehouses etc. The middlemen want maximum benefits from owners. The agents demand money from both buyers and sellers. Rice mills, dal mills sell 75 percent products on credit basis.

It is very difficult to sell product of rice mills and dal mills without brokers. They are important because they manage for buyers and charge their commission.

The delivery time of products depends on distance from the industries to the market where to deliver. The popular bakery units like Pasand bread deliver products in long distances like Siddhi district. Breads, biscuits, buns etc are perishable products so they have to deliver in timely. The freshness of products effected due to delay in processing orders. The condition of roads are not good in some area. Delay in delivering of orders create problem for customer. They may purchase product of other brands so there is chance of losing them. When distance between small scale industries and markets increases transaction period of money also affected. The problems arise in marketing due to unavailability of markets. Agents are earning in selling products. Industries in rural area are exploited by them. Some agro-based units are not conscious about quality.

The problems come in marketing because products are not standard quality. In Rewa district many owner of industries have not adequate marketing knowledge and quality system. It is general thing that small scale industries sell their product to large industries due to absence of marketing channel. Small scale units have improper marketing organization.

(V) UNSUITABLE PRICE STRATEGY

It is better to consider situation of markets for pricing products. The owner of small scale units follow traditional method. They focus on competitor's policies and on substitutes. In Rewa district there is lack of integrated approach for pricing strategy. The prominent rice mills keep their prices less than others for obtaining more profits. They want to take steps for the convenient of customers. The broker sells product where they get good rate. There is no stability in the market. Entrepreneurs change rate of products due to change in price of raw material. The rice mills sell 75 percent product on credit basis. In bakeries 30 to 40 percent biscuits sold on credits. Chana and arhar dal are also sold on credit basis. The profit of the units affected due to inability to forecast demand. There is no stability in the price of raw materials hence price fluctuates in market. A large number of people in our country have habit of eating fresh fruits and vegetable so domestic demand of processed foods is not good. There is also lack of infrastructure for the industries in rural area. In many units there are no skilled labour and working capital is required.

(VI) PROMOTIONAL AND CREDIT FACILITIES

Mostly small scale units in Rewa district not produce on large scale. They are not so financial sound to make appropriate combination of different tools of promotion. Many owners are satisfied with their traditional pattern. Some prominent units are planning for advertising.

This is necessary for attracting people as well as provide assurance for quality and quantity. In small scale unit owners not focus on comprehensive policy for packaging purpose. The selection of packaging materials depends on product characteristic, transport, consumer and others. In Rewa district some

owners are not serious about packaging they not think for convenient of customers. Breads, biscuits, buns require proper protection and preservation. Agro products are perishable so there is problem in protecting them. The government provides interest subsidy and capital investment subsidy. There are also some eligibility criteria for obtaining it. Some time clerks not cooperate in office. They have inadequate knowledge of finance management. There is no sound finance planning in industries.

The owners face problem due to unavailability of credit in time. The financial institutions follow many formalities and cumbersome process for providing credit. Entrepreneurs have no information about recent schemes and conditions such as eligibility criteria, repayment term, credit limit, rate of interest and accounting procedure. Some time problem comes in process of production due to short age of funds. Entrepreneurs are not able to take benefit from markets due to lack of marketing knowledge.

The owner of rice and dalmills are not satisfied with government policy. There are no proper roads for prompt delivery and power fluctuation also create problem. The cost of production in small scale industries are higher than large scale industries due to difference in availability of machines. They are not able to sell heavily due to shortage of advertisements.

Traditional methods of production are followed in mostly small scale industries. In Rewa district about 10 to 15 percent of the food grains are lost due to obsolete technology. There are no good training facilities in the small scale industries. Multiplicity of taxes, local taxes are also problem for owners of small scale industries. Essential commodities act also create hurdles as it restricts movements from one state to another. There is shortage of trained people and training centers for marketing.

(VII) OTHER PROBLEMS

The owners are not interested in market research. Raw materials which are used in agro-based industries are cheaply available in particular season. The industries which are financially sound purchase raw materials from farmers and other sources. The owners of many industries are not economical sound that they purchase raw material for a year and store them. Some small scale industries produce good quality products for selling in local markets. In Rewa entrepreneur sell through their personal contacts so they not require promotional activities. Though advertisement enhances sells but hereowner consider it as wastage of money.

Some owners of agro-based industries obtain paddy from government for processing. The state government provides Rs15 per quintal as processing charge of paddy.The owners are not satisfied with this rate because government in other state provide more rate for processing. The owners are not happy with variation in processing rate. The other problem is that the unit has to give about 65 to 68 percent rice according to agreement after grinding paddy. When quality of paddy is not good then it is difficult to give require quantity of rice.

The owner charge Rs. 40 to 60 per quintal from farmers for processing paddy. The profit of owner reduces when they take

away bran for their cattle. The other problem arises when trucks loaded with rice is not timely unloaded in government go down. Trucks owner charge Rs. 500 to 1000 per day from the unit due to delay in unloading trucks. There are different wages and salaries in different small scale units. This raises discontent among people working in different units. In some units entrepreneurs have to provide regular salary to their machine operators and other people even when there is no work. This is due to shortage of skilled workers and machine operators. This effect profit of the enterprises. There is no proper arrangement of training for the owners. Financing institutions are not providing timely help to the owners. The taxes in market of Rewa is different from West Bengal and Bihar where 85 percent pulses are supplied.

Many owner of dalmills purchase from farmer through auction bid. Farmers bring chana in mandi and they sell to those owners who provide them good price. Some time owner have to pay highest rate which also affect profit. The quality of products is major factor in pricing. The owner provides cash discount for those buyers who purchase in large quantity and give order in advance. The owners consider customer, supplier, competition, government rule and regulation for fixing price. The development of industries create job, leads to diversification and enhances demand for raw materials. This changes physical infrastructure of backward areas. There are various problems in transport, storing, marketing, credit, packaging etc.

It is require to take fresh look and understand agro-based industries for taking collective steps for developments of industries. This is necessary to search root level problems and solve them through collective efforts. Processing industries bring linkage between farm products and industries. In some units there is high labour intensity and require efficient marketing for owner and consumer. The owner wants to receive profit from their products and on other hand consumer true value of their money. Due to commission of middlemen cost of the product rises. There is shortage of good markets in the district. Entrepreneurs are not interested in sound finance planning. Many rice mills are unable to run throughout year due to unavailability of adequate paddy. Some units are not satisfied with government policy and power supply. In udyog vihar industrial area some units are facing problems of drainage system. The owners mainly take responsibility of important tasks. Many units are not directly contacted with customers. They prefer agents to sell products. The owners of bakery, dairy, oil mill provide many facilities to their customers. They want maintain cordial relationship with customers. They do not want to adopt modern method they are satisfied with their traditional way. Some unit spends on sale promotion. They give advertisements in news paper and television. There is no proper management in many units. The owners of dairies and bakeries want to sell through retail counter for obtaining maximum profit. They also provide many facilities to middlemen. Entrepreneurs made their objective according to their requirement.

(VIII) CONCLUSION

The owners are bound to provide cash discount for surviving in the markets. It is not possible to earn maximum profit due to large number of small scale industries. There are so many entrepreneurs who are not in position that they think for advertising. Many of them are not interested to spend on marketing. They are satisfied with their conditions and following old trends. Many industries are totally dependent on brokers for selling products.The commission of brokers effect profit of the enterprises. The production work in the units effected due to fluctuation in the supply of electricity. There are shortages for the labourers in some season. Entrepreneurs sell their products on credit basis. There is shortage of suitable markets for selling different items. Entrepreneurs are happy in local selling from their personnel contacts. Entrepreneurs spend lot of money for protecting perishable items of the unit.

REFERENCE

1. Mishra S.K,Puri V. K. Puri, Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House, Mumbai,2000.
2. Dagar Inderjeet, Personnel Problems and its Management in Small Scale Industry, Deep and Deep Publications, New Delhi.
3. Agarwal A.N, Indian Agriculture problems, progress and propects Vikash Publishing House Private Limited, New Delhi,1980.
4. Agarwal A.N, Indian Economy: Problems of development and planning, Wiswa Prakashan,New Delhi,1997.
5. Joshi.V.K,Management of Indusrial Sickness, K uber Associate and Publishers, Jaipur,1987.
6. P andeyM ukesh,T iwari Deepali, The Agri business Book: A marketing and value chain, ibdc P ublishers,L ucknow,2010.
7. Saxena Rajan, Marketing Management, Tata McGraw-Hill Publishing Company Limited ,NewDelhi,2002.
8. Bala Shashi, Management of Small Scale Industries, Deep and Deep Publications, New Delhi.

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

HUMAN RESOURCE CONDITIONS AND EMPLOYER'S MOTIVATION IN SBI AND ICICI BANKS

❒ Indu Singh*
❒ Dr. Rafiqur Rehman**

ABSTRACT

Human values are associated with regional, sectorial cultural and deep seated religious beliefs in India. According to this concept employer provides welfare facilities to the employees for higher motivation. The religious and humanitarian concept, on the belief that employees possesses certain inalienable right as human beings and it is the duty of employer to protect human rights It is significant as brings mental peace and stability in thinking and feelings and a source of inspiration. All manufacturing and non-manufacturing organizations are primarily social system increase in productivity entirely based on physical, social and psychological needs of the workers. The findings of Hawthorne experiments are being used to solve various socio-psychological problems of workers in various organizations. Managers must use socio-psychological tools which are more effective than financial one's. Individual and family prestige, mutual respect, mutual understanding, may prove effective tool in motivating a large Indian workforce in business organizations.

Key words : *Job satisfaction, achievement, training development, HRM*

Measures of Human Resource Develop-ment

The concept of Human Resource Development United Nation Development Programme, human development report (1997) describe as "the process of widening people's choices and the level of well-being they achieve are at the core of the nation of Human development. Such theories are neither finite non static. The three important choices for employees are lead long and healthy life; to acquire knowledge; to have

* 'Research Scholar, Department of Business Administration, R.B.S. College, Agra
** Assistant Professor, Department of Management, D.S. College, Aligarh.

access to the resources needed for a decent standard of living.

This is not the end of Human Resource Development however other choices highly valued by many employees range from political, economic and social freedom to opportunities for being creative and effective in accepting challenges; productive and enjoying Self respect guaranteed human rights.

OBJECTIVES OF THE STUDY

1. Comparison of HR Practices in SBI & ICICI and to suggest which is better and why.

2. To suggest ways and means for better implementation of HR Practices.

3. To examine the progress of banking industry in India.

4. To offer suitable suggestions for the effective functioning of public and private sector banks.

RESEARCH METHODOLOGY

The nature of my research is such that it would depend upon both primary and secondary data. Primary data would be collected in the form of questionnaire duly filled by employees of both SBI and ICICI and personal interviews conducted with the officials and employees of both the organizations. The secondary data would be in the form of annual reports, departmental circulars, and website postings of these organizations. Various mathematical and statistical tools would be used where ever and whenever required.

Area of Study: This study was conducted in four cities of U.P. for the purpose of primary data collection.

Selection of Banks : Among public sector Banks SBI Bank and among private sector banks ICICI bank have been selected for the purpose of study because these banks have comparatively more number of branches in Uttar Pradesh and in the selected districts Aligarh, Agra, Mathura and Firozabad.

Details of Selected Banks

Name of Districts	SBI Bank		ICICI Bank	
	No. of Branches	No. of employees	No. of branches	No. of employees
Aligarh	38	335	3	35
Mathura	44	415	4	44
Agra	64	864	8	111
Firozabad	20	187	2	23

Source : Compiled from Bank Manuals

Sources of Data : The study is based on both primary and secondary data.

Primary & Secondary Data : The primary data were collected through structured questionnaire. The required secondary data were collected from various sources like books, newspapers, journals, magazines, RBI Reports, Annual reports of SBI and ICICI Banks, publications etc.

Sample Size of the Study: 102

Sampling Techniques: The methodology followed for collecting data, selection of sample and analysis of data is as follows –

Data Collection Techniques: The questionnaire has been designed and supplied to the respondents (employees) of both SBI and ICICI banks for collecting primary data.

Tools for Analysis: Simple random sampling technique has been used for collecting primary data and percentage analysis technique has been used for comparison. Percentage analysis refers to a special kind of ratio, used to compare two or more series of data and also to describe the relations. Since the percentage reduces

everything to a common base and thereby allow meaningful comparison to be made.

Generally speaking, professionals working within the HRM department must have excellent people skills although this is more so with those particularly working in the HRD section. The HRD section needs to have professionals with impeccable people management skills as they need to be able to realize talent within people from a cross section of backgrounds. The HRD section is concerned with identifying strengths and weaknesses among different employees and devising training means that aim at making those skills complement the other.

HRD aims at developing a superior workforce so that the company and individual employees may achieve their work goals in the customers' service. It can take on a formal approach as in a classroom or laboratory training in a case where it may apply. It may also take the informal route where an employee receives coaching or simple mentorship from his superior, usually a manager.

Some people distinguish a difference between HRM (a major management activity) and HRD (a profession). These people might include HRM & HRD, explaining that HRD includes the broader range of activities to develop personnel inside of the organizations including e.g. Career Development, Training, Organizational Development (OD), etc.

There is a long standing argument about where HR-related functions should be organized into large organizations e.g. “Should HR is in the OD department or the other way around?”

The HRM function includes a variety of activities, and key among them is deciding what staffing needs you have and whether to use independent contractors or hire employees to fill these needs, recruiting and training the best employees, ensuring they are high performers, dealing with performance issues, and ensuring your personnel and management practices conform to various regulations. Activities also include managing your approach to employee benefits, compensation, employee records, and personnel policies. Usually small businesses (for profit or non-profit) have to carry out these activities themselves because they cannot afford part or full time help. However, they should always ensure that employees have and are aware of personnel policies which conform to current regulations. These policies are often in the form of employee manuals, which all employees have.

The HRM (Function) and IIRD (Profession) have undergone tremendous change over the past 20-30 years. Many years ago, large organizations looked to the “Personnel Department”, mostly manage the paperwork around hiring and paying people. More recently, organizations consider the “HR Department”. As playing a major role in staffing, training, and helping to manage people so that people and the organization are performing at maximum capability in a highly fulfilling manner.

In recent years there has been a sudden spurt in the no. of organizations deciding to appoint HRD managers. However, many people are not clear as to what is the difference between personnel & HRD functions. Basically, HR consists of the value of productive capacity of a firm's human

organization. HRD efforts aim at providing conditions in which the employees can improve their skill, knowledge, energy and talent, which in turn may lead to improved productivity. Basically, the main areas which have to be managed by HRD people are:

- Managing succession politics,
- Managing appraisal politics,
- Managing the reward system,
- Distribution of power across groups,
- Balancing power across groups,
- Influencing the key people.

It will be primary responsibility of the HRD people to develop the right kind of values and norms to be followed by an organization.

"HRM is that part of management concerned with people at work and with their relationship within an enterprise. Its aim is to bring together and develop into effective organization the men and women who make up an enterprise and having regard for the wellbeing of an individual and of working groups, to enable them to make their best contribution to its success".In summarized form:

1. HRD is a sub section of HRM, i.e. HRD is a section with the department of HRM.

2. HRM deals with all aspects of the human resources function while HRD only deals with thedevelopment part.

3. HRM is concerned with recruitment, rewards among others while HRD is concerned withemployee skills development.

4. HRM functions are mostly formal while HRD functions can be informal like mentorships.

Procedure of Sensitivity Training

Sensitivity Training Program requires three steps:

1. Unfreezing the old values- It requires thatthe trainees become aware of the inadequacy of the old values. This can be done when the trainee faces dilemma in which his old values is not able to provide proper guidance. The first step consists of a small procedure :

- An unstructured group of 10-15 people is formed.
- Unstructured group without any objective looks to the trainer for its guidance.
- But the trainer refuses to provide guidance and assume leadership.
- Soon, the trainees are motivated to resolve the uncertainty.
- Then, they try to form some hierarchy. Some try assuming leadership role which may not beliked by other trainees.
- Then, they started realizing that what they desire to do and realize the alternative ways ofdealing with the situation.

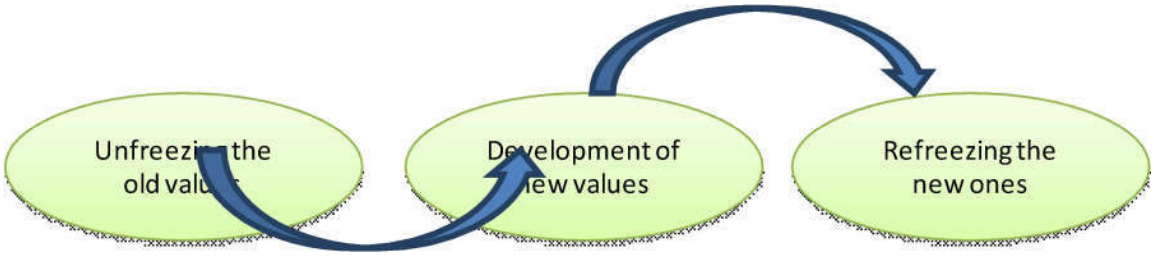

Procedure of Sensitivity Training

2. Development of new values - With the trainer's support, trainees begin to examine theirinterpersonal behavior and giving each other feedback. The reasoning of the feedbacks arediscussed which motivates trainees to experiment with range of new behaviors and values.This process constitutes the second step in the change process of the development of thesevalues.

3. Refreezing the new ones - This step depends upon how much opportunity the trainees getto practice their new behaviors and values at their work place.

Employee Welfare

The SBI has introduced a number of welfare schemes to improve the quality of work life of the employees. These schemes include canteen facilities, education scholarship to children of employees, SBI employee's mutual welfare scheme, festival advances, etc.

Now a day, before the beginning of each year SBI, preferably along with the Budget settlement discussion, the appraisee and the appraiser will identify the key performance areas for the year as also specific, quantified/ observable objectives under each of the identified Key Performance Areas (KPA). The identified and agreed KPA and objectives will be recorded in a settlement form, in duplicate and signed by both the appraisee and the appraiser. A copy of this form will be retained by the appraiser and the original being given to the appraisee.

Status of Women at workplace :

The existing policy of the Bank providing for protection against Sexual Harassment of women at workplace and for the prevention and redressal of complaints of sexual harassment and for matters connected therewith or incidental thereto was revised / upgraded to incorporate the requirements as per the Act passed in Parliament. The Bank has a zero tolerance towards sexual harassment at workplaces and has put in place appropriate mechanism to ensure that women work with dignity and without fear. At present, the strength of women employees in the total workforce of the Bank is 45,132 which constitute more than 20% of the total staff strength (Annual report of SBI 2014).

Table No. 1 : Opinion about Career Opportunities from knowledge gained

Opinion	SBI		ICICI	
	Sample size	**Percentage(%)**	**Sample size**	**Percentage(%)**
Strongly disagree	7	6.86	9	8.82
Disagree	32	31.37	17	16.67
Uncertain	13	12.75	69	67.65
Agree	44	43.14	7	6.86
Strongly agree	6	5.88	-	-
Total	102	100%	102	100%

Source: Field Study

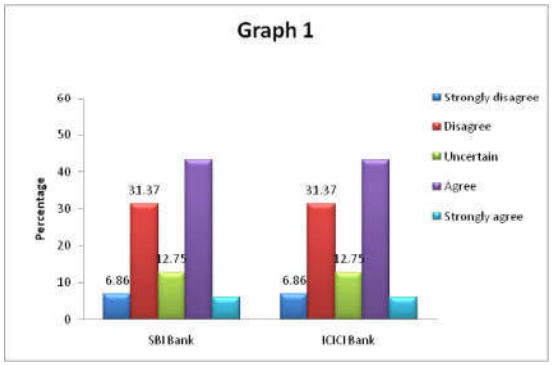

It can be inferred from the table that, among the SBI Bank respondents 43.14% agreed that they have better opportunities with the knowledge gained during training, followed by 31.37% disagreed, 12.75% said it as uncertain, 6.86% strongly disagreed and 5.88% strongly agreed.

Whereas among the respondents of ICICI Bank, a majority of 67.65% showeduncertainity about having better opportunities with the knowledge gained during training, followed by 16.67% disagreed, 8.82% strongly disagreed and 6.86% agreed about the better opportunities.

Table No. 2
Opinion about Career Progress

Opinion	SBI		ICICI	
	Sample size	**Percentage (%)**	**Sample size**	**Percentage (%)**
Strongly disagree	13	12.75	6	5.88
Disagree	11	10.78	4	3.92
Uncertain	5	4.90	74	72.56
Agree	71	69.61	11	10.78
Strongly agree	2	1.96	7	6.86
Total	102	100%	102	100%

Source: Field Study

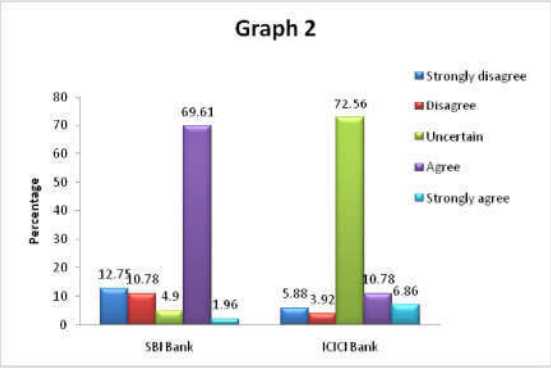

It can be seen from the table that, among the SBI Bank respondents, majority 69.61% agreed that they have better career progress after training, followed by 12.75% strongly disagreed, 10.78% disagreed, 4.90% stated it as uncertain and 1.48% strongly agreed.

Whereas among the respondents of ICICI Bank, a majority 72.56% stated it as uncertain about having better career progress after training, followed by 10.78% agreed, 6.86% strongly agreed, 5.88% strongly disagree and 3.92% disagreed.

Table No. 3
Frequency of Performance Appraisal

Opinion	SBI		ICICI	
	Sample size	**Percentage (%)**	**Sample size**	**Percentage (%)**
Quarterly	4	3.92	0	0
Half yearly	9	8.82	9	8.82
Yearly	86	84.32	70	68.63
Never	3	2.94	23	22.55
Total	102	100%	102	100%

Source: Field Study

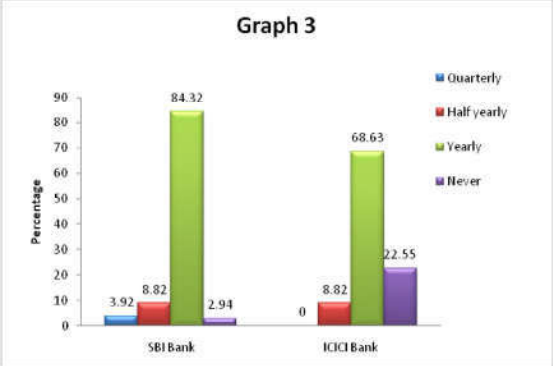

It can be observed from the table that, among the respondents from SBI Bank, majority 82.35% stated that they face unpleasant situations with public in the bank now and then, followed by 12.75% said that they face unpleasant situations frequently and 4.90% of the respondents stated that they never faced unpleasant situations with public

in the bank. Whereas among ICICI Bank respondents, 68.63% stated they face unpleasant situations with public in the bank now and then, followed by 21.57% expressed that they never faced such situations and 9.80% of the respondents stated that they face unpleasant situations with public in the bank frequently.

Table No. 4
Criteria for Performance Appraisal

Criteria	SBI		ICICI	
	Sample size	**Percentage (%)**	**Sample size**	**Percentage (%)**
Performance	69	67.65	69	67.65
Personal traits	15	14.70	6	5.88
Skills	18	17.65	27	26.47
Total	102	100%	102	100%

Source: Field Study

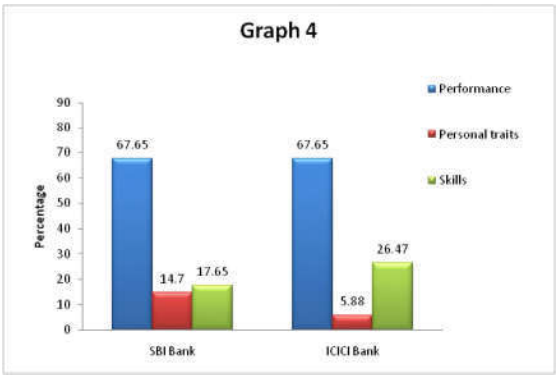

It can be observed from the table that, majority of the respondents from SBI Bank, 67.65% stated that the criteria for appraising the performance is the employee performance, followed by 17.65% stated it as employee skills and 14.70% specified it as personality traits.

Whereas among ICICI Bank, 67.65% of the respondents stated that the criteria for performance appraisal is employee performance only and 26.47% of the respondents said that it as employee skills and 5.88% stated as personality traits.

Table No. 5
Satisfaction Level towards Canteen Facility

Satisfaction level	SBI		ICICI	
	Sample size	**Percentage (%)**	**Sample size**	**Percentage (%)**
Satisfied	49	48.04	25	24.51
To some extent	18	17.65	68	66.67
Dissatisfied	35	34.31	9	8.82
Total	102	100%	102	100%

Source: Field Study

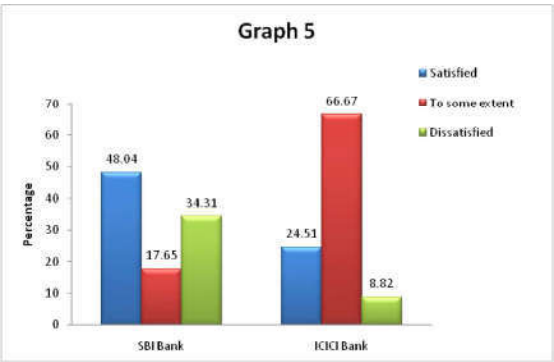

It can be observed from the table that, among the respondents from SBI Bank, 48.04% were satisfiedwith canteen facility, followed by 34.31% who showed dissatisfaction and 17.65% stated that they were satisfied to some extent regarding canteen facility.

Whereas among ICICI Bank respondents, majority 66.67% stated canteen facility as satisfied to some extent, followed by 24.51% stated their satisfaction and 8.82% rated their dissatisfaction.

Conclusion :

From the above data and findings, following conclusions are drawn:

- ICICI Bank is having young and dynamic staff in comparison to SBI Staff.
- Besides merit, there are other methods for getting selected in both public and private sector banks but percentage is greater in nationalized banks.
- Attitude of private sector employees towards the nature of work is more positive than that of nationalized bank employees.
- Employees of private sector bank are more comfortable with their work conditions than the employees of nationalized bank.
- There are more chances for private sector bank's employees for promotions in work as compare to the employees of nationalized banks.
- The employees of both SBI Bank and ICICI Banks are very much satisfied with their bank job.
- Private sector bank's authorities are much more concerned for motivation of the employees than that of nationalized banks.
- 100% of the respondents from both SBI and ICICI Bank claimed that they have attended Training and Development Programmes.
- There are more Training& Development programmes conducted in private banks for employees rather than nationalized bank.
- Private bank employees are more serious for Training programmesthan nationalized bank's employees.
- Private bank are equipped with latest teaching aids than nationalized bank.
- Nationalized bank's employees have better career progress after training in comparison to Private Sector Banks.
- Performance appraisal is more frequent in nationalized bank in comparison of private sector bank.
- In both public and private bank main performance appraisal criteria is employee's performance but private sector bank also considered employees skills for appraisal.
- Canteen facilities provided by private bank are better than nationalized Banks.
- Employees of public bank are much satisfied with travelling allowance, as compare to private bank's employees.
- Work environment of private Bank is better than that of nationalized Banks.
- Nationalized bank ishaving more qualified employees than private Bank.

Suggestions :

For Nationalized (Public Sector) Banks

1. Different sources of recruitment should be adopted.
2. They should take measures to remove the opinion among the employees that there are other considerations for getting selected besides of merit.
3. They should take corrective actions to change the attitude of the employees towards work and also to increase the level of interest towards work among the employees.
4. Nationalized banks can provide better opportunity to learn new skills with the help of training and education programmes.
5. It should implement latest technologies in Training & Development programmes.

6. It should take measures to modify the performance appraisal systems according to the present scenario.

For Private Banks

1. Formal recruitment policies should be adopted.
2. It should increase number of training and development programmes based on employee cadre.
3. Supervisors must have a fair relationship with their employees to keep them satisfied.
4. Long tenure of working in organization increases the job satisfaction of employee so they should try to stop labour turnover.
5. Employee orientation program should always be offered.
6. Financial and non-financial benefits should be extended.

Future Implications

If the suggestions and recommendations based on research findings use and practice in Bank of public and private banks will not only bring efficiency and effectiveness in the functionings. All such issues related to HR management, if implemented in true sense would be instrumented for both employees and management and that can also be extended to many more other Banks and industrial organizations in the country. It is clear from the conclusion of the research that many Human resource related issues have not been the higher level of motivation of Bank employees. Further research can also be conducted for the exploration of essential elements to improve growth and productivity per man hour in Banking sector and other industrial and social organization in the country. The value of human resource may be strengthened for the changing and challenging jobs.

References

RuddarDutta and K.P.M. Sundharam, Indian Economy Human Resource Development in India, 56thRevised edition, 2004-05, pp 66-67.

Kothari C.R. ,"Research Methodology", Second Edition, New Age International Pvt. Ltd., New Delhi

Rao P Subba, "Human Resource Management ", First Edition-2010, Himalaya Publishing House.

Aswasthappa K., "Human Resource Management", Fifth Edition, Tata McGraw Hill, Publishing House Ltd., New Delhi.

Dwiwedi R.S., - Managing Human Resources, Vikas Publishing House Pvt. Ltd.

Gupta C.B.- Human Resource Management, 5th Edition, Sultan Chand & Sons Publishing House.

Mirza and Saiyadin - Human Resource Management, Tata McGraw Hill, Publishing

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

HAND-PAINTED TEXTILES EXPRESSING EPIC ART : KALAMKARI

❐ Ankita Agarwal*
❐ Dr. Indira Agrawal**

From the ancient times, human civilization had an idea of painting. The primitive man expressed his thoughts on the walls of caves through painting only. At that time, it was the medium of communication but now painting has its own big world and charm whether it's on a canvas, paper or a cloth.

"The Indian artist manifested the aesthetic perception of culture and traditions by creating a harmony of visuals and emotions on extensive array of culture".*1

It may be any surface from rocks to walls, cloth to metal surfaces, Indian artist have showcased their artistic talent on every surface. They have made themselves capable of doing any kind of painting. One of such form of painting is of "KALAMKARI".

Kalamkari is an art of hand painted textiles using natural dyes especially done on cotton fabrics. It is the very ancient form of textile painting dating back to about 3000 years. That is the reason it has its own heritage value. Kalamkari word derives from Persian word 'Kalam' or ' Qulum' which means pen used as an instrument for painting whereas Kari is an urdu word which implies the craftsmenship involved and together it make the word " Kalamkari". The pen referred here is made up of short pieces of bamboo or date-palm stick, shaped to form a nib. The early period of alliance between the Persian and Indian trade merchants was the cause of the origin of this art form and its name.

"Percy Brown in Arts and Crafts of India- a descriptive study, New Delhi, 1903 mentions that Kalamkari during 18th century was practiced all over the Coromandal coast stretching from Machalipatnam at the north to southern parts of India, especially in areas like kalahasti, Salem, Madura, Palakolu, Machalipatnam, Tanjore, Eleimbedu in Chengalpet and in Cocanada districts".*2

There is an interesting story about the origin of Kalamkari paintings. It is believed that in ancient times, group of singers, dancers, musicians and painters, called Chitrakattis, moved place to place in order to tell the villagers about the stories of Hindu mythologies such as Ramayana,

* Research Scholar, Shri JJT University, Jhunjhunu, Rajasthan, Mail Id:- ankitaagarwal1504@gmail.com
** Research Guide, Shri JJT University, Jhunjhunu, Rajasthan

Mahabharata etc. For this story telling, they also made large bolts of canvas painted with these themes and with dyes extracted from plants. And, thus kalamkari was born.

Some kalamkari textiles are totally hand-painted using organic colours and dyes whereas some are made up of hand carved blocks of designs but the most popular are the one which are hand-painted. Due to these differences, Kalamkari paintings are divided into three art styles. These art styles are as follows-

1. Masulipatnam Style of Kalamkari
2. Srikalahasti Style of Kalamkari
3. Karrupur Style of Kalamkari

The port town of Masulipatnam located in northern Andhra Pradesh was a prominent trading site along with Coromandal coast. It was under the Golconda Ruler QutabShahi, due to this reason it was influenced by Persian motifs and design. It was also the ruler of the QutbShahi dynasty that gave this name "KALAMKARI". But it is not the pure form of Kalamkari because the artist here uses the hand carved blocks for printing of outlines as well as the main design on fabric. No uniqueness remains in these designs because these blocks are used again and again. On a larger scale, they use Persian motifs like interlacing patterns of leaves and flowers, the cartwheel, different forms of the lotus flower, creepers, birds like parrots and peacock etc. The most famous design is of the tree of life which is highly demanded in bed linen, cushion covers, wall hangings and dress materials. During this period, there was a very high demand of kalamkari by the people of Iran as Iran also became a dominant patron of the art form.

While the Srikalahasti style of kalamkari developed in the temple regions along with their patronage. As a result, this style is having a significant religious identity. Srikalahasti is located 37kms away from Tirupati in Chittoordistict in Andhra Pradesh. In this style, traditional themes from the episodes of Hindu mythology epics of Mahabharata, Ramayana etc. were depicted. The motifs includes temple scenes, wallpanels, village scenes, images of deities like Rama, Krishna, Ganesha, Arjun. These paintings are totally handmade from sketching to dyeing, everything is done by the artisans themselves, no machineries or block are used. This makes Srikalahastikalamkari more precious and unique.

The third artstyle is known as Karrapur style of kalamkari which was developed in the Thanjavur region during the Maratha rule. The difference found in their art work is the embellishment to the gold brocadework in the woven fabric, which was used by royal family during the kingdom of Raja Sarfoji and later Raja Shivaji.

"Kalamkari art is entirely a handicraft using natural or vegetable dyes and metallic salts called mordants to fix the dye into the cotton fibres. An exact resist process,

complex and careful dyeing, sketching and painting of the design and, occasionally, even the addition of gold or silver tinsel into it are the other integral components of this art".*3

Kalamkari art style uses a wide range of natural dyes extracted from dried leaves, bark of trees, flowers & leaves. These dyes give a wide range of vibrant colourpallete of red, blue, white, black, yellow and green. Black colour is mostly used for outlining the design. Along with natural colours, metallic salts calledmordants are also used to fix the dye in the cotton fibres.

Creating a kalamkari textile is a very long process of dyeing again & again, mordanting, sketching, painting the design and washing it. There are many different names associated with kalamkari. European trading merchants named it "Chintz" which came from the British.

"During the 19th century, Chintz or Indian painted/printed cotton cloth became popular in Europe. Originally, the term Chintz implied a pattern created on cotton fabric with a bamboo pen or kalam and dyed with mordants and resists".*1

The Dutch called it "Sitz" which portugesenamedas"Pintado". There is also one more name "Jadupatuas or DuariPatuas" which is given to the artist who worked on the Kalamkari painting scrolls.

Kalamkari art style flourished throughout the world and obtained impressive recognition as a medium of currency used in the spice trade, even there was a demand for ceremonial and ritual textiles from Southeast Asia and Indonesia. Today in a large variety products made with Kalamkari are available such as home furnishing items, hanging, bedcovers, even rugs, and theatre backdrops including beautiful saris. These all factors helped in inspiring the craftsmen for creating more intricate & beautiful Kalamkari painting.

REFRENCES :

1. www.Gujaratkalamkari.bolgspot.in
2. www.India1001.com
3. www.Chitrolekha.com
4. www.wikipedia.com
5. "Kalamkari" Traditional Indian Costumes and Textiles,Bhatnagar, Parul. Retreived 2004.
6. Kalamkari and traditional heritage of India, Ramani,Shakuntala, Wisdom Tree, 2007.

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

THE DIVERSITY OF THRIPS SPECIES (THYSANOPTERA : THRIPIDAE) EFFECT ON ONION CROP, *Allium cepa* IN DISTRIC ALIGARH

❐ **Neetu Singh***
❐ **Virendra Kumar****

ABSTRACT

A filed survey was carried out at the time of favorable growing season of onion for monitoring the infestation and abundance of thrips (Thysanoptera) population in District Aligarh (U.P.). Five localities were participated in our biological experimental survey these localities are Dhanipur Mandi, Atrauli, Harduaganj, Gangheri and Nagla Brahman or Baman Nagla. Data were collected from these selected localities on the basis of high infestation level of thrips population. Result wise total of four species of thrips were present such as, Frankliniella schultzei, Scirtothrips dorsalis, Frankliniella occidentalis and Thrips tabaci in those selected regions. Species of thrips severely attacked on young and mature plants of onion, Allium cepa. Due to the continuous infestation of thrips cause serious damage to the production of the bulb by damaging the epidermal cell of leaves which resulting in the necrosis of tissue, wilted growth of flower and fruits, increased incidence of viral diseases like Iris Yellow Spot (IYS) that cause green onions (scallions) to be unmarketable and death of dry bulb or may be reduced its size and finally yield loss.

Key words: *favorable, Thysanoptera, Infestation, Necrosis, Thrips.*

* J.J.T. University, Jhunjhunu, Rajasthan, India, E-mail : neetu.singhrana03@gmail.com
** Deptt. of Zoology, D.S. College, Aligarh, India

Thrips belongs to the order Thysanoptera and suborder Terebrontia or Tubilifera. They are the pests of vegetables with about 5000 known species **(Mound and Kuo 1996)**. Many species of thrips are pre adapted to an invasive life style. These small, opportunistic, vagile and ubiquitous insects are often only a few millimeters or less in length and generally brown, yellow, and black in color **(Morse and Hoddle 2006)**. In Aligarh region four thrips species are so far known to infest green or bulb onions, by attacking on both leaves and flowers and also cause the transfer of viral disease. These species are Thrips tabaci, Frankliniella schultzei, Frankliniella occidentalis and Scirtothrips dorsalis. Recent surveys shown have shown that any one or all of the four species of thrips can be encountered on both the leaves as well as on flowers on onion in any part of Aligarh Region. Most gardens and fields supported numerous species of thrips on onion crop and they were abundant enough to damage crop severely **(Higgins 1992)**. Sometimes, these species of thrips could be introduced to an area where they did not exist before through winds, animal fodder, soil, hay or another commodity **(Chang 1991)**. Thrips mainly feed on young leaves and flowers but rarely on roots **(Higgins 1992)**. However, many species are interstice dwellers; they seek protection in narrow cervices, flowers and grasses with dense inflorescences. A part from the physical damage, thrips also transmit viral, bacterial and fungal diseases to various part of the onion crop **(Okigbo and Ikedugwu 2003)**.

Thrips are serious pests in Aligarh Region and cause immense damage to onion crop, so that a study on thrips and their distribution is very important, but only a little work has so far been carried out on this aspect in Aligarh. The aim of this work was, therefore, to determine the relative abundance of thrips that infest on onion crop at the surveyed localities and conduct taxonomic studies on the different species of thrips.

REVIEW OF LITERATURE

India occupied second position in term of production of onion in the world. During 2010- 11, India's share was 19.90 percent in total onion production in the world **(Kapaa kondal 2014)**. Marketing of agriculture goods is more complicated when compared to marketing of non agricultural goods. Farmers are facing many problems in both cultivation and marketing of onion **(Jayanthi and Vaideke 2014)**. Thrips infestation at early stages results in poor establishment of onion crop due to high mortality of seedings. Seedling root dip and foliar application treatment were evaluated during rabi season to manage the pest **(Srinivas** and **Lawande 2007)**. All the thrips (Order- Thysanoptera) are known to vactors of plant viruses. Thrips transmit plant viruses in the Topovirus, Ilarvirus, Carmovirus, Sobemovirus and Machlomovirus genera **(David R Jones 2005)**.

MATERIALS AND METHODS

The survey and collection was restricted to some agricultural and experimental farms and gardens in the towns of Dhanipur Mandi, Atrauli, Harduaganj, Gangheri and Nagla Brahman or Baman Nagla all in the regions of Aligarh District.

Figure 1. Collection of species of thrips in the field of Onion, Allium cepa.

Experiments were carried out in the favorable growing season of onion. The onion crops were monitored and data were collected on the basis of infestation level of thrips population.

Figure 2. Samplings of thrips with the help of yellow sticky card.

The method of collection of thrips was simple and ensures the minimum loss of thrips. Two sample bottles of 250ml were used in which one were empty for collecting the thrips with onion leaves and another were filled with 70% alcohol with 5% glacial acetic acid in the ratio of 4:1 for preservation the thiprs for future use.

Figure 3. Onion Plants have symptoms typical of Iris Yellow Spot.

Thrips samples were collected in the early morning hours by gently trapping on the leaves, which dislodged the thrips from the leaves to white sheet placed under each selected plant. Count all the thrips on plant with emphasis placed on the area between newest leaves.

Figure 4. Lesions and Foliage death of onion plant.

Figure 5. Identified the thrips species with the help of microscope.

Using a fine hair brush to transfer the thrips into vials, respectively for preservation. The vials were taken to the laboratory for counting and identification of thrips.

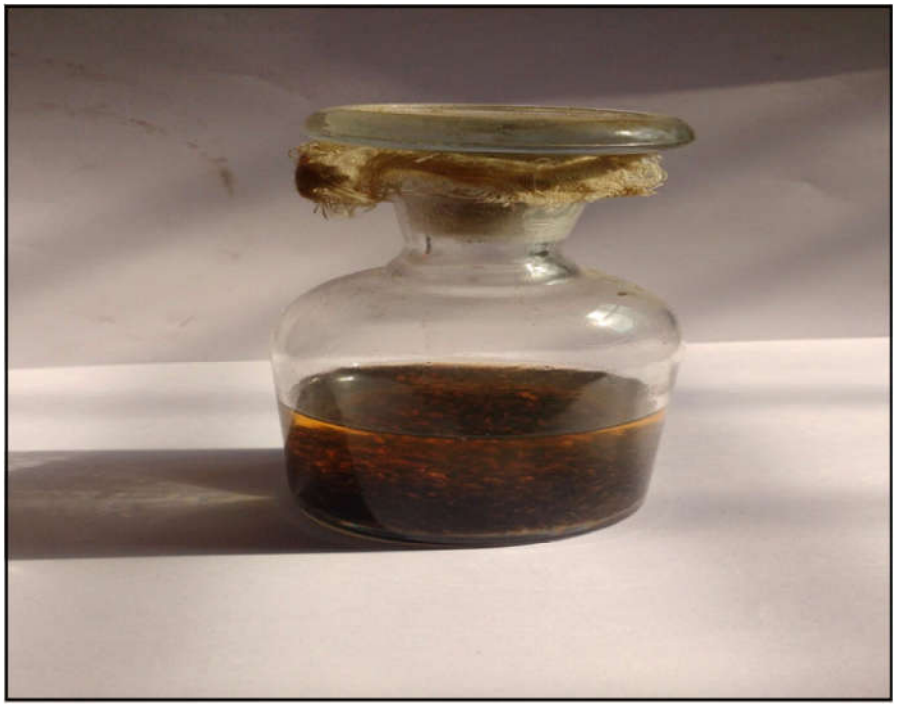

Figure 6. Thrips preserved in 70% alcohol with 5% glacial acetic acid.

Note the number of thrips that are winged adults, thus they indicating their capacity to disperse and increase the potential for future outbreaks. Thrips were mounted and identified under a compound light microscope using the procedure described by Palmer (1990), at magnification of 40 (Charles et al., 2013) Determine the severity of damage level by counting the number of damaged leaves per plant and the percentage of leaf with silvery – white blotches. Cut the stem of onion plant at the crown and transferred the whole shoot in a vial containing 70 percent alcohol for preservation.

RESULTS

The results of survey showed that all sampled plants of onion were infested with one or more species of thrips. All together, total four species of thrips were identified such as Thrips tabaci, Frankliniella schultzei, Frankliniella occidentalis and Scirtothrips dorsalis in those selected regions of District Aligarh.

DISCUSSION

The survey results of different localities Dhanipur Mandi, Atrauli, Harduaganj, Gangheri and Nagla Brahman or Baman Nagla were showed very clearly that all sample onion crops were infected with thrips. This indicated that onion cops in District Aligarh are host to one or other species of thrips such as Thrips tabaci, Frankliniella schultzei, Frankliniella occidentalis and Scirtothrips dorsalis. Thrips occur on all kinds of growing vegetation on both flowers and foliage leaves of onion crops. Thrips severely damaged the onion crops but highly infested by Thrips tabaci.

ACKNOWLEDGEMENTS

Author would like to thank Dr. Virendra Kumar (Assistant Professor) Department of Zoology, D. S. College, Alligarh and Dr. Dinesh Kumar Singh (Assistant Professor) Department of Botany, J.J.T.U., Jhunjhunu, Rajasthan for assist about this biological monitoring survey and providing the all research facilities.

REFERENCES

1. Chang N.T. (1991). Important thrips species in Taiwan. AVRDC Publication No. 19- 342. Page no. 40- 56.
2. Charles S., Mildred K.N. O.S., Joe K., Samuel K. and Jeninah K. (2013). Species composition and occurrence of thrips on tomato and pepper as influenced by Farmers' Management Practices in Uganda. Journal of plant protection research. Vol. 53, No. 2
3. David R Jones (2005). Plant Viruses Transmitted by Thrips. European Journal of Plant Pathology, Vol. 113: (2), pp. 119- 157.
4. Evangeline T. Oparaocha and Raphael N. Okigbo (2003). Thrips (Thysanoptera) of vegetable crops (Okro, Spinach, Garden Egg and Pumpkin) growth in Southeastern Nigeria. Vol. 39, No. 4, Page no. 132-138.
5. Higgings C.J. (1992). Western flower thrips (Thysanoptera: Thripidae) in green houses: population dynamics, distribution plants and association with predators. Journal Econ. Entomol., Vol. 85, Page No. 1891- 1903.

6. Jayanthi M. and Vaideke A. (2014). A study on famer's problem in production and marketing of onion in Sulur Taluka, Coimbatore District. Global Journal for Rearch Analysis, Vol. 3: (7), ISSN 2277-8160.
7. Joseph G. Morse and Mark S. Hoddle (2006). INVASION BIOLOGY OF THRIPS. Annu. Rev. Entomol. Vol: 51, Page no. - 67-89.
8. Kapaa Kondal (2014). Growth Rate of Area, Production and Productivity of Onion Crop in Andhra Pradesh. Indian Journal of Applied Research, Vol. 24: (1), pp. 98- 100.
9. Mound L.A. and Kuo G.G. (1996). The Thysanoptera vector species of tospoviruses. Acta. Hort., Vol. 431, Page no. 298- 306.
10. Palmer J. M. (1990). Identification of common thrips of tropical Africa (Thysanoptera: Insecta). Trop. Pest Manage. 36(1): 27-49.
11. Srinivas P S and Lawande K E (2007). Seedling Root Dip Method For Protecting Onion Plants From Thrips. INDIAN JOURNAL OF PLANT PROTECTION, Vol. 3(1), pp. 81-84.

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

ROLE OF INFORMATION TECHNOLOGY SERVICES IN EDUCATION LIBRARIES

❐ Tej Pratap Singh

ABSTRACT

Information is the key factor of research and development information is a fundamental resources. Which is essential for survival in today's competitive the information change for socio economic and cultural development of any nation. The discussed with Advantage of IT in libraries, application of the information technology, impact of IT in libraries are also discussed in brief.

Keyword : *Information Technology, Library Management, Library Automation, Networking, SDI, Cataloging, Circulation, Acquisition, Stock Verification, Indexing, Abstracting.*

I. Introduction

The computers and communication systems combined to be called information technology are essential in the every part of our life. For socio economic development, information is an indispensable resource.

Information technology is a comprehensive term, convergence of computers, telecommunication and information, information technology mean the application of computer technologies and communication technologies for gathering, processing, storing, retrieval and dissemination of information.

Advantages of IT

Some of the advantages using IT in libraries are :

- IT helps to avoid duplication of a work in library operations.
- Use of the IT solve the space problem.
- IT shift demand of users from collection based services to information based services.
- IT helps to introduce new services and improve existing services.
- IT helps to increase efficiency and effectiveness in library operation.
- IT helps in saving time, space, energy and resources.

* Research Scholar, A.P.S.U., Rewa (M.P.)

- Collaboration and creation of library networks.
- Increase the range of services offered.
- Save the time of the users.
- Speedy and easy access of information.
- Improves the quality of library services.
- Enhance the knowledge and experience.
- Improve the status of the library.
- Improve the communication facilities.
- Access to unlimited information form different sources.
- Information flexibility to the users.
- Reforming and combining of data from different sources.
- Reduce the workload of the library staff.

According to Kemp "Information is considered as the need of man ranking after air, water, food and shelter". The value of information in every human endeavor cannot be overstressed. Quick and easy access to every required information is a supreme importance application and the techniques are being used by the libraries for information, automation etc. Further, origin of interest and the development of World Wide Web revolutionized the information communication technology.

Application of Information Technology in Library

The library is the main information centre which can make use of the fat development IT for the benefits of mankind as a whole. The librarian's preference of IT should include all those technologies which are expected to be used in the library activities and other library services for collection, processing, storage, retrieval and dissemination of recorded information. The fast developing information technologies have showered almost every areas of application including libraries. In case of libraries, these are good use in the following environments.

Library Management : Library management includes the following activities which will certainly be geared up by the use of these fast IT developments : Classification, Cataloguing, Indexing, Database creation, Database indexing.

Library Automation : Library automation is the concept of reducing the human intervention in all the library services so that any user can receive the desired information with the maximum comfort and at the minimum cost.

Library Networking : Library networking means a group of libraries and information centers are interconnected for some common pattern for information exchange and communication with a view to improve efficiency.

Audio-Video Technology : It includes photography, microfilms, microfiches, audio and tapes, printing, optical disk etc.

Technical Communication : Technical Communication consisting of technical writing, editing, publishing, DTP system etc.

Technological change is becoming a driving force in our society. IT is a generic term used for group of technologies. Following are the major components of information technologies as most relevant in modern library and information system.

Impact of Information Technology in Library

The IT has wide ranging impact on library and information work. Information activities have undergone rapid transfor-

mations from conventional methods, consequent upon introduction of new technologies. There are areas of library operations where IT is being adequately used and some more activities are poetential to adopt IT.

Book Aquisition : Acquisition is concerned with the building of library collection, by selecting right materials. Computerized acquisition helps in selection, duplicate checking, ordering, procuring of library materials, processing bills, maintaining subject wise budget allocation etc. In the process of book selection internet comes in great use and through e-mail the ordering to venders becomes easy, quick and economical. The database of publishers and distributors can be used to select the latest publication.

Periodical Control : We select the new journals through internet & process it renewal, placement of orders, list of periodicals, remainders for non received issues can be easily handle through use of computers.

Cataloguing : Cataloging of library holdings can be prepared easily on the computer by importing the bibliographical details of the documents from acquisition file and by retro-converting the catalogue.

Stock Verification : Ready-made list of untraceable books can be made available by feeding into computer the accession numbers of books present in library.

Circulation : Circulation procedure in a conventional system is very lengthy and time consuming. The use of technological devices such as computers, barcode, scanners and software for circulation helps in performing the lending of library materials easily and quickly.

Indexing & Abstracting Services : Most of the big indexing and abstracting services in the world like chemical abstract, LISA etc are available in the CD-Rom format.

Selective Dissemination of information : Users profile document profile matching & feedback are very easy through use of IT. Therefore SDI is easy through IT.

Other Important LIS Services : CAS, database search services, internet services, micrographic services, multimedia services are helpful for users.

Conclusion

IT base library services are useful for libraries in almost all the department of library to perform accurate, speedy and effortless job. Today's world of information explosion demands for an efficient system of information's for storage and retrieval.

References

1. Burch, J.G. (1983), Information system : Theory and practices. Ed. 3. New York : John Wiley.
2. Ravi Chandra Rao, I.K. (1983). Library Automation, Banglore : DRTC Refresher Sem. 14.
3. Icemp, D.A. (1988). Computer based knowledge retrieval, London : Aslib, 5-6.
4. Rammacah, L.S. (1988). Requisites for automation of a University Library. In Chapra, H.R. and others, ed. Library science and its facets. Delhi : ESS ESS Pub, 283-291.
5. Academic library system : collection development. Ed by A.P. Srivastava. N ew Delhi, Indira Gandhi Open University, 1995. P. 53.

6. Arms, Y.W. (2000). Digital libraries. The MIT press, Cambridge, Massachusetts, London, England, pp 143.
7. ARL. (2002). Collections & Access for the 21st century scholar : Changing roles of research libraries. A report from the ARL collections & access issues task force. ARL Bimonthly report 225 (Dec. 2002).
8. Carole A.G. (2003). A study of independent access to library resources : Followup study of LibQual + Survey of library service quality - Personal Control Domain. Carnegie Mellon University Libraries, Digital Library Initiatives. May 13, 2003.
9. Ojha D.C. ed. (2006). Computer application in library and information science, Jodhpur : Scientic Pub 18.
10. Ahmed, N. and Fatima, N. (2009). Usage of ICT products and services for research in social science at AMU. DESIDOC journal of library and information technology, 29(2) : 25-30.
11. Http://en.wikipedia.org.
12. Http://digital commons.unl.edu/lin/phil-prac/628
13. Http://www.crl.edu.ac.in

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

"PANNA TIGER RESERVE MANAGEMENT AND SOCIAL PERSPECTIVES

❐ **Pushpendra Singh**
❐ **Neerja Khare**

ABSTRACT

Habitat Management is mandatory task in a protected area, like Panna Tiger Reserve, which harbours a wide range of wild fauna and the population dynamics involved in it. The term wildlife encompasses all uncultivated flora and undomesticated fauna. Forest and wilderness areas are important wildlife habitats. Forest and wildlife habitats perform several ecological functions. Panna Tiger reserve is an excellent example of in-situ conservation, and harbors typical floral, faunal and physiographical attributes of the central Indian highlands. The management here aims at the total preservation of the entire wild life ecosystem. Present study deals with the biodiversity management and social perspectives of Panna Tiger Reserve. The main forest types found in Panna tiger Reserve southern tropical dry teak forest and Northern tropical dry deciduous mixed forest other forest types found in specific locations include dry deciduous scrub forest, salai forest, dry bamboo brakes and Kardhai forest. The reserve harbors a wide range of faunal diversity. Tiger is the Top Carnivore in the reserve, its nearest competitor being the Leopard. The reserve is bestowed with rich 200 species of birds, common reptiles and a large number of aquatic animals. Panna Tiger Reserve being close to Khajuraho, a world heritage site and easy sighting of tiger, enjoys special significance in term of Ecotourism and conservation education.

Key words : *Panna Tiger Reserve, Management and Social Perspective.*

* Department of (Zoology) Govt. P.G. College, Satna (M.P.) India
** Department of (Zoology) Govt. P.G. College, Satna (M.P.) India

I. Introduction

Panna Tiger Reserve is one of the most important Tiger habitats in the central India for the long-term conservation of the "Flagship" species Tiger. Nature has bestowed it with many floral and faunal diversity. However managed forest out side the protected area network also support large population of wild life species (Giles 1971) has signified wild life management as an art of changing the characteristics and interaction of habitats, wild animal population and men in order to achieve specific goal by means of the wild life resources. Thought there is lot of biotic pressure natural linkage with some other protected area in the region. Panna Tiger reserve consists of three units namely Panna National Park, Gangau Wild Life Sanctuary and Ken Gharial wild life Sanctuary. The management of Tiger Reserve is done by the Director and conservator of forests with headquarter at Panna. There is a Dy. Director and Two Assistant Director. The Tiger reserve is divided in to 4 ranges, 10 sub ranges and 45 beats. The Tiger reserve has a special place in the North Central Madhya Pradesh from the point of view of ecology, vegetation, history and culture and is a true representative of Bundelkhand region.

Study Area : The Panna tiger reserve (666-403 Sq.Km.) comprises of Panna National Park (542.662 Sq.Km.) Gangau wild life Sanctuary (87.539 Sq.Km.) and Ken Ghariyal wild life Sanctuary (45.202 Sq.Km.) surrounding both the park and the sanctuary.

Location : Panna Tiger Reserve located in North Central part of the State spreads over the districts of Panna and Chhattarpur. The name of the Tiger Reserve comes from the district Town of Panna where the Tiger Reserve has its headquarters, the Tiger Reserve lies between 24027' and 240 46' North latitudes and 790 45' and 800 09' East longitude. It covers parts Panna and Gunour Tehsils of Panna district and Bijawar and Chhatarpur Tehshils of Chhatarpur district. The whole Tiger Reserve makes the Catchment of the river.

Historical :-The forest area included in the Panna Tiger Reserve was the hunting reserve of the erstwhile rulers of Panna, Chhatarpur and Bijawar States. The forests in these reserve got protection from these states. During 1975. Gangau wild life sanctuary comprising forests of North and South Panna forest division was created. Later on in the year 1978 adjoining portion of Chhatarpur forest division was added to the Sanctuary. In the year 1981 Panna National Park was constituted including major Portion of Gangau Wildlife Sanctuary and some more areas of Chhatarpur forest Division vide Madhya Pradesh Forest Department notification No. 15/08/80 (X)-2 dated 17/10/1981. Total area of Panna National Park is 542.66 Km2 and includes 373.55 Km2 forest area of Panna and 169.11 Km2 forest area of Chhatarpur district.

Methodology :-Wild life protected area planning and management and administration requires detailed inventories of flora and fauna animal distribution patterns and appraisal of limiting factors prevailing in the area. (Giles 1971) has explained the need of well defined, objectives and scientific methodology for the study of plant communities harboring wild animals.

Champion and Seth (1968) have identified the forest types of the study area. Gopal and Shukla (2001) have described the status and management Strategies of Kanha Tiger Reserve. The Biogeographically classification of the study area has been suggested by Rodgers and Panwar (1988) Geographical information system are a relatively new development in computer technology of particular Interests to wild life and natural Resource managers (Petersion and Matney 1986). The present study has been conducted in following three phases tocover different study aspects, Phase -I Collection of Background information. Phase II Field Survey, Study of vegetation and wild fauna, study of Eco-tourism. Phase-III Interpretation and synthesis.

Results and Discussion :

Vegetation : Vegetation is one of the most valuable Renewable natural resources in any geographical region. The Forests of Panna Tiger Reserve are broadly in classified into the following types in accordance with the revised forest type of India (Champion and Seth 1968). The main forest types found in Panna tiger reserve are southern tropical dry teak forest and northern tropical deciduous mixed forest. Other forest types found in specific locations include dry deciduous] scrub forest, Salai forest, dry Bamboo brakes and Kardhai forest. Dry teak forest occurs on trap, shales and sandstones. Dry mixed forest occurs mainly on sandstones, shales and laterites where the soils are shallow. There are some patches of almost pure salai forests. These forests occur on dry upper slopes of hills having dry shallow and stony soil. The tiger reserve in fodder grasses However, majority of these grasses are coarse and liked by wild ungulates after October or November. The open marshy grasslands supports a rich herbivores population.

Wild fauna : The faunal assemblage of Panna tiger Reserve is of typical Central Indian species . The rich habitat diversity of Panna Tiger Reserve supports wide range of animal communities viz; Mammals, birds, reptiles and large number of aquatic animals. The above typical Fauna of the central Indian highland, part of the oriental Zoological Realm is an amalgam of the Indo-chinese, Ethiopian and palaearctic elements (Prater, 1948; Roberts, 1977). The heterogeneity of habitats influences local distribution of Mammal Tiger is the top cornivore in the reserve, its nearest competitor being leopard. The best known areas of animal distribution occurs in Madla and Hinouta ranges. There are around 200 species of birds and twenty species of Mammals. Beside common species of Reptiles and large number of aquatic animals are also found in the Reserve.

Ecotourism : The potential of Eco-Tourism has already been recognised in the tiger reserve. This concepts needs to be further organised and the required infrastructure facilitated, involving the local participation from the host communities. This would not only lead to their economic upliftment, but also serve as a credibility building measure between the park and the people. Panna Tiger reserve has great potential as for as tourist visitation is concern because it is located close to Khajuraho temples. The management of Tiger Reserve is required to aim at improving habitat

conditions so that wildlife particularly the tiger increases in number. It Tiger sightings improve, the tiger reserve will attract a large number of tourists. The reserve has been receiving approximately 15000 tourist annually. Eco-tourism in Panna tiger Reserve is a balance of conservation education and entertainment with the active participation of local people. The under laying principle is that the tourism should be ecologically and socio-culturally sustainable.

Management :- The management of Panna Tiger Reserve is done by the Director and conservator of forest with head quarter of Panna. there is a Dy. Director and two Assistant Director. The tiger Reserve is divided into 4 ranges, 10 sub-ranges and 45 beats. The Tiger Reserve has a special place in the north central Madhya Pradesh from the point of view of ecology, vegetation, history and culture and is a true representative of Bundelkhand Region. The main objectives of the Management are :

- To maintain and restore the biodiversity, natural and historial attributes and ecological function of the area and
- To ensure and enhance conservation status of the Reserve by reducing people dependance on forests through participatory management.

References :

1. Bolen, GE & WL Robinson (1999) Wildlife ecology and Management 4th Ed. Prentice, Hall (New Jersey). pp. 464.
2. Champian H.G. and Seth S.K. (1968). A revised survey of forests types of India, manager of Publication Delhi.
3. Giles, R.H. (1971) Wild life management Techniques, The wild life Society, Wessington DC.
4. Gopal and Shukla (2001) Management Plan for Kanha Tiger Reserve Madhya Pradesh for the period of 2001-02.
5. Peterson, L. & I Mateny (1986). Data mgt. Pages 727-740. in Aycooperider; R.J. Boyd and HR. Stuart, eds. Inventory and monitoring of wildlife habitat U.S. Dept. Inter Bur. lands manage. Serv. cent. Denver, Colo.
6. Roberts T.J. (1977) Mammals of Pakistan London; Erenest Benn..
7. Rodgers, W.A. and Panwar, H.S. (1988). Planning wild life protected area Network in India, vol. I and II wildlife Institute of India, Dehradun.
8. Saharya, V.B. (1982) Wildlife in India. Notraj Publisher, Dehradun

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

SOME WILD PLANTS ARE USED AS FOOD MATERIAL BY THE TRIBES OF DEOSAR

❐ I.P. Kumhar*
❐ R.L. Patel**
❐ Prabha Prajapati***

ABSTRACT

The present paper highlights the food behavior of the tribes of Deosar area of Singrauli District of M.P . They are mainly based on forest products. The forest plants and their products are used as food, fiber and medicine etc. During present study 30 Angiospermic plant species are enumerated with their family, vernacular name and used style of food intake.

Key Words : *Food, Deosar, Singrauli and tribes.*

The use of plants as Foods purposes is as long as the existence of mankind. Ancient civilizations have provided is with relevant written literature of using plants and plant parts as the food materials for the purpose of survival.

Even today the tribes of Deosar (Singrauli) area prepare and use variety of food from plants and plant parts during the whole year. These food materials are more nutritious and rich with Protein carbohydrate, lipids and vitamins. Effective for the people of all ages. Some food materials of forest products are much nutritive for the babies and animals.

METHODOLOGY

The angiospermic plants were collected by the authors from the different areas of Deosar(Singrauli). The plants were identified with the help of various literatures the value of different types of food matarial was obtained from the tribal people of study area .

A Cross Verification of the same was made as suggested by Jain (1991) the food

* Deptt.of Botany S.G.S. Govt.PG. College Sidhi (MP.)
** Deptt.of Botany S.G.S. Govt.PG. College Sidhi (MP.)
*** Research Scholar Botany S.G.S. College Sidhi (M.P.)

yielding plants of Deosar (Singrauli) area have been mentioned.

OBSERVATION AND RESULT

The food is essential need of the living beings for growth and developments. Proteins, lipids and carbohydrates are main developing Components required for our body. The forest plants and plant parts have organic and inorganic compounds. Some forest plant Contain specific types of alkaloids that used in cure specific Disease of the human beings.

The study of indigenous knowledge about some food yielding plant resources is essential for our society. An overview of some angiospermic plant of Deosar area of Singrauli district (M.P.) and their uses as food material is presented in table-Ist which shown several utilization its records of Plants-

S. N.	Name of Plant	Vernacular name	Family	Parts use	Types of food
01	*Amaranthus spinosus L.*	Kateli chauli	Amaranthaceae	Leaf	Vegetable
02	*Amaranthus gracizans L.*	Chaulai	Amaranthaceae	Leaf	Vegetable
03	*Avena fatua L.*	Jau	Poaceae	Seed	Chapati
04	*Aegle marmelos L*	Bel	Rutacac	Fruit	Juice & Pickle
05	*Buchanania lanzan*	Chiroji	Anacardiaceae	Seed	Edible
06	*Chenopodium album L.*	Bathua	Chenopodiaceae	Leaf& stem	Vegetable
07	*Chemopodium murale L.*	Chamar bathua	Chenopodiaceae	Leaf& stem	Vegetable
08	*Citrullus colocynthis L.*	Indrayana	Cucurbitaceae	Fruit	Vegetable
09	*Corcorus aestuans L.*	Pat	Tiliaceae	Leaves	Vegetable
10	*Corchorus capsularis L.*	Leaves	Tiliaceae	Leaves	Vegetable
11	*Curculigo orchioides*	kalimusali	Hypoxidaceae	Tuber	Vigores food
12	*Diospyros exscuclepta buch*	Tendu	Ebenaceae	Fruit	Edible
13	*Emblica Officinalis gaertn*	Amla	Euphorbiaceae	Fruits	Pickle & Chatani
14	*Glinus lotides L.*	Bhondergali	Aizoaceae	Shoots	Vegetable
15	*Madhuca indica L.*	Mahua	Sapotaceae	Flower seed	foods liquir eatable Oil
16	*Moringa oleifera Lam.*	Munga	Moringaceae	Flower& pod	Vegetable
17	*Oryza rufipogon L.*	phasaidhan	Poaceae	Grain	Chawal
18	*Ocimum sanctum L.*	Tulasi	Lamiaceae	Leaf	Edible
19	*Phaseolus trinervis heyne*	Jangali moog	Fabaceae	Pod	Pulse
20	*palygala chinensis L.*	phutani	Polygalaceae	Plants	As food
21	*Polygonum glabrum wild*	bhilamngori	Polygalaceae	Leaves	Vegetable
22	*Portulaca oleracea L.*	Gol Bhaji	Portulacaceae	Leaf	Vegetable
23	*Portulaca quadrifida L.*	Noon kha	Portulacaceae	Leaf	Vegetable
24	*Rumex dentatus L.*	Jangali Palak	Polygonaceae	Leaf	Vegetable
25	*Sagitaria sagittifolia L.*		Alisma taceae	Tuber	Edible
26	*Semecarpus anacardiume L.*	Bhelama	Anacardiaceae	Fruit	Edible
27	*Syzygium Cuminii L.*	Jamun	Myrtaceae	Fruits	As fruits
28	*Trapa natans L.*	Singara	Trapa ceac	Endosperm	Food
29	*Trianthema Portulastrum L.*	Bawara	Aizoacae	Leaves	Vegetable
30	*Zingiber Copitalum Roxb*	Jangli Adarak	Zingiberaceae	Tuber	Edible

ACKNOWLEDGEMENT

The authors are thankful to the tribals and local people of chitarangi district Singrauli M.P. for interacting and providing information about the food producing forest plants.

REFERENCE

- Jain A.K. 1992 Clans of sor tribals of Madhya Pradesh and their role in conservation, Ethanobotany vol 4.67-69.
- Jain S.K. 1986 Ethanobotany, interdisciplinary, science reviews (London) 11 (3) 385-292.
- Jain J.K. & Rao R.R. 1983 ethanobotany in india An over view howrah botanical survey of india.
- Khan A.A. Shabina Khan and m.P. singh 2002 Role of Plants in upliftment of economic potentialities of tribals of the district shahdol (mp) India plant Sci. 15(11) 397-400
- Khan A.A. ashok kumar verma and M.P. Singh 2003 certain ethnobotanical importance on food and medicinal plants from rewa division of Madhya Pradesh with special References to rare and endagerd species- Ist Ecotaxon bot vol 27 No. 2 PP 249 - 254.

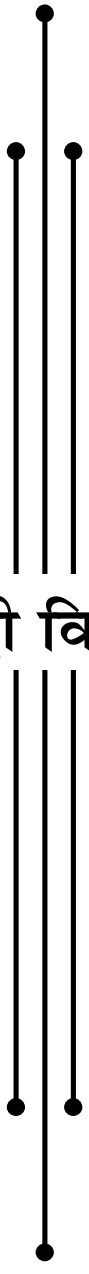

हिन्दी विभाग

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

बाल दुर्व्यवहार के कारण

❒ प्रो. डॉ. विनोद कुमार तिवारी*
❒ वीरेन्द्र कुमार तिवारी**

शोध सारांश

स्वतंत्रता के बाद लगभग 62 वर्षों के निरन्तर योजना, कल्याणकारी कार्यक्रमों, विधि निर्माण और प्रशासनिक कार्य के उपरांत भी भारत में अधिकांश बच्चे शोषण, दमन एवं अत्याचार से अब भी पीड़ित या शिकार हो रहे हैं। अधिकांश परिवारों में माता–पिता उनकी उपेक्षा करते हैं, देखभाल करने वाले उन्हें मारते व पीटते हैं। मालिक बच्चों के साथ लैंगिंग दुर्व्यवहार करते हैं। अनेक औद्यौगिक प्रतिष्ठानों में अधिकांशतः बाल श्रमिक से काम लिया जाता है। तमिलनाडू में दियासलाई के कारखानों में, जम्मू कश्मीर एवं उत्तर प्रदेश में कालीन उद्योन में तथा मध्यप्रदेश व छत्तीसगढ़ में बीड़ी निर्माण कारखानों में बच्चों से काम लिया जाता है। मध्यप्रदेश में स्लेट पत्थर की खदानों में, गुजरात में हीरे की सफाई तथा पश्चिम बंगाल में चाय के बागानों में अनगिनत संख्या में बाल श्रमिक कार्य करते हैं। बालिकाओं का लैंगिक वासना हेतु दुरुपयोग, बच्चों से बेगार करवाना या भीख मांगने में उनका उपयोग, ऐसे अपकृत्य से जो सभ्य समाज पर एक कलंक है। जेलों व सुधार संस्थाओं में भी बाल अपराधियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। राज्य शासन बाल कल्याण समिति एवं विधि द्वारा प्रतिपादित अनेक विधियों के बाद भी बाल दुर्व्यवहार को रोकने में वांछित प्रगति अभी नहीं हो सकी है, जो होना चाहिए।

Keyword : लैगिंक दुर्व्यवहार, बाल श्रमिक, बच्चों से बेगार करवाना, भावात्मक दुर्व्यवहार।

भूमिका–बाल दुर्व्यवहार का प्रमुख कारण अधिकांशतया प्रौढ़ दुर्व्यवहार करने वालों (माता–पिता एवं मालिक) की अपने वातावरण (परिवार या कार्यस्थल) में अनुकूलन में असफलता या असमायोजन है, परन्तु कुछ सीमा तक इसके लिए प्रौढ़ जो पारिवारिक समाजीकरण के लिए उत्तरदायी हैं।

बाल दुर्व्यवहार के प्रमुख कारण निम्न हैं–

(1) शारीरिक दुर्व्यवहार के कारण (Causes of Physical Ahuse)–विभिन्न विद्वानों ने शारीरिक

* प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (विधि), राजीव गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
** सहायक प्राध्यापक (विधि), राजीव गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

दुर्व्यवहार के अलग–अलग कारण बतलाये हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि व्यक्तिगत अपराध ाकर्ताओं के मनोरोग विकृत (Psycho Pathology) विज्ञान को प्रमुख कारक मानते हैं, दूसरे पारिवारिक अन्तःक्रिया के मनो–सामाजिक रोग विज्ञान का प्रमुख कारण समझते हैं और कुछ और दूसरे तनाव की स्थितियों पर विशेष बल देते हैं। इस संबंध में केवल रमानी द्वारा राजस्थान में किया गया आनुभाविक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि 'पारिवारिक तनाव सम्बन्धी कारक' बाल दुर्व्यवहार के यथेष्ट कारण की व्याख्या (Casual Explanation) करते हैं। परिस्थितियों के तनाव की वजह से बच्चे के शारीरिक दुर्व्यवहार के प्रमुख कारण 4 रूप से उल्लेखित किये गये हैं–

1. पति–पत्नी के बीच सम्बन्ध।
2. माता–पिता और बच्चों के मध्य सम्बन्ध।
3. संरचनात्मक तनाव।
4. बच्चे द्वारा उत्पन्न किया गया तनाव।

बच्चों को पीटने के जो कारण पाये जाते हैं, वे हैं बच्चों का लगातार माता–पिता की आज्ञा नहीं मानना, माता–पिता के मध्य झगड़े और बच्चे को बलि का बकरा बनाकर उसे पीटना, बच्चे का अध ययन में रूचि नहीं लेना, बच्चे का अधिक समय तक घर से बाहर व्यतीत करना, बच्चे को रोजी–रोटी कमाने से मना करना, बच्चे का प्रायः अपने भाई–बहनों से लड़ना, बच्चे का प्रायः स्कूल से अनुपस्थित रहना, बच्चे का अपने माता–पिता/संरक्षक (अभिभावकों) को अपनी सम्पूर्ण कमाई को देने से इंकार करना, बाहर के व्यक्तियों से दुर्व्यवहार की शिकायतें सुनना और बच्चे का विचलित (Deviant) व्यवहार अपनाना जैसे चोरी करना, सिगरेट पीना आदि। ये सब कारण (माता–पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना, माता–पिता के बीच झगड़े, घर से बाहर समय व्यतीत करना, बच्चे का अध्ययन कार्य में रुचि नहीं लेना) अपराध ाकर्ताओं (Perpetrators) के व्यक्तिगत व्यक्तित्व के दोषों को इतना नहीं बतलाते जितना की उन प्रमुख कारकों को बतलाते हैं जिनके फलस्वरूप बाल दुर्व्यवहार घटित होता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि अपराधकर्ताओं के व्यक्तित्व की विशेषताओं को यद्यपि नकारा नहीं जा सकता है, फिर भी पारिवारिक वातावरण और तनावग्रस्त परिवार की स्थितियाँ बच्चे को पीटने में अधिक निर्णायक कारक होते हैं।

2. लैंगिंक दुर्व्यवहार (Causes of Sexual Abuse)–लैंगिंक दुर्व्यवहार के कारण जो अधि ाकांशतया बतलाये जाते हैं, वे हैं अपराधकर्ताओं की समायोजन (Adjustment) की समस्या, परिवार का विघटन, पीड़ित के विशेष गुण और दुर्व्यवहार करने वालों की मनोवैज्ञानिक विकृतियाँ। तथापि, बाल दुर्व्यवहार पर केवल रमानी द्वारा किया गया अध्ययन लैंगिंक दुर्व्यवहार की समस्या को एक ''व्यवस्थित मंडल (System Model) के द्वारा समझाना चाहता है और इसको ऐसा व्यवहार मानता है जो विभिन्न स्तरों पर कई कारणों से प्रभावित होता है, कहने का तात्पर्य यह है कि यह एक ऐसा व्यवहार है जो कि कारकों के एक पुंज के संचित (Cumulative) प्रभाव का परिणाम है। वास्तव में इस अध्ययन ने प्रणाली उपागम का उपयोग न केवल लैंगिंक दुर्व्यवहार के अपितु शारीरिक और भावात्मक दुर्व्यवहार के अध्ययन के लिए भी किया। लैंगिंक दुर्व्यवहार की चार श्रेणियाँ थीं–पारिवारिक पर्यावरण, पारिवारिक संरचना, व्यक्तिगत प्रकृतियों और स्थितियों से संबंधित कारक।

पारिवारिक पर्यावरण परिप्रेक्ष्य में यह दर्शाया गया है कि परिवार में भीड़–भाड़ लैंगिंक दुर्व्यवहार से संबंधित नहीं है, परन्तु माता–पिता के झगड़े और अन्तर्बाधाओं (Inhabitant) की कमजोरी जिससे

बच्चे की उपेक्षा होती है, परिवार में माता–पिता और बच्चे में स्नेहपूर्ण संबंधों का अभाव जिससे बच्चे को बल और संरक्षण प्राप्त नहीं होता, जीविका उपार्जन करने वाले पुरुष सदस्य का मद्यपान, उसमें उत्तरदायित्वता का अभाव, बच्चों का पर्याप्त नियंत्रण का अभाव, माँ का किसी अन्य पुरुष के साथ अवैध सम्बन्ध, सौतेले पिता का अधिपत्य और परिवार का सामाजिक अलगाव (यानी परिवार का सामाजिक तंत्रों या समाज की गतिविधियों में भाग नहीं लेना) वे कारक थे, जो लैंगिंक दुर्व्यवहार में अधिक महत्वपूर्ण थे।

कार्यस्थल का वातावरण भी लैंगिंक दुर्व्यवहार उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। केवल रमानी के अध्ययन में ऐसे कई मामले सामने आये जब छोटी आयु के पीड़ितों पर मालिक ने आक्रमण किया और साथ काम करने वालों ने उनको उत्पीड़ित किया जब वे घर/कार्यस्थल/स्कूल में बिल्कुल अकेले थे। कम आयु वाली लड़कियों का अकेला होना अपराधाकर्त्ताओं को अपराध करने के लिये उत्प्रेरित करता है।

3. भावात्मक दुर्व्यवहार के कारण (Causes of Emotional Abuse)–भावात्मक दुर्व्यवहार के भी चार प्रमुख कारण होते हैं, निर्धनता, माता–पिता का अपूर्ण नियंत्रण और परिवार में स्नेहपूर्ण संबंधों का अभाव, माता–पिता द्वारा अपने बचपन में दुर्व्यवहार का सामना न करना या बाल दुर्व्यवहार का अन्तर पीढ़ी हस्तांतरण और माता–पिता का मद्यपान इसके अलावा भी भावात्मक दुर्व्यवहार के अन्य कारण भी हैं। दुर्व्यवहार करने वाले माता–पिता में आधे से अधिक की आय का कम होना भी बताया जाता है। (जहाँ परिवार की आय 1000/– रुपये प्रतिमाह से कम होती है) जबकि उनको 5 से 12 परिवार के सदस्यों का भरण–पोषण करना पड़ता है। स्ट्रोस (1979) और डिश्नर (1984) ने भी बाल दुर्व्यवहार में निर्धनता को महत्वपूर्ण कारण माना है। जब कि लोग यह विश्वास करने लगे हैं कि बाल दुर्व्यवहार केवल सामाजिक, आर्थिक स्थिति व परिस्थितियों पर निर्भर नहीं है, यद्यपि यह सर्वाधिक निम्न आर्थिक एवं सामाजिक स्थितियों पर है।

बाल दुर्व्यवहार के कारणों का समाकलित माडल

बाल दुर्व्यवहार के एकीकृत माडल का प्रमुख आधार घर के आहाते या परिसर (Premise) में पिता और बच्चे की स्थिति एवं पारस्परिक सम्बन्धों पर निर्भर करती है। बाल दुर्व्यवहार का एकीकृत माडल के चार प्रमुख कारणों पर जोर देता है–

(1) पारिवारिक वातावरण

(2) संरचनात्मक तनाव

(3) माता–पिता के व्यक्तिगत विशेष गुण और

(4) उप–सांस्कृतिक सीख/इस माडल में पांच विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी होनी चाहिए।

(अ) बाल विकास,

(ब) सामाजिकरण की प्रक्रियाएँ,

(स) परिवार के अन्तक्रिया,

(द) सीखने के सिद्धांत,

(इ) रोष, आक्रमण, घृणा आदि में स्त्रोत –

इनको संक्षेप में निम्नानुसार वर्णन किया जा रहा है–

(अ) बाल दुर्व्यवहार को इससे समझा जा सकता है कि माता–पिता किस सीमा तक अपने बच्चों के साथ नकारात्मक अथवा अनुपयुक्त नियंत्रण की रणनीतियाँ अपनाते हैं। सामान्य तरीकों का उपयोग (बच्चों की सब आवश्यकताओं की पूर्ति) पर्याप्त नियंत्रण, निश्चित रूप से अनुशासित करना और सुस्पष्ट संवाद (Communication) बच्चे के (सामाजिक, भावात्मक और बौद्धिक विकास में सहायक होते हैं, जबकि 'असामान्य'' तरीकों से

बच्चे की आवश्यकताओं की उपेक्षा करना, अपर्याप्त नियंत्रण नकारात्मक रूप से अनुशासित करना, अस्पष्ट संवाद और बल प्रयोग पर आत्याधिक विश्वास) से बच्चे का लालन–पालन करने से बच्चे के विकास में अन्तर्बाधा (Inhibitant) उत्पन्न होती है और यह बाल दुर्व्यवहार का कारण बनता है। अधिकारिक पितृत्व (Authoritative Parenting)/ आदेश देने वाले माता–पिता) सत्तावादी पितृत्व (जो कि अपनी सत्ता का पूर्ण आज्ञा पालन चाहते हैं), भृपाल पितृत्व (सभी इच्छाओं/रुचियों का तुष्टीकरण) और लापरवाही की पितृत्व/उदासीन और अनुत्तरदायी होना और उचित ध्यान नहीं देना) बच्चे के लक्षणो और व्यवहार को प्रभावित करते है। सत्तावादी पितृत्व का रूप आत्याधिक हानिकारक होता है और बाल दुर्व्यवहार के लिए प्रेरक होता है।

(ब) तनाव असमायोजनपूर्ण प्रतिक्रियाओ को भी जन्म देते है क्योंकि दुर्व्यवहार करने वाले माता पिता स्पष्ट रूप से सभी परिस्थितियो में हिंसात्मक नही होते। बेरोजगारी और नौकरी में असंतोष जेसे कारण भी एक व्यक्ति के व्यवहसार को प्रभावित करते है और यही बाल दुर्व्यवहार का कारण बनता है।

(स) माता–पिता के व्यक्तिगत लक्षण जैसे अन्तर्निष्ठा विशेषताएं (चिड़ चिड़ा स्वभाव, आत्मकेन्द्रित होना, कठोरता), बच्चे के पालने की प्रवीणता का अभाव, और संसाधनो का अभाव (कम प्रतिष्ठा, कम शिक्षा और कम आय) भी बाल दुर्व्यवहार के कारण होते है।

(द) उप–संस्कृतिक सीख, यानी हिंसक घर में सामाजिकरण, या बचपन में हिंसा को झेलना भी बाल दुर्व्यवहार का एक अन्य कारण भी है।

बाल दुर्व्यवहार रोकने एवं शोषण के खिलाफ गैर सरकारी सामाजिक संगठनों द्वारा बच्चों के कल्याण दायर याचिकाओं में समय–2 पर न्यायालय द्वारा निर्देष जारी किया है, जिनमें कुछ वाद प्रमुख है।

लक्ष्मीकान्त पाण्डेय बनाम भारत संघ (1) के वाद में एक अधिवक्ता ने पत्र के माध्यम से उच्चतम न्यायालय को सूचित किया कि कुछ सामाजिक और स्वेच्छिक संस्थायें भारतीय बालकों को विदेषियों के गोद लिए जाने के लिए उन्हें विदेष भेजने का कार्य कर रही है और इस तरह बालकों का शोषण कर रही है। याचिका में यह भी आरोप लगाया गया कि गोद लेने के बहाने किषोरावस्था के अबोध बालक या तो भीषण विदेष यात्रा के दौरान कालकवलित (मृत्यु को प्राप्त होना) हो जाते है और यदि किसी प्रकार यात्रा के दौरान जीवित बच भी जाते है बिना उचित देखरेख के अभाव में उन्हें भिक्षुक या वेष्या बनकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

इस मामले में न्यायमूर्ति की भगवती ने बहुमत का निर्णय देते हुए उन सिद्धांतों को विहित किया जिसके अनुसार विदेषियों द्वारा भारतीय बच्चों को गोद लिया जा सकता है और सरकार एवं अन्य संस्थाओं को निर्देष दिया कि वे न्यायालय द्वारा निर्धारित (विहित किए) नियमों का पालन करें क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 15(3) और 39 (स) और (फ) के अधीन बालकों के कल्याण के लिए कार्य करना सरकार का संवैधानिक कर्तव्य हैं

एम.सी. मेहता बनाम तामिलनाडू राज्य(2) 1991 के मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि दिया सलाई निर्माण करने वाले कारखानों में जहां तीली में ज्वलनषील मसाला लगाया जाता है। बालकों को नियोजित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह खतरनाक नियोजन की श्रेणी में आता है। उन्हें पैंकिंग प्रक्रिया में लगाया जा सकता है। यहां भी उनके लिए 5000/– का बीमा कराना

आवष्यक है। जिसका प्रीमियम का भुगतान नियोक्ता द्वारा किया जायेगा।

एक अन्य वाद एम.सी. मेहता बनाम तामिलनाडू (3) के मामले में ऐतिहासिक महत्व के निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है कि 14 वर्ष से काम आयु के बालकों को किसी भी कारखाने, खान या अन्य संकटपूर्ण कार्य में बिलकुल नियुक्त नहीं किया जायेगा। न्यायालय ने सभी सरकारों और केन्द्रीय सरकारों को यह निर्देष दिया कि वे अनुच्छेद 24. 39. 50 (च) 41, 45, 47 के संवैधानिक निर्देषों का पालन करें और बालक श्रम प्रथा को शीघ्रतिषीघ्र समाप्त करें। न्यायालय ने इसके लिए विस्तृत मार्गदर्षन सिद्धांत विहित किया है। आगे न्यायालय ने यह भी निर्देष दिया कि बालकों को खतरनाक कार्यों से मुक्त करा देना होगा और उसके स्थान पर उसके परिवार के किसी वयस्क को काम में लगाना होगा। नियोजकों को प्रत्येक बालक के लिए 20,000/– रूपये की रकम ''बालक श्रम पुर्नावास व कल्याण खाते'' में जमा करना होगा। यदि सरकार किसी बालक को काम नहीं दे सकती तो वह उक्त खाते में 5000/– रूपये जमा करेगी। संरक्षक का कार्य होगा कि वह काम न मिलने पर इस रकम से प्राप्त ब्याज से बालक को 14 वर्ष तक षिक्षा दिलाए। संकट रहित कामों में कार्यरत बालकों के कार्य की अवधि 4 या 6 घण्टे से अधिक नहीं होगी और उसे 2 घण्टे पढ़ने के लिए दिया जायेगा जिसका व्यय नियोजक वहन करेगा।

बालकों के कल्याण के सम्बंध में नेषनल फेडरेषन ऑफ ब्लाइंड बनाम संघ लोक सेवा आयोग (4) के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णित किया है कि शारीरिक रूप से विकलांग (अन्धे एवं अर्ध अन्धे) व्यक्तियों को भी भारतीय सिविल सेवा की परीक्षा में बैटनने का हक है और सरकार उन्हें ब्रेनलिपि या सहायक लेखक द्वारा ऐसी परीक्षा में बैठने की सुविधा भी उपलब्ध कराना चाहिए। राष्ट्रीय अन्ध संघ द्वारा अनुच्छेद 32 के अधीन यह प्रतिनिधि वाद दायर किया गया था।

मोहनलाल शर्मा बनाम उ.प्र.(5) के वाद में याचिककर्ता ने न्यायालय को तार के माध्यम से यह सूचित किया कि उसे आषंका है कि पुलिस ने पुलिस अभिरक्षा में उसके पुत्र की हत्या कर दी है। न्यायालय ने इसे तार याचिका मानकार निर्देष दिया कि मामले की पूरी जांच के लिए प्रकरण सी. बी.आई. को सौंप दिया गया।

गौरव जैन बनाम भारत संघ (6) के मामले में सार्वजनिक हितवाद द्वारा यह निर्देष देने की मांग की गई थी कि वेष्याओं के बच्चों के लिए अलग स्कूल और छात्रावास खोले जाए। न्यायालय ने इस मांग को अस्वीकार करते हुए निर्णय दिया कि ऐसा करना उन बालकों के हित में नहीं है उन्हें देष की मुख्य धारा में रहना चाहिए। अलग रहने से उनके मन में स्वयं हीन की भावना उत्पन्न होगी, जो उचित नहीं है।

उपसंहार

उपरोक्त सभी कारण आपस में मिलकर इसकी व्याख्या करते है कि किस प्रकार वे अपराधाकर्ताओ के व्यवहार को प्रभावित करते है जो कि अन्ततः बाल दुर्व्यवहार का कारण बनता है। जनता और सरकार की बाल दुर्व्यवहार की समस्या के दिलचस्पी कम होने के कारण कई राज्यों में बाल संरक्षण आयोग का गठन किया गया है भारत सरकार एवं राज्य सरकार के प्रयासो के बावजूद भी बाल दुर्व्यवहार संख्या में कमी नही आयी है अमेरिका में गिल ने अनुमान लगाया है कि प्रतिवर्ष 25 और 41 लाख के बीच बाल दुर्व्यवहार की घटनाएं होती है। स्काट ने यह प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है कि प्रति

1000 बच्चे में से एक और 12 के बीच अपने माता–पिता अथवा अभिभावको के दुर्व्यवहार के शिकार होते है। भारत में निर्धनता, अशिक्षा और परिवारो के बड़े आकार को देखते हुऐ यह कहा जा सकता है कि प्रति 1000 बच्चो में से 5 और 15 के बीच बच्चो के साथ भारत देश में माता–पिता और मालिको के द्वारा दुर्व्यवहार किया जाता है।

आज यह महसूस किया जा रहा है कि कानून दुर्व्यवहार को रोकने में अप्रभावी सिद्ध हो सकता है वह उन सभी बच्चो को सुरक्षा प्रदान नही कर पाया, जो बढ़ी हुई गांव की गरीबी और शहरी क्षेत्रो में जीवन संघर्ष के कारण बालक काम करने एवं दुर्व्यवहार सहने के लिये बाध्य है।

बाल दुर्व्यवहार का मुख्य कारण गरीबी और निर्धनता है, इन दो बिन्दुओ को (गरीबी और निध र्नता) मूल कारणो को रातोरात समाप्त नही किया जा सकता, तो उसका व्यवहारिक पहलू यह है कि बालश्रम के व्यवसाय को नियंत्रित कर दिया जाये एवं उसकी समय–समय पर मॉनीटीरिंग की जाये, ताकि बाल दुर्व्यवहार पर अंकुष लगे।

संदर्भ सूची

1. (1984) 2 एस.सी.सी. 244
2. ए.आई.आर. 1991 एस.सी. 417
3. (1996) 6 एस.सी.सी. 756
4. (1993) 2 एस.सी.सी. 411
5. (1989) 2 एस.सी.सी. 609
6. ए.आई.आर. 1990 एस.सी. 292

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

नागौद राज्य के शासकों का कला में योगदान

❐ डॉ. सुधा सोनी

शोध सारांश

नागौद राज्य 24/120 और 24/190 उत्तरी अक्षांश एवं 800 /28 तथा 800/53 देशान्तर पूर्वी के बीच स्थित है।[1] प्राकृतिक सम्पदा और सुषमा से सम्पन्न नागौद राज्य को भौगोलिक दृष्टि से भागों में विभक्त किया जा सकता है। दक्षिण–पश्चिम का विस्तृत पर्वतीय क्षेत्र और उत्तर–पूर्व का कृषि मैदान है। वर्तमान में पर्वतीय क्षेत्रों के अधिकांश भाग को काट–छांट कर कृषि भूमि में परिवर्तित कर दिया गया है। राजवंशों के शासनकाल में नागौद का दक्षिण–पश्चिमी भाग सघन वन प्रान्त था। इस भाग में वन्य प्राणियों के अलावा आदिम जातियों के छोटे–छोटे गाँव थे।

नागों का मुखिया अमरनाथ भारशिव था, उसके नाम से सारा क्षेत्र थर–थर काँपता था, जनश्रुति है कि उन्होंने अमरन नदी के किनारे किसी नागा सन्यासी को युद्ध में पराजित कर वध कर दिया था। राजा चैन सिंह ने उचेहरा की राजधानी नागौद स्थानांतरित किया, चूँकि शासन व्यवस्था एवं सुरक्षा की दृष्टि से अनुकूल प्रतीत होता हुआ, इसे राजधानी के लिए ठीक ढंग से बसाया एवं वध का स्थल होने के कारण नगर का नाम 'नागाद्य'' पड़ा। जो बिगड़कर 'नागौद' हों गया। नागौद राजधानी की स्थापना 1742 में हुई।[2]

नागौद राज्य विन्ध्यांचल की उपात्यकाओं के मध्य स्थित है, पूर्व की और इसकी सीमा टमस नदी को स्पर्श करती है। दक्षिण में, नागौद राज्य मैहर की पहाड़ियों तक फैला हुआ है। पश्चिम की ओर इस राज्य की सीमाएं विन्ध्यांचल पर्वत की ओर पन्ना श्रेणी तक फैली हुई है। उत्तर दिशा में सिंहपुर गांव तक इस राज्य की सीमा है।

नागौद में परिहारों का शासन भोजराज परिहार (1492–1503 ई.) से प्रारंभ होता है। 1478 ई. में भोजराज उचेहरा नगर आकर वहॉ अपनी राजधानी स्थापित की।[3]

नागौद राज्य के परिहार राजा स्थापत्य के प्रेमी थे इन राजाओं ने दुर्ग गढ़ी तालाब बावलियों का निर्माण कराया।

भोजराज ने उच्चकल्प के दुर्ग की मरम्मत करायी, बरूआ नदी के पश्चिम में एक सुन्दर गढ़ी का निर्माण करवाया तथा नगर में एक सरोवर एवं

* प्राध्यापक (इतिहास), शासकीय कन्या महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

बावली बनवायी।[4] उच्च कल्प का वर्तमान नाम उचेहरा है परिहारों में प्रचलित किवदंतियों के अनुसार उनके पूर्वज पवई होते हुए मऊ आये तथा उचेहरा के पुराने राज्य को अपने अधिकार में लेने में सफल हुये भोजराज के शासनकाल से गढ़ी, किले, दुर्ग निर्माण का कार्य प्रारंभ हो जाता है, भोजराज के शासनकाल से प्रारंभ हो जाता है, भोजराज ने वरूआ .... ने वरूआ नाले के पश्चिम मे सन्यासियों के स्थान पर अपनी गढ़ी बनवाई[5] के पश्चिम में सन्यासियों के स्थान पर अपनी एक गढ़ी का निर्माण कराया। इसके बाद भारतशाह 1612–1648 ई. तक सिंहासनारूढ़ रहे।

भारत शाह ने उचेहरा एवं रहिकवारा की गढ़ियों का निर्माण कराया। भारतशाह की रानी लाडली ने रहिकावारा में एक तालाब का निर्माण कराया था। इसे रानी तालाब कहा जाता है।[6]

फकीरशाह के बाद चैन सिंह (1720–1748 ई.) ने शासन का भार सम्हाला। चैन सिंह ने जब राज्य का शासन सूत्र अपने हाथ लिया तब राज्य का विस्तार पश्चमोत्तर में केन नदी तक हो गया था। इस विस्तृत भू–भाग का प्रबंध उचेहरा से नहीं हो पा रहा था। अतः राज्य के मध्य में राजधानी बनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई।[7]

चैन सिंह ने नागौद कोट के अंदर बने सन्यासियों के भवनों की मरम्मत करायी और महल का निर्माण कराया। उनकी छोटी रानी रामाधार ने नागौद नगर के पश्चिम में एक तालाब बनवाया था। जिसे रानी तालाब के नाम से जाना जाता है।[8]

1748 ई. में अहलाद सिंह ने नागौद राज्य का शासन सम्हाला और इसके साथ ही नागौद किले का बाहरी कोट बनवाना प्रारंभ किया। नागौद गढ़ी अहलाद सिंह ने बनवाया था। नागौद गढ़ी के सामने का प्रवेश द्वार इंजीनियर पंडित बांके बिहारी ने 1912–13 में बनाया। गढ़ी में दो रहाईस बड़ी रहाईस तथा छोटी रहाईस के नाम से जानी जाती है। प्रवेश द्वार से सामने ही दरबार हाल है। मुख्य दरबार हाल 35×55 उसके बगल में 17×60 तथा भूमिगत 17×50 एवं पश्चिम की ओर 13×30 का एक अन्य हाल है। दरबार हाल के सामने दो कमरे हैं, जिनमें बायीं ओर कागजात तथा दायीं ओर न्याय करते थे। गढ़ी के अंदर चार कुएँ थे। जिनमें दो सुरक्षित हैं। वर्तमान में गढ़ी के उत्तर दक्षिण के कुएँ उपयोग में लाए जा रहे हैं। गढ़ी में 6 बुर्ज है। रमना मैदान में दशहरे में आर्मी से महाराज सलामी लेते थे। गढ़ी का क्षेत्रफल लगभग 5 एकड़ की भूमि पर है। गढ़ी सम्पूर्ण पर कोटे के अंदर है। प्रवेश द्वार के बायीं ओर सुरंग थी। जो बारा पत्थर के तालाब में स्थित मंदिर में निकलती थी। जो वर्तमान में बंद कर दी गयी है।

शिवराज सिंह 1780–1818 ई. – राजा अहलाद सिंह की असामाजिक मृत्यु के बाद शिवराज सिंह तीन वर्ष की अवस्था में राज्याधिकारी हुये। उन्होंने मातुश्री आधारकुंवारि की संरक्षण में शासन किया।

बलभद्र सिंह 1818–1831 ई. – 1818 ई. में बलभद्र सिंह नागौद राज्य की गद्दी के अधिकारी हुये। राजा बलभद्र सिंह के शासनकाल में ताँबे का एक विशेष प्रकार का सिक्का चलाया था। जिसमें 'जरब रीवा' तथा 'जख सिक्का रीवा' अंकित था।

राघवेन्द्र सिंह 1831–1874 ई. – नागौद राज्य से पिता बलभद्र सिंह के निर्वासित होने के बाद उनके अवयस्क पुत्र राघवेन्द्र राजा बने, उनके नाबालिक होने के कारण 1831 ई. से 1938 ई. तक नागौद रियायसत कोर्ट ऑफ वार्ड रही।

यादवेन्द्र सिंह 1874–1922 ई. – पिता राघवेन्द्र सिंह की मृत्यु के बाद यादवेन्द्र सिंह का राज्याभिषेक हुआ। उस समय यादवेन्द्र सिंह 19 वर्ष के थे। 12 जून 1878 ई. को आपका राज्याभिषेक हुआ।

परहरेन्द्र सिंह राज्य उत्तराधिकारी हुए। महेन्द्र सिंह 1926 ई. से 15 अगस्त 1947 ई. तक।

नरहरेन्द्र सिंह की मृत्यु के पश्चात् अल्प वयस्क महेन्द्र सिंह राजा हुए। अवयस्क होने के कारण नागौद राज्य का शासन अंग्रेज सरकार के हाथ में चला गया।

उचेहरा गढ़ी–

उचेहरा गढ़ी में दो रहाईस थी। जिन्हें छोटी रहाईस तथा बड़ी रहाईस के नाम से जाना जाता था, छोटी रहाईस नष्ट हो गयी है। जबकि बड़ी रहाईश में महाराज साहब निवास कर रहे हैं। ये रहाईस एक समान बनी हुई थी। गढ़ी में मेहराबदार दो दरवाजे हैं। दरवाजे के पहले स्तंभों पर आधारित बराण्डा है। जिसमें कचेहरी लगती थी। गढ़ी का शिलाखाना तीन कमरों का है। गढ़ी के दाहिनी गुर्जे के पास मजार है। गढ़ी प्रस्तर खण्ड के परकोटे से घिरा हुआ है। दाहिनी ओर ही सेना अस्तबल था। छोटी एवं बड़ी रहाईसों दोनों में जल के लिए कुएँ थे। जिसमें बड़ी रहाईस का ही कुआॅ सुरक्षित है। गढ़ी के बायीं ओर सैनिकों के रहने के लिए कमरे तथा गुसलखाना आदि बने हुए थे। नरेन्द्र सिंह की मृत्यु के पश्चात् भारतशाह राजा हुए। उन्होंने उचेहरा एवं रहिकवारा की गढ़िया बनाई।

इलाका भटनवारा (1627 ई.) – राजा साहब भारतशाह के छोटे पुत्र मदनशाह थे। इनको इलाका भटनवारा जमा कमाल 2500/– रू. सालाना आमदनी प्राप्त हुआ। 1627 ई. को भटनवारा गढ़ी बनवायी गई। जिसमें 15 मौजे थे।

इलाका पिपशेखर (1686 ई.) – राजा साहब पृथ्वीराज सिंह के दूसरे पुत्र कीरत सिंह जू देव थे। इनको इलाका पिपरोखर 1686 ई. में मिला तथा गढ़ी का निर्माण कराया गया।

इलाका उमरहट (1780 ई.) – राजा साहब अहलाद सिंह के द्वितीय पुत्र दिलराज सिंह को इलाका उमरहट 1780 ई. को जमा कमाल 4250 रू. सालाना आमदनी हिस्सा में प्राप्त हुआ। जिसमें 6 मौजे थे। यह गढ़ी हिस्से बांट के बाद बनवायी गयी।

इलाका पतौरा (1788 ई.) – राजा साहब अहलाद के तृतीय पुत्र महिपाल सिंह को इलाका पतौरा 1788 ई. में प्राप्त हुआ। इलाका पतौरा जमा कमाल 3340/– रू. सालाना आमदनी थी। जिसमें 17 मौजे थे। सोलंकी गढ़ी का निर्माण 1780 ई. में कराया गया था।

इलाका जिगनहट (1870 ई.) – राजा साहब बलभद्र सिंह के तीसरे पुत्र छत्रसाल सिंह को 1870 ई. में इलाका जिगनहट प्राप्त हुआ। जिसमें जमा कमाल 4800/– रू. नगद माहवार नागौद राज्य से दिए गए। इलाके में 7 मौजे दिए गए।

इलाका कोड़र (सुरदहा) – 1720 ई. – ठाकुर साहब देवी सिंह के दूसरे पुत्र छठवीं पीढ़ी के गुमान सिंह को 1720 ई. में मौजा कोड़र जमा कमाल 400/– रू. दिए गए। यह गढ़ी सुदृढ़ एवं सुंदर है।

इलाका कुंदहरी (1720 ई.) – राजा साहब फकीरशाह के तीसरे पुत्र बख्तावर सिंह उर्फ छोटेलाल सिंह को कुंदहरी तथा लालपुर मौजा 1720 ई. में मिला। जिसमें गढ़ी का निर्माण कराया गया था।

इलाकारगला – 1620 ई. से 1630 ई. – राजा साहब नरेन्द्र शाह के एवं लगरगवां मिलकर जमा कमाल 500/– दिये गये। गढ़ी का निर्माणकाल इसी समय का है।

रहिकवारा गढ़ी–

रहिकवारा गढ़ी नागौद सुरदहा मार्ग पर नागौद से रहिकवारा गढ़ी पर तेली राजा धार सिंह का

प्रभुत्व था, परिहार वंशज के राजा भोजराज आये अब उचेहरा नगर में परिहारी राज्य का अस्तित्व न था। सोहगढ़ में इस क्षेत्र के पुराने शासक तेलियों का और उचेहरा पर सन्यासियों (परिव्राजकों) का अधिकार था। सन्यासी भी इस भू–भाग के प्राचीन शासक रह चुके थे और अब भी स्थान–स्थान पर उनके अड्डे थे।

भोजराज के बाद करन देव शासक हुए। तत्पश्चात् नरेन्द्र सिंह के साम्राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली। नरेन्द्र शाह सम्राट अकबर के समकालीन थे। नरेन्द्रशाह की मृत्यु के बाद 1610–48 ई. तक भारतशाह राजा हुए। भारतशाह ने चेहरा एवं रहिकवारा की गढ़ियों का निर्माण कराया। वर्तमान में गढ़ी जीर्ण–शीर्ण अवस्था में है। यह पूर्णतः नष्ट होती जा रही है।

उचेहरा बावड़ी –

उचेहरा में स्थित बावड़ी चौराहा में बावड़ी है। इस स्थान की बावड़ी चौराहा के नाम से जाना जाता है। उचेहरा में राजा अहलाद सिंह ने (1749–1780 ई.) राजमंदिर उचेहरा राज परिवार के दग्धस्थल पर बावली का निर्माण कराया गया जो आज भी विद्यमान है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. करीम, मोहम्मद फजल, 1945, नागौद राज्य का भुगोल, नागौद।
2. परिहार, अनुपम सिंह, 2006–07, विन्ध्य क्षेत्र के प्रतिहार वंश का ऐतिहासिक अनुशीलन (शोध प्रबंध), पृष्ठ 115.
3. राधेशरण, 2001, विन्ध्य क्षेत्र का इतिहास, भोपाल, पृष्ठ 465.
4. परिहार, अनुपम सिंह, 2006–07, विन्ध्य क्षेत्र के प्रतिहारवंश का इतिहास, सतना, पृष्ठ 104.
5. परिहार, अनुपम सिंह, 2006–07, विन्ध्य क्षेत्र के प्रतिहार वंश का इतिहास, सतना, पृष्ठ 104.
6. परिहार, रामलखन सिंह, 1995, प्रतिहार राजपूतों का इतिहास, सतना, पृष्ठ–97.
7. परिहार, रामलखन सिंह, 1995, प्रतिहार, राजपूतों का इतिहास, सतना, पृष्ठ 11–186।
8. सोलंकी, रेखा सिंह, 2009–10 नागौद राज्य का पुरातात्विक सर्वेक्षण (लघु शोध प्रबंध) अ.प्र.सिंह वि.वि., पृष्ठ 26।
9. परिहार, रामलखन सिंह, 1995, प्रतिहार, राजपूतों का इतिहास, सतना, पृष्ठ–115.
10. सनद क्रमांक 83, 1859 ई. टीड्रीज इंगेजमेन्ट एण्ड सनदस खण्ड–5, पृष्ठ 267–68.
11. परिहार, रामलखन सिंह, 1995, प्रतिहार राजपूतों का इतिहास, सतना, पृष्ठ 115

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

आर्यावर्तीय पर्वत एवं कालिदास : एक भौगोलिक अध्ययन

❐ डॉ. शीलेन्द्र कुमार पाठक

शोध सारांश

महाकवि कालिदास की उपलब्ध सात रचनाओं मे तात्कालिक भौगोलिक परिस्थिति का यथार्थ वर्णन उपलब्ध हो जाता है जो आज भी जीवन्त रूप मे हमारे सम्मुख दृष्टव्य है। यद्यपि कालिदास भूगोल के शिक्षक के रूप मे कही कार्यरत थे ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हो सका है फिर भी उनका भागौलिक ज्ञान राष्ट्रवाद तथा प्रकृतिवाद के सन्दर्भ मे न केवल अध्ययनरत छात्रों के लिए अपितु आधुनिक शिक्षकों के लिए भी आदर्श है। जिसमे भरतीय पर्वतों की उँचाई, उनके विस्तार, बनावट तथा उनमे उगनेवाली औषधियों एवं उन पर्वतों का राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक महत्त्व आदि का सांगोपांग वर्णन किया गया है।

विश्व की प्राचीनतम् भाषाओं मे अग्रगण्य संस्कृत भाषा की समृद्धि का कारण यदि अन्वेषण का मुख्य विषय बना लिया जाय तो समूचा जीवन उसके अन्वेशण मे ही समाहित हो जायेगा किन्तु तब भी निश्चितरूप से यह कह पाना नितान्त कठिन प्रतीत होगा कि उसकी विशेषताओं की गणना की जा सकती है।

उसी संस्कृत भाषा मे निबद्ध महाकवि कालिदास की उपलब्ध सात रचनाओं में तात्कालिक भौगोलिक परिस्थिति का यथार्थ वर्णन उपलब्ध हो जाता है जो आज भी जीवन्त रूप मे हमारे सम्मुख दृष्टव्य है। यद्यपि कालिदास भूगोल के शिक्षक के रूप में कही कार्यरत थे ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हो सका है फिर भी उनका भागौलिक ज्ञान राष्ट्रवाद तथा प्रकृतिवाद के सन्दर्भ में न केवल अध्ययनरत छात्रों के लिए अपितु आधुनिक शिक्षकों के लिए भी आदर्श है।

महाकवि प्रकृति के पुजारी हैं। यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुकी है। तभी तो उनकी रचनाओं पदे–पदे प्रकृति की मनारम झांकी के सहज दर्शन हो जाते है। प्रकृति का नैसर्गिक चित्रण पर्वतों के बिना किसी भी स्थिति मे पूर्ण नहीं माना जा सकता। अतः महाकवि ने अपनी रचनाओं मे आर्यावर्त के समस्त पर्वतों का मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है। यथा–

मलय–

मलय पर्वत महाकवि को अत्यन्त प्रिय है, वे सुकुमार भावों के चहेते कवि हैं, कविता को सजाने

* विभागाध्यक्ष (संस्कृत), यमुना प्रसाद शास्त्री महाविद्यालय, सेमरिया, रीवा (म.प्र.)

में वे श्रृंगार को अस्त्र के रूप में प्रयोग करते हैं, अतः उसकी विशेषताओं का वर्णन करते हुए महाकवि ने कहा है कि, वहाँ से होकर वहनेवाली पवन कामोत्तेजक है। अतः वहाँ से बहने वाली वायु के प्रभाव उस क्षेत्र में निवास करनेवाले नागरिकों के मन में काम विकार उत्पन्न हो जाता है।[1] राजा पुरुरवा अपने मन की व्यथा को प्रकट करते हुए अपने मित्र विदूषक से कहता है कि, मलय पर्वत चन्दन के वृक्षों के लिए प्रसिद्ध है। सम्पूर्ण आर्यावर्त के निवासी मलय पर्वत से लाई हुई चन्दन की लताओं से अपनी देह का श्रृंगार करते हैं। मलय पर्वत के चन्दन वृक्ष मे औषधीय गुण विद्यमान हैं। शकुन्तला कहती हैं कि–''अब मैं विवाहोपरान्त अपने पिता से दूर पतिगृह मे जाकर मलय पर्वत की उखाड़ी हुई लता के समान दूसरे स्थान पर कैसे जीवन धारण कर सकूँगी–

''मलयतरून्मीलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितुं धारयिष्यते''[2]

मलय पर्वत की लताओं की विशेषता यह है कि, ये केवल मनय पर्वत में ही जीवन धारण कर सकती है अन्यत्र ले जाने पर सूख जाती है।

यह अवश्य कहा जा सकता है कि, वहाँ से अन्यत्र जाने पर भी इनका औषधीय गुण उसी प्रकार विद्यमान रहता है।

कैलाश–

कैलास पर्वत को कुबेर का राज्य कहा गया है। कैलास पर्वत में निवास योग्य स्थान था। जहाँ कुबेर (धनपति) राज्य किया करते थे। कुबेर के दरवार मे देवराज इन्द्र की अप्सरायें नृत्य के लिए जाया करती थीं। जो आकाश मार्ग से गमनागमन करती थीं। जिन्हें केशी दैत्य ने बलात पकड़ लिया था और आकशमार्ग से लेकर जा रहा था। उर्वशी की सखियों द्वारा चीख–पुकार करने पर जब यह वृत्तान्त राजा पुरुरवा को ज्ञात होता है तब उसके द्वारा उस दुर्दान्त दैत्य का वध कर दिया गया–

ऊरुद्भवा नरसखस्य मुने सुरस्त्री,
कैलासनाथमनुसृत्य निवर्तमाना।
बन्दीकृता विबुध शत्रुभिरर्धमार्गे,
क्रन्दत्यतः करुणमप्सरसांगणोऽयम्।।[3]

हेमकूट पर्वत–

हेमकूट पर्वत किंपरुष वर्ष के अन्तर्गत बताया गया है।[4] हेमकूट पर्वत कश्यप और अदिति की तपस्थली के रूप में प्रसिद्ध है[5] जो पुराणों मे मानव जाति के आदि पुरुष माने गये हैं।

हेमकूट पर्वत का उल्लेख विक्रमोर्वशीयम् नाटक मे उस स्थान पर किया गया है जब केशी द्वारा बन्दी बनाई गई उर्वशी की खोज में राजा पुरुरवा जाते हैं तथा पुनर्मिलन के लिए वहाँ ये दिख रहे हेमकूट पर्वत की ओर इशारा करते हुए कहा गया है–''एतस्मिन् हेमकूट शिखरे''।[6]

अर्थात् इसी हेमकूट पर्वत के शिखर पर प्रतीक्षा करनी है, वापस आने पर यहीं मिलन किया जायेगा। सभी अप्सरायें कहती हैं, इसी हेमकूट पर्वत के शिखर मे मिलना ठीक है। हम सभी तब तक आपकी प्रतीक्षा करती है। ऐसा कहकर सभी हेमकूट पर्वत पर चढ़ने का अभिनय करती है–

''इति हेमकूटशिखरे नाट्येनाधिरोहन्ति''[7]

गन्धमादन–

विहार करने योग्य पर्वतों मे गन्धमादन पर्वत को महाकवि ने श्रेष्ठ बताया गया है। जैसा कि उसके नामकरण से ही प्रतीत होता है। चित्रलेखा ने उर्वशी से कहा कि, विद्याधर कन्या उदयवती ने राजा पुरुरवा को गन्धमादन पर्वत की ओर लेकर विहार करने के लिए चली गई ऐसी आशंका की गई है।[8]

कुमारसंभव महाकाव्य में गन्धमादन पर्वत को ओषधिप्रस्थ नगरी जहाँ पर्वतराज हिमालय निवास करते हैं, का उपवन भी कहा गया है। गन्धमादन को कल्पवृक्षों की छाया से युक्त बताया गया है–

सन्तानकतरूच्छायासुप्तविद्याधराध्वगमम्।
यस्य चोपवनं बाह्यं गन्धवद्गन्धमादनम्।।[9]

सुरभिकन्दर–

अत्यन्त रमणीय 'सुरभिकन्दर' नामक पर्वत है। जिसकी रमणीयता का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि, वह पर्वत इतना रमणीय है कि, कोई भी व्यक्ति वहाँ जाकर उसकी रमणीयता को देखकर बुद्धि भ्रम में पड़कर खो सकता है– ''सुरभि कन्दरो नाम विशेष रमणीयः सानुमाना– वलोक्यते।'' सम्भव हो वहाँ की प्राकृतिक गुफायें ऐसी हों जहाँ जाने पर मार्ग की प्रतीति सहजतया न होती हो।

हिमालय–

महाकवि को हिमालय सबसे अधिक प्रिय है। यद्यपि यह कोई नई बात नहीं है कि, हिमालय महाकवि को प्रिय है। हिमालय की रमणीयता स्वतः सबके मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। कवि तो सुकुमार हृदय होता है। भावनाओं की सवारी करना उसको प्रिय होता है। अतः भावों में आरूढ़ कवि ने हिमालय जैसे परम पावन पर्वत को पाकर 'कुमार संभव' महाकाव्य मे उसे पर्वतराज की संज्ञा प्रदान की है।[10]

हिमालय कालिदास की मनःस्थिति में अद्भुत है। केवल यह गौरव हिमालय को ही प्राप्त है कि, वह पर्वत रूप मे जड़ है तथा वह साथ ही शरीरधारी भी है।[11]

सुमेरु–

सुमेरु पर्वतों की ऊँचाई की इयत्ता है। आध्यात्मिक जगत में भी सुमेरु का उल्लेख किया गया है। जप माला हो या धारण करने वाली माला, दोनों प्रकार की मालाओं के एक सौ आठ मनकों के ऊपर स्थान है सुमेरु का। सत्ताइस नक्षत्रों की चार आवृत्ति के ऊपर का स्थान सुमेरु का है। मालाजाप मे भी सुमेरु का उल्लंघन वर्जित है। इन तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि, सुमेरु ही विश्व में वह पर्वत है जिसे लांघा नहीं जा सकता। महाकवि के द्वारा हिमालय पर्वत की महिमा का गान करते हुए उसे सुमेरु पर्वत की उत्तुंग चोटियों से उपमित किया गया है। जिस प्रमाण से भी यह सिद्ध होता है कि, सुमेरु पर्वत सबसे अधिक ऊँचा पर्वत है। महाकवि को गर्व है कि, वे ऐसे पर्वतों वाली भूमि के वासी हैं, जहाँ सुमेंरु जैसा उत्तुंग पर्वत है। मुक्तकण्ठ से उसकी प्रशंसा करते हुए महाकवि कहते हैं–

यज्ञ भाग भुजां मध्ये पदमाताम्बुषा त्वया।
उच्चैर्हिरण्यमयं श्रृगं सुमेरोर्वितस्वीकृतम्।।[12]

निष्कर्ष–

प्रस्तुत शोध का निष्कर्ष यह है कि, महाकवि ने मानव जीवन को पर्वतों से जोड़ने का कार्य किया है। उनके अनुसार पर्वत मानव के लिए परमोपयोगी हैं, वहाँ से न केवल मनोरंजन अपितु सुरक्षा और जीवनोपयोगी सभी प्रकार की वस्तुओं की प्राप्ति होती है। प्रकृति की नैसर्गिक सुरम्यता तो है ही।

सन्दर्भ

1. ''इदमसुलभ– वस्तु प्रार्थना – दुर्निवारं, प्रथममपि मनो मे पंचबाणः क्षिणोति। किमुत मलय– वातोन्मूलितापाण्डुपत्रैः, रुपवन– सहकारैर्दशितेष्वंकुरेषु।। (विक्रमोर्वशीयम् 2/6
2. अभिज्ञान शाकुन्तलम् पृ0 210
3. विक्रमोर्वशीयम् 1/4
4. ''मातलिः–आयुष्यमन्! एष खलु हेमकूटो नाम किम्पुरुषपर्वतस्तपः संसिद्धिक्षत्रम्।'' (अभिज्ञान शाकुन्तलम् पृ. 371)

5. स्वायंभुवान्मरीचेर्यः प्रवभूव प्रजापतिः।
विक्रमोर्वशीयम् पृ. 11
6. विक्रमोर्वशीयम् पृ. 13
7. ''उर्वशी किल तं रतिसहायं राजर्षिममात्येषु निवेशितराज्यपुरं गृहीत्वा गन्धमादनवनं विहर्तुं गता'' (विक्रमोर्वशीयम् पृ. 151)
8. कुमारसंभव महाकाव्यम् 6/46
9. अथ विश्वात्मने गौरी सन्दिदेश मिथः सखीम्।
दाता मे भूभृतां नाथः प्रमाणीक्रियतामिति।।
(कुमार संभव महाकाव्य 6/1)
10. जंगमं प्रैष्यभावे वः स्थावरं चरणांकितम्।
विभक्तानुग्रहं मन्ये द्विरूपमपि मे वपुः।।
(कुमार संभव महाकाव्य 6/58)
11. कुमारसंभव महाकाव्य 6/71
12. सुरासुरगुरुः सोऽत्र सपत्नीकस्तपस्यति।।
(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 7/9)

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में रक्षा समझौतों के नये आयाम

❐ डॉ. रोहित कुमार तिवारी

शोध सारांश

आज मानव विज्ञान के युग में सांसें ले रहा है और अपने को विकसित तथा विकासोन्मुखी मानकर हर्षित और गर्वित भी हो रहा है। यह सोचना सुखद है किन्तु उसके साथ ही विकास की अंधी होड़ में ईर्ष्या, प्रतिद्वन्दिता तथा आपसी तनाव भी हमें प्रकृति से उपहार के रूप में प्राप्त हो रहे हैं। ऐसे में विकास की यह लीला कितनी सुखद होगी इसकी कल्पना करना ही भयावह प्रतीत होती है। भारतीय दर्शन के अनुसार जीवन के दस सुखों में चौथा सुख अशत्रुता को माना गया है, जिसके लिए आवश्यक है कि, हमारे राष्ट्र का अपने पड़ोसी राष्ट्र से अच्छे सम्बन्ध बने रहें। हम परस्पर एक दूसरे के विकास में सहयोग करते रहें। इसके लिए आवश्यक है कि, सभी राष्ट्र अपने देश के उत्पादनादि संसाधनों को मिलकर बांटकर उपभोग करने की नीति का निर्धारण करें। प्रस्तुत शोध आलेख में इसी विषय को शोध का मुख्य विषय निश्चित कर शोध किया गया है। जो विश्व के राष्ट्रों के प्रति मैत्री–भाव को बढ़ाकर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के सुधार में अहम भूमिका का निर्वहन कर सकेगा।

अंतर्राष्ट्रीय संबंध के क्षेत्र में भारत ने पिछले कुछ वर्षों में नई ऊँचाइयां तय की हैं। हालांकि इस समयांतराल में सभी क्षेत्रों में भारत का प्रदर्शन चौतरफा विकास वाला रहा है लेकिन यह कहना गलत नहीं होगा कि सरकार की सबसे बड़ी कामयाबी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में रही है। यह अतिशयोक्ति नहीं होगा कि इस वर्ष के दौरान विश्व समुदाय में भारत की हैसियत बढ़ी है। सुरक्षा और विदेश नीति एक दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा परिणामस्वरूप किसी राष्ट्र राज्य की सुरक्षा चिंताएँ उसके अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को तय करती हैं।

सरकार ने भारत के ढाँचे का इस्तेमाल रक्षा समानों के सबसे बड़े आयातक के रूप में 'मेक इन इंडिया' की खातिर विदेशी कंपनियों को आकर्षित करने के लिए किया। कंपनियाँ एक बड़े निर्माण आदेश तथा सस्ते श्रम के प्रति आश्वस्त होंगी, जबकि भारत की सुरक्षा उपकरणों को लेकर

* अतिथि विद्वान (राजनीतिशास्त्र), पं. रामकिशोर शुक्ल स्मृति शा. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, ब्यौहारी, जिला–शहडोल (म.प्र.)

भरोसेमंद होगी, साथ–ही–साथ इससे रोजगार सृजन की संभावनाओं को भी बल मिलेगा क्योंकि इससे भारत में कई तकनीकें साधारणतया विभिन्न प्रतिबंधात्मक शासनों द्वारा नियंत्रित होती हैं, ऐसे में आवश्यक है कि सरकार विदेशी सरकारों के साथ बातचीत करे ताकि इन तकनीकों की राह में आने वाली रूकावटों को दूर किया जा सके।

राज्य सरकार ने सत्ता में आते ही अपने पड़ोसी देशों को अपने शपथ ग्रहण समारोह में आमंत्रित किया तथा उन्हें आश्वस्त करने की कोशिश की कि भारत का विशाल रक्षा बल किसी को डराने–धमकाने के लिये नहीं है, बल्कि प्राकृतिक आपदा तथा अन्य वैश्विक आपदा के समय उनकी मदद करने के लिये है, जैसा कि भारतीय सेना ने भूकंप पीड़ित नेपाल की सहायता में अपनी अग्रिम भूमिका निभाई है। ठीक उसी तरह, इराक तथा यमन में संघर्ष क्षेत्रों से भारतीय फौज पड़ोसी देशों के नागरिकों को निकालकर बाहर सुरक्षित ले आई। यह साल इस बात का भी गवाह है कि किस तरह भारत की सुरक्षा को मजबूत करने के लिये सरकार ने कई देशों के साथ सामरिक भागीदारी की है तथा मौजूदा सामरिक भागीदारी को और मजबूत किया है।

दक्षिण एशिया के बाहर प्रधानमंत्री ने पहले द्विपक्षीय विदेशी दौरे के दौरान, भारत–जापान द्विपक्षीय संबंध को 'विशेष वैश्विक सामरिक भागीदारी' के स्तर तक पहुँचना तथा रक्षा क्षेत्र में सहयोग और आदान–प्रदान के एक ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए। भारत और जापान ने विचार–विमर्श की शुरूआत करते हुए सैन्य उपकरण सहयोग को बढ़ावा देने की शुरूआत करते हुये तथा जापानी यूएस–2 उभयचर विमान की बिक्री के लिये तौर तरीकों पर विचार–विमर्श में तेजी लाते हुए अपने रक्षा सहयोग को बढ़ावा देने तथा उसे मजबूत करने का निर्णय भी लिया। रक्षा प्रौद्योगिकी और उपकरणों में सहयोग, शांति और स्थिरता तथा समुद्री सुरक्षा में अपने साझा हितों के दोहराने समेत संयुक्त विज्ञप्ति में रक्षा सहयोग के लिए एक नया जोर और नई दिशा देने के लिये दोनों देशों के इरादों का संकेत दिखा। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है कि जापान ने हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (एल.ए.एल.) तथा पांच अन्य भारतीय संस्थाओं पर से प्रतिबंध उठा लिया, जो प्रतिबंध, 1998 के परमाणु परीक्षण के बाद लगाया गया था। नौ सैनिक अभ्यास की भारत–अमेरिका मालाबार श्रृंखला में जापान की निरंतर भागीदारी के साथ–साथ दोनों नियमित भागीदारी के साथ–साथ दोनों देश नियमित समुद्री अभ्यास पर भी सहमत हुए। प्रधानमंत्री ने जापानी उद्योगों को 'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम के अंतर्गत निवेश करने का आह्वान किया तथा हर तरह की मदद का आश्वासन दिया।

उस यात्रा के बाद से प्रधानमंत्री, विदेश मंत्री, विदेश राज्य मंत्री के दौरे के साथ–साथ भारत में विदेशी गणमान्य व्यक्तियों के दौरे के परिणामस्वरूप रक्षा सहयोग के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सौदे हुए। रक्षा सहयोग के क्षेत्र में प्रमुख घटनाओं में से कुछ विवरण आगे दिया गया है।

भारत–अमेरिका रक्षा सहयोग :–

संयुक्त राज्य अमेरिका वैश्विक महाशक्ति है, जो रक्षा पर लगभग एक तिहाई वैश्विक व्यय खर्च करता है। ये दोनों बातें इसके प्रौद्योगिक उत्कर्ष के साथ मिलकर रक्षा क्षेत्र में सहयोग के लिये अमेरिका को सबसे महत्वपूर्ण देश बना देती हैं। इस साल के दौरान, भारत और अमेरिका ने रक्षा में मजबूत सहयोग के लिये एक नई रूपरेखा समझौते पर आधारित हस्ताक्षर किए। रक्षा रूपरेखा समझौता 'भारत की रक्षा क्षमता बढ़ाने के लिए उचित उपायों पर केन्द्रित है। जनवरी में अमेरिका राष्ट्रपति की यात्रा के दौरान 10 वर्षीय रक्षा

रूपरेखा समझौते के दौरान इस समझौते का नवीनीकरण किया गया तथा भारत में अमेरिकी रक्षा सचिव ऐश कार्टर के दौरे के दौरान इस समझौते पर औपचारिक तौर पर हस्ताक्षर किए गए। इस यात्रा ने संयुक्त रूप से जैविक और रासायनिक युद्ध के खिलाफ सैनिकों के लिए सुरक्षात्मक तैयारी करने के लिए एक सौदे पर तथा ऊर्जा उत्पादन के लिए एक अन्य सहमति पर भी अपनी मुहर लगाई।

दोनों देशों के बीच रक्षा संधियों के विस्तार के लिए आयोजित भारतीय नेताओं के साथ वार्ता को लेकर भी परियोजनाओं को मंजूरी दी गई। हाल के वर्षों में रूस को पीछे छोड़ते हुए संयुक्त राज्य अमेरिका भारतीय सेना के लिए अब हथियारों के शीर्ष स्रोतों में से एक बन गया है। अमेरिका ने सैन्य प्रौद्योगिकी के संयुक्त विकास और उत्पादन की पेशकश की है। दोनों परियोजनाएँ सैनिकों के लिए सुरक्षात्मक आवरण के साथ–साथ युद्ध क्षेत्र के लिए उन्नत ऊर्जा स्रोत को विकसित करने पर केन्द्रित हैं। दोनों देशों द्वारा समान रूप से 10 लाख डॉलर की वित्तीय साझेदारी की जाएगी।

दो अन्य परियोजनाएँ रक्षा प्रौद्योगिकी तथा व्यापार पहल के अन्तर्गत है। जिन्हें कार्टर ने स्वयं रक्षा मंत्री बनने से पहले ही शुरू की थी और ये दोनों परियोजनाएँ सी–130जे सैन्य परिवहन विमान के लिए रेवेन मिनी यूएवी और निगरानी मॉडयूल से संबंधित है। लगभग तीन दशक पहले ब्रिटेन से हासिल किए गए तथा पुराने होते मालवाहक विमान की जगह नई तकनीक से बनाए जा रहे मालवाहक विमान के लिए भारत अमेरिकी विमान लांच प्रोद्योगिकी पर नजर गड़ाए हुए हैं। दोनों पक्षों के बीच सहयोग की भावनाओं का पता लगाने के लिए एक कार्य समूह का गठन किया गया है। जिसकी बैठक संयुक्त राज्य अमेरिका में की जाएगी। प्रधानमंत्री ने उम्मीद जताई है कि रक्षा विनिर्माण क्षेत्र में काम करने वाली कंपनी समेत अमेरिकी कंपनियाँ 'मेक इन इंडिया' जैसी पहल में बढ़–चढ़ कर अपनी भागीदारी करेगी तथा प्रौद्योगिकी के स्थानांतरण के साथ में अपनी विनिर्माण इकाइयाँ स्थापित करेंगी तथा वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला के साथ जुड़ेगी।

भारत–फ्रांस रक्षा सहयोग और राफेल सौदा

रक्षा की दृष्टि से प्रधानमंत्री की सबसे महत्वपूर्ण यात्राओं में से एक उनकी फ्रांस यात्रा थी। फ्रांसीसी राष्ट्रपति रैंकोइस हॉलंडे के साथ प्रधानमंत्री की व्यापक वार्ता के बाद जयपुर तथा महाराष्ट्र में परमाणु परियोजना समेत रक्षा और सुरक्षा पर प्रभाव के साथ करार पर भारत और फ्रांस ने हस्ताक्षर किए। जैतपुर परियोजना की वित्तीय व्यवहार्यता में सुधार लाने और स्थानीयकरण में वृद्धि से लागत में कमी लाने के लक्ष्य के साथ लार्सन एण्ड टुब्रो तथा एरेवा के बीच एक सहमति पर हस्ताक्षर हुए। यह समझौता भारत में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को संभव बनाएगा तथा स्वदेशी परमाणु ऊर्जा उद्योग के विकास को संभव बनाएगा। एनपीसीईएल तथा एरेवा के बीच प्री–इंजीनियरिंग समझौते हुए इससे संयंत्र के सभी तकनीकी पहलुओं पर स्पष्टता लाने का इरादा है ताकि सभी पक्ष (अरेवा, ऑलस्टम तथा एनपीसीआईएल) अपनी कीमतों को अंतिम रूप दे सके तथा अब भी इस परियोजना की लागत में इस स्तर पर शामिल जोखिमों के लिए सभी प्रावधानों का अनुकूलन कर सके। हालाँकि समझौते नागरिक परमाणु ऊर्जा से संबंधित है, तथापि स्थानांतरित किए जा रहे प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल रक्षा क्षेत्र में भी होगा तथा प्रधानमंत्री मोदी को 'मेक इन इंडिया' परियोजना को भी मजबूती मिलेगी। दोनों नेताओं ने अंतरिक्ष के क्षेत्र में सहयोग के लिए व्यापक वार्ता की भारत–फ्रांस मेघा ट्रॉपिकस उपग्रह से दो साल के आंकड़ों से विस्तार देने के लिए एक समझौता

ज्ञापन पर भारतीय अंतरिक्ष अध्ययन के लिए फ्रांसीसी राष्ट्रीय केन्द्र (सीएनईएस) के बीच हस्ताक्षर किए गए, जो 2011 में भारतीय प्रक्षेपण यान पीएसएलवी से प्रक्षेपित किया गया था। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि एक समझौता के तहत उपग्रह सुदूर संवेदन, उपग्रह संचार और अन्यों के बीच उपग्रह मौसम विज्ञान के क्षेत्र में सहयोग के लिए दो अंतरिक्ष संगठनों के बीच हस्ताक्षर किए गए।

हालाँकि सबसे अहम मसौदे पर उस समय हस्ताक्षर हुए जब फ्रांस सरकार सौदा करने के लिए उड़ सकने की हालत वाले 36 रॉफेल लड़ाकू विमानों की यथाशीघ्र आपूर्ति करने पर सरकारों के बीच के सौदे पर सहमत हुई। भारतीय वायु सेना ने लंबे समय से 126 बहुउद्देशीय विमान की अपनी आवश्यकता के रॉफेल का चयन किया था। प्रारंभिक 18 विमानों के आयात के बाद इनमें से विमानों का थोक विनिर्माण एच.ए.एल. में होना था। हालाँकि, सौदे उलझ गए थे, क्योंकि फ्रांसीसी कंपनी एच.ए.एल. से निकलने वाले विमानों की गारंटी लेने के लिये भी तैयार नहीं थी। इस अड़चन से सौदे के कार्यान्वयन में रुकावट आई थी। इसी बीच भारतीय वायु सेना ने अपनी समस्या को महसूस किया, क्योंकि इसकी लड़ाकू क्षमता लगातार छीज रही थी। इस सौदे के साथ 36 विमानों की उसी खेप में आपूर्ति की जाएगी, जैसा कि भारतीय वायुसेना द्वारा जाँच की गई थी और उसका अनुमोदन किया गया था तथा फ्राँस द्वारा एक समय सीमा के अंदर लंबे विमानों के दीर्घकालिक रख–रखाव की जिम्मेदारी के साथ भारतीय वायु सेना की संचालन आवश्यकता के साथ तालमेल बनाया जाना है। इसके बाद सरकार शेष राशि के संबंध में कोई भी निर्णय ले सकती है एवं संभवतः एक पूर्व शर्त के रूप में वैश्विक विक्रेताओं को 'मेक इन इंडिया' के साथ देने की पेशकश की जा सकती है।

भारत–रूस रक्षा सहयोग :–

सोवियत संघ और उसके विघटन के बाद के पाँच दशकों के दौरान, रूस भारत को रक्षा संबंधी साज–ओ–सामान की आपूर्ति करने वाला प्रमुख देश रहा है। परिणामतः रूस के साथ रक्षा सहयोग भारत के लिये बेहद महत्वपूर्ण है, क्योंकि विपत्ति और आपात स्थिति में रूस हमेशा भारत के साथ खड़ा हुआ है। रूस हमेशा भारत के साथ खड़ा हुआ है। रूस राष्ट्रपति पुतिन ने वार्षिक शिखर बैठक के लिये 11 सितंबर 2014 को नई दिल्ली का दौरा किया, जो कि प्रधानमंत्री के कार्यभार संभालने के बाद उनका पहला दौरा था। शिखर बैठक में प्रधानमंत्री ने रूस के साथ बढ़ते सैन्य सहयोग के उदाहरण के रूप में रूस निर्मित विमान वाहक आई एन एस विक्रमादित्य का जिक्र किया तथा रक्षा संबंधों के दीर्घकालिक निरंतरता का संकेत करते हुए उल्लेख किया कि भारत के पास विकल्पों के बढ़ने के बावजूद रूस भारत का सबसे बड़ा रक्षा साझीदार बना रहेगा।

छोनों पक्ष 'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम को पूरा करने के लिये भारत में रूसी प्रौद्योगिकी से बने एम.आई.–17 तथा कामोव के 226 हेलीकॉप्टर के संयुक्त उत्पादन पर सहमत हुए तथा इस बात पर भी सहमत हुए कि संयुक्त विकास तथा हल्के परिवहन विमान के उत्पादन जैसी लंबित परियोजनाओं में तेजी लायी जाए। इसी तरह, सुखोई तथा एच.ए.एल. द्वारा संयुक्त रूप से विकसित किए जाने वाले पाँचवीं पीढ़ी के संयुक्त लड़ाकू विमान पर भी वार्ता हुई। अंतिम डिजाइन अनुबंध पर जल्द ही हस्ताक्षर किए जाने की उम्मीद है। रूस आई.एन.एस. चक्र के बाद भारत के लिए एक और परमाणु संचालित अकुला श्रेणी की पनडुब्बी पट्टे पर देने के लिये सहमत हो गया, जो पहले से ही सेवा में है।

रक्षा के क्षेत्र में पाकिस्तान–रूस सहयोग की हालिका रिपोर्ट में पाकिस्तान के लिये रूसी एम.आई.–35 हमलावार हेलीकॉप्टरों की संभावित बिक्री को लेकर विशेष रूप से भारत में कुछ आशंका जताई गई थी। हालांकि, भारत में रूसी राजदूत ने ऐसी आशंका को कम करने की कोशिश की, जब उन्होंने कहा कि रूस ऐसा कोई काम नहीं करेगा, जिससे भारत की सुरक्षा को किसी तरह से खतरा पैदा हो। इसके बाद भारत के एक समाचार एजेंसी से एक साक्षात्कार में पुतिन ने स्वयं कहा कि 'रूस–पाकिस्तान समझौते सही मायने में भारत के दीर्घकालीन हित में है।'

भारत–आस्ट्रेलिया रक्षा सहयोग :–

इस एक साल के दौरान, भारत और आस्ट्रेलिया ने भी द्विपक्षीय सुरक्षा सहयोग के लिये एक रूपरेखा स्थापित की। दोनों देशों ने क्षेत्रीय शांति को आगे बढ़ाने और अन्य चुनौतियों के बीच आतंकवाद का मुकाबला करने के लिये अपने रक्षा उनके आस्ट्रेलियाई समकक्ष टॉनी एबॉट ने वार्ता की और दोनों देशों के बीच रक्षा समझौते तथा रक्षा के विस्तार एवं उसे मजबूज करने को लेकर रक्षा सहयोग के लिए एक रूपरेखा स्थापित करने पर सहमत हुए। उन्होंने आपसी हितों के क्षेत्रों में आस्ट्रेलिया और भारत के बीच सहयोग और परामर्श में तेजी लाने के लिए संरचना स्थापित की। इस सहयोग का प्राथमिक ध्यान समुद्री सुरक्षा पर केंद्रित किया जाएगा, जैसा कि आस्ट्रेलियाई संसद के सामने अपने संबोधन में प्रधानमंत्री ने इसे दोहराते हुए कहा, हमें समुद्री सुरक्षा बनाए रखने पर अधिक सहयोग करना चाहिए। हमें समुद्र पर एक साथ काम करना चाहिए और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर हमें आपसी सहयोग करना चाहिए तथा हमें अंतर्राष्ट्रीय कानून और वैश्विक मानदंडो के अनुरूप एक सार्वभौमिक सम्मान के लिये काम करना चाहिए।

यह आह्वान पहले ही समुद्री सुरक्षा सहयोग पर म्यांमार में आयोजित पूर्वी एशिया और आसियान शिखर में किया गया था। इसके बाद भारतीय तथा ऑस्ट्रेलियाई दोनों प्रधानमंत्रियों द्वारा एक कार्य–योजना के मुताबिक, एक वार्षिक शिखर सम्मेलन होगा और विदेश नीति के आदान–प्रदान और उसका समन्वय किया जाएगा। इस योजना में बहुपक्षीय बैठकों के अलावा प्रधानमंत्रियों की एक वार्षिक बैठक शामिल है। इसमें रक्षा मंत्रियों की निरंतर बैठक, वार्षिक रक्षा नीति वार्ताएँ, नियमित उच्च स्तरीय यात्राओं वाली सेवा–दर–सेवा संलग्नता, वार्षिक कर्मचारी वार्ताएँ, संयुक्त प्रशिक्षण तथा नियमित अभ्यास एवं नियमित द्विपक्षीय समुद्री अभ्यास शामिल है। यह कार्य योजना यह आस्ट्रेलियाई और भारतीय रक्षा सामग्री प्रतिनिधि मंडलों की यात्राओं तथा संयुक्त उद्योग जुड़ाव को मजबूज करने के माध्यम से रक्षा शोधों की खोज तथा विकास को लेकर सहयोग का आह्वान करती है।

सबसे अहम बात है कि आतंकवाद के खिलाफ तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय अपराधों पर एक संयुक्त कार्यकारी समूह, तात्कालिक विस्फोटक उपकरणों, बम घटनाओं और प्रौद्योगिकियों और अन्य संबंधित पहलुओं का मुकाबला करने पर विशेषज्ञों के बीच आतंकवाद विरोधी प्रशिक्षण और आदान–प्रदान में सहयोग भी इस वार्षिक कार्य–योजना के अहम हिस्से हैं। कार्य योजना के तहत हो रही प्रगति की समीक्षा स्थापित स्थागत व्यवस्था के माध्यम के की जायेगी। जिसमें विदेशी मंत्रियों की वार्ता तथा रक्षा मंत्रियों की बैठक शामिल हैं।

अन्य देशों के साथ रक्षा सहयोग :–

वर्ष के दौरान, भारत और दक्षिण कोरिया ने रक्षा सहयोग को बढ़ाने के लिये हाल ही में सहमति व्यक्त की। प्रधानमंत्री की दक्षिण कोरिया यात्रा के दौरान संयुक्त बयान जारी किया गया, जिसके

दस में से सात बिंदु रक्षा सहयोग पर ही केंद्रित थे। इनमें मुख्यतः दक्षिण कोरियाई तथा भारतीय पोत कारखाने तथा इनकी नौ–सेनाओं के बीच आदान–प्रदान शामिल हैं। पहले दक्षिण कोरियाई पोत कारखाने में भारतीय नौ सेना के लिये युद्धपोतों का निर्माण शामिल था, बाद में दक्षिण कारियाई सहयोग से भारतीय पोत कारखाने में इसका निर्माण होना है। इसी तरह, परमाणु ऊर्जा, एयरोस्पेस और रक्षा के क्षेत्र में कनाडा और भारतीय कंपनियों के बीच कई वाणिज्यिक समझौतों की घोषणा की गई। ससकैच्वा आधारित कामेको को संलग्न करने वाले एक वाणिज्यिक समझौते के तहत अगले पांच वर्षों में सात लाख पाउंड के यूरेनियम की आपूर्ति भारत सरकार द्वारा कनाडा–भारत परमाणु सहयोग समझौता के कारण ही संभव हो पाया।

इसी तरह, गत एक साल के दौरान भारत के साथ पारंपरिक रूप से रक्षा संधियों के साथ निकटस्थ रूप से जुड़े देश मॉरिशस के साथ के साथ भी रक्षा सहयोग को बढ़ाया गया। 2 नवंबर 2014 को विदेश मंत्री की इस द्वीपीय देश की पहली यात्रा के दौरान अप्रवासी दिवस मनाया गया। सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण हिंद महासागर क्षेत्र की रक्षा और उसकी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिये भारतीय नौसेना और मॉरीशस के तट रक्षक बल के बीच सहयोग उस समय एजेंडे के शीर्ष पर था। समारोह के दौरान, भारतीय नौसेना और मॉरीशस के तट रक्षक के बीच सहयोग के लिये मॉरीशस के पानी में तीन प्रमुख भारतीय युद्धपोत उतारे गए।

जिन अन्य देशों के साथ भारत का निकटस्थ रक्षा सहयोग रहा है, उनमें इजरायल भी है। भारत और इजरयल भी दोनों देशों ने आतंकवाद से लड़ने के क्षेत्र में सहयोग किया है तथा इजरयल भी मिसाइल और मानवरहित हवाई वाहनों सहित भारत के लिये परिकृष्त रक्षा हार्डवेयर की आपूर्ति के क्षेत्र में अग्रणी रहा है। वर्ष के दौरान आपसी सहयोग का विस्तार किया गया और प्रधानमंत्री अगले साल के भीतर इजरायल की यात्रा करेंगे, यह यात्रा होगी।

निष्कर्ष :–

दुनिया के विभिन्न देशों के साथ भारत के रक्षा सहयोग में काफी विस्तार हुआ है। यह उज्जवल भविष्य से जुड़ा हुआ है, जो भारत के लिये अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की परिकल्पना है, साथ ही भारत के रक्षा बलों में बढ़ रही आस्था से भी जुड़ा है। ज्यादा से ज्यादा देश अपनी सुरक्षा को मजबूत करने के लिये भारत के साथ होना चाहते हैं। आन वाले दिनों में एक सहयोग में और बढ़ोतरी होगी तथा यह 'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम को एक सुदृए आधार प्रदान करेगा, जिसमें भारत को रूपांतरित करने की असीम संभावना है। जिससे भारत विश्व परिदृश्य में एक अलग मुकाम में नजर आयेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति–सिद्धांत एवं समकालीन मुद्दे डी.बी.एल. फड़िया।
2. अन्तर्राष्ट्रीय संबंध – डॉ0 फड़िया
3. दैनिक भास्कर – जुलाई 2016
4. योजना – जुलाई 2015
5. प्रशासनिक चिन्तम् – प्रसाद राजनारायण

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

''हितोपदेश में प्रतिपादित आत्मबोधक तत्त्व : एक अनुशीलन''

❒ डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी*
❒ बाला प्रसाद विश्वकर्मा**

शोध सारांश

'हितोपदेश व्यावहारिक, लौकिक, नैतिक एवं राजनीतिक ज्ञान से परिपूर्ण छोटी-छोटी कथाओं का अत्यन्त हृदयग्राही संग्रह है। जो सुकुमार बुद्धि वाले लोगों में उक्त संस्कारों का बीजारोपण करने में अत्यन्त सशक्त एवं समर्थ है। इसमें पशु-पक्षियों के माध्यम से साधारण एवं बोधगम्य कहानियों द्वारा व्यावहारिक जीवन के आदर्श एवं सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं, जिसका उद्देश्य मानव समाज को व्यवहार कुशल एवं राजनीतिक पटु तथा सदाचारी बनाना है। इसका सम्बन्ध किसी वर्ग विशेष से न होकर केवल मानव मात्र से है। यह एक ओर समाज को कर्तव्याकर्तव्य का आत्मबोध कराता है दूसरी ओर मानव मात्र को अच्छे मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है। हितोपदेश के माध्यम से मनुष्य 'आनन्दोपलब्धिपूर्वक' निश्चिन्त होकर सफलतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है। इसी नैतिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इस ग्रन्थ की रचना की गयी है।

जहाँ एक ओर हितोपदेश राजनीतिक विशारदों का पथ प्रदर्शन करता है वहीं दूसरी ओर बालकों तथा जन-सामान्य के लिए मनोरंजक सामग्री प्रस्तुत करता है। इस प्रकार हितोपदेश में दैनिक जीवन से सम्बन्धित सदाचार पद-पद पर परिलक्षित होता है। हितोपदेश में ऐसे अनेकानेक प्रसंग आये हैं। जिनके गहन अध्ययन से मानव मात्र को अपने उचित अनुचित कर्तव्य का स्वयमेव बोध हो जाता है। हितोपदेश में वर्णित आत्मबोधक तत्त्वों को इस प्रकार देखा जा सकता है—

एक स्थल पर प्रस्तुत ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने मुँह पर मीठा बोलने वाले एवं पीठ पीछे कार्य को बिगाड़ने वाले दुष्ट मित्र की इस प्रकार से निन्दा करते हुए उससे बचे रहने का आत्मबोध कराया है—

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।।[1]

अर्थात् पीछे कार्य को नष्ट करने वाले और सामने मीठा-मीठा बोलने वाले मित्र को अन्दर से जहर और ऊपर से दूध से पूर्ण घट के समान त्याग देना चाहिए।

दुर्जन स्वभाव से ही गलत कार्य करने वाला होता है। हितोपदेश के विग्रह भाग में दुर्जन को प्राणों का घातक बतलाया गया है—

स्पृशन्नपि गजो हन्ति, जिघ्रन्नपि भुजङ्गमः।
पालयन्नपि भूपालः प्रहसन्नपि दुर्जनः।।[2]

* प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (संस्कृत), शास. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी (संस्कृत), शास. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

छूने मात्र से हाथी, सूँघने मात्र से सर्प पलायन करते हुए भी राजा और हँसते हुए भी दुर्जन प्राणों का घातक बन जाता है।

अनर्थ का नाम ही दुर्जन होता है। वह जनमानस को सदैव आघात पहुँचाने वाला होता है। इसलिए दुष्ट सम्पर्क में रहना भी घातक है, इसी प्रसंग में हितोपदेश को विग्रह भाग में ग्रन्थकार ने दुर्जन के सहवास से अलग रहने का निर्देश करते हुए इस प्रकार आत्मबोध कराया है—

न स्थातव्यं न गन्तव्यं दुर्जनेन समं क्वचित्।
कका सङ्गाद्धतो हंसस्तिष्ठन् गच्छंश्च वर्त्तकः॥[3]

अर्थात् दुष्ट के साथ कभी नहीं रहना चाहिए और नहीं कहीं जाना चाहिए। कौवे के साथ रहने से हंस और बत्तख के साथ जाने से मृत्यु प्राप्त हुई थी।

मनुष्य की जीवन यात्रा में समय को बड़ा ही महत्त्वकारी माना गया है। समय जीवन किसी की प्रतीक्षा नहीं करता है और समय को व्यतीत हो जाने पर असफलता ही हाथ आती है। समय मनुष्य की आयु को लेकर चलता है एक स्थल दृष्टान्त शैली के माध्यम से हितोपदेशकार इस प्रकार विचार व्यक्त करता है—

व्रजन्ति, न निवर्तन्ते स्त्रोतांसि सरितां यथा।
आयुरादय मर्त्यानां तथा रात्र्यहनी सदा॥[4]

जैसे आगे जाने वाली नदी की धारा फिर लौटकर पीछे नहीं आती है। इसी प्रकार रात और दिन प्राणियों की आयु को लेकर सदैव आगे बढ़ते ही जाते हैं। अतः समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता जैसा कि अंग्रेजी में कहा भी गया है—

वास्तविक रूप से देखा जाय तो नारी का आभूषण उसका पति ही होता है। अलंकार तो उसके क्षणिक शोभा के वर्धक होते हैं। यदि किसी स्त्री का पति नहीं है तो उसे आभूषण से रहित मानना ही उचित है। इसी भाव से साम्य रखता हुआ भाव हितोपदेश में भी परिलक्षित होता है—

भर्त्ता हि परमं नार्या भूषणं भूषणैर्विना।
एषा विरहिता तेन शोभनापि न शोभते॥[5]

अर्थात् विभिन्न प्रकार के आभूषणों से रहित होने पर भी पति ही स्त्री का सर्वश्रेष्ठ आभूषण होता है, क्योंकि गहनों से लदी होने पर भी पति विहीना स्त्री सुशोभित नहीं होती है।

किसी देश विशेष में निवास करने का महत्त्व होता है। इसी महत्त्व को हितोपदेश में इस प्रकार से स्वीकार किया गया है—

धनिकः श्रोत्रियों राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः।
पञ्च यत्र न विद्यते तत्र वासं न कारयेत्॥[6]

जिस देश में या नगर में धनकन् वैदिक ब्राह्मण तथा प्रजापालक राजा, जल से पूर्ण नदी, और पाँचवां वैद्य ये पाँच न रहते हों, उस देश या नगर में निवास नहीं करना चाहिए। दुर्जन सदैव त्याज्य होता है। दुर्जन के विभिन्न गुणों से युक्त होने पर उसके साथ सम्पर्क स्थापित नहीं करना चाहिए क्योंकि उसका सम्पर्क सदैव भयंकर होता है—

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलंङ्कृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः॥[7]

दुर्जन पुरुष विद्वान् होने पर भी उसका सर्वधा परित्याग कर देना चाहिए। क्योंकि मणि से सुशोभित होने पर भी सर्प सदैव मरणभय को देने वाला होता है।

अज्ञात व्यक्ति अनिष्टकारी होता है। इसलिए अपरिचित व्यक्ति को अपने यहाँ निवास स्थान नहीं देना चाहिए। इस भाव से भावसाम्य रखने वाला भाव हितोपदेश में भी देखा जा सकता है—

असातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्।
मार्जारस्य हि दोषेण हतो गृध्रो जरद्गवः॥[8]

अर्थात् जिस व्यक्ति के कुल और स्वभाव आदि अपरिचित हों ऐसे किसी भी व्यक्ति को अपने यहाँ आश्रय नहीं देना चाहिए क्योंकि अपने आश्रय में स्थित बिल्ली के दोष से वृद्ध पक्षी ग्रध मारा गया था।

मनुष्य की प्रगति में बाधक छः दोष बतलाए गये हैं। यदि मनुष्य इनका परित्याग नहीं करता है तो उसे जीवन में कदापि सफलता प्राप्त नहीं हो सकती है। इन छः प्रकार के दोषों को उपदेशपरक शैली में इस प्रकार निबद्ध किया गया है—

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्य भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घसूत्रता॥[9]

इस संसार में अभ्युदय की इच्छा वाले लोग निन्द्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता इन छः दोषों को त्याग देना चाहिए।

मनुष्य को सदैव उद्योगशील होना चाहिए, भाग्य से सब कुछ प्राप्त होता है, ऐसा जानकर मनुष्य को उद्योगविहीन नहीं होना चाहिए। उद्योग की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए ग्रन्थकार इस प्रकार कहते हैं कि—

न दैवमपि संचिन्त्य त्यजेदुद्योगमात्मनः।
अनुद्योगेन तैलानि तिलेभ्यो नाऽप्तुमर्हति॥[10]

अर्थात् भाग्य से ही सब कुछ प्राप्त होता है प्रयत्न से कुछ नहीं। ऐसा सोचकर पुरुष को परिश्रम से विहीन नहीं होना चाहिए, क्योंकि मिलने योग्य तैलप्राप्ति रूप फल भी तिलों में से बिना प्रयत्न के नहीं प्राप्त होता, इसलिए उद्योग करना ही चाहिए।

उक्त प्रसंग में जीवन में भाग्य की प्रधानता मानते हुए उसके साथ पुरुषार्थ को भी अधिक महत्त्व दिया जाता है। किसी भी वस्तु की प्राप्ति के लिए मनुष्य को सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि बिना प्रयत्न के कोई भी वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती है—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः,
दैवेन देयमिति का पुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्नेकृते यदि न सिध्यति कोऽत्रदोषः॥[11]

अर्थात् भाग्य में लिखी हुई भी लक्ष्मी (धन दौलत) पुरुष को प्रयत्न किये बिना नहीं प्राप्त होती है। इसलिए भाग्य में जो होगा वह मिलेगा व्यर्थ प्रयास नहीं करना चाहिए, ऐसा जो निर्बल पुरुषों का वचन है। उसका ख्याल न करके अपनी शक्ति के अनुसार पुरुष को प्रयत्न करते रहना चाहिए, प्रयास करने पर यदि लक्ष्मी न प्राप्त हो तो प्रयास करने में क्या त्रुटि रह गयी है यह खोज करनी चाहिए।

इस प्रकार संक्षेपतः कहा जा सकता है कि 'हितोपदेश' जन-सामान्य को अपने कर्तव्य-अकर्तव्य को प्रति आत्मबोध कराने के साथ-साथ मानव मात्र को सत् पथ पर चलने के लिए प्रेरित करता है। इसमें जो भी कुछ उपदेशपरक शैली में कहा गया है वह मानव मात्र के लिए एक उपदेष्टा का कार्य ही है। हितोपदेश में जो अनेकानेक स्थलों पर आत्मबोधक तत्त्व बतलाये गये हैं वह मानव के लिए अमूल्य निधि हैं, जिसका अवगाहन करके मनुष्य अपनी जीवन यात्रा को सफल बना सकता है।

'इति शुभम्'

सन्दर्भ स्त्रोत

1. हितोपदेश, मित्रलाभ-पद्य, 78
2. हितोपदेश, विग्रह, 15
3. हितोपदेश, विग्रह, 23
4. हितोपदेश, सन्धि, 82
5. हितोपदेश, विग्रह, 28
6. हितोपदेश, मित्रलाभ, 109
7. हितोपदेश, मित्रलाभ, 90
8. हितोपदेश, मित्रलाभ, 56
9. हितोपदेश, मित्रलाभ, 34
10. हितोपदेश, कथामुख, 32
11. हितोपदेश, कथामुख, 33

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

वाल्मीकि रामायण में वर्णित राजा की स्थिति एवं महत्व

❐ डॉ. संध्या कुमारी

शोध सारांश

वेद जिस परमतत्व का वर्णन करते हैं, वही श्रीमन्नारायण-तत्व श्रीमद् रामायाण में श्रीराम रूप से निरूपित हैं। वेदवेद्य परमपुरुषोतम के दशरथनन्दन श्रीराम के रूप में अवतीर्ण होने पर साक्षात् वेद ही श्रीवाल्मीकि के मुख से श्रीरामायण रूप में प्रकट हुए, ऐसी आस्तिकों की चिरकाल से मान्यता है। इसलिए श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण की वेदतुल्य ही प्रतिष्ठा है। यों भी महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हैं। अतः विश्व के समस्त कवियों के गुरु हैं। उनका 'आदिकाव्य' श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण भूतल का प्रथम काव्य है। वह सभी के लिए पूज्य ग्रंथ की सच्ची बहुमूल्य राष्ट्रीय विधि है। इसका एक-एक अक्षर महापातक का नाश करने वाला है—

एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्।

यह समस्त काव्यों का बीज है—

'काव्यबीज सनातनम्'। *(बृहद् धर्मपुराण-1/30/47)*

वाल्मीकीय रामायण एक मात्र प्राचीनतम धर्मग्रंथ ही नहीं, अपितु भारतीय आर्यों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संगठन एवं विचारों को प्रस्तुत करने वाला एक राष्ट्रीय महाकाव्य है। यही नहीं जहाँ रामायण में राजनीतिक गंभीर चिन्तन हुआ है, वहाँ उसके समाधानों को भी सुविचारित ढंग से प्रस्तुत किया है। यहाँ तक कि आधुनिक राजनीतिक अवधारणा के सूत्र एवं समस्याओं के निदान भी उसमें निहित हैं।

रामायण युग में राजा को बहुत महत्व प्रदान किया जाता था।[1] यह माना जाता था कि राजा विहीन राज्य में शांति-व्यवस्था नहीं रह सकती तथा राज्य का विनाश हो जाता है।[2] महर्षि वाल्मीकि ने अत्यन्त विषद रूप से इस बात की विवेचना की है कि राजा के न होने पर राज्य एवं जनता की क्या स्थिति हो जाती है।[3] मार्कण्डेय आदि मुनियों तथा मंत्रियों ने राजा के अभाव में देश की दुर्व्यवस्था का वर्णन करते हुए वशिष्ठ जी से यह अनुरोध किया कि इक्ष्वाकुवंशीय राजकुमारों में से किसी को शीघ्र ही अयोध्या का राजा बनाया जाए क्योंकि राजा के बिना उस राज्य का नाश हो जायेगा।[4]

रामायण में राजा को इन्द्र, कुबेर, वरुण तथा यम से भी अधिक महत्त्व दिया गया है क्योंकि जहाँ इन्द्र का कार्य केवल पालन करना, कुबेर का धन देना, वरुण का सदाचार को नियंत्रित करना तथा यमराज का दण्ड देना है, वहाँ एक श्रेष्ठ राजा में चारों गुण विद्यमान रहते

* एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत), पी.सी. बागला (पी.जी.) कालेज, हाथरस

हैं। वह अकेला ही इन चारों कार्यों को सम्पादित करता है।[5] राजा को राज्य के अन्तर्गत सत्य एवं धर्म का प्रवर्तक माना गया है।[6] रामायण के अनुसारा जा ही सत्य और धर्म है, राजा ही कुलवानों का कुल है, राजा ही माता और पिता है तथा राजा ही मनुष्यों का हित करने वाला है।[7]

रामायणीय मान्यता के अनुसार राजा के न होने का प्रभाव केवल राजाविहीन देश की राजनैतिक ही नहीं, अपितु सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व्यवस्थाएँ भी भंग हो जाती थी। वहाँ मत्स्य न्याय जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, किसी भी मनुष्यकी कोई भी वस्तु अपनी नहीं रह जाती तथा सभी एक-दूसरे को खा जाने को तैयार रहते हैं।[8] चोर एवं लुटेरों के कारण राज्य में धनी व्यक्ति सुरक्षित नहीं रह सकते, सोने के आभूषणों से विभूषित कुमारियाँ संध्या के समय उद्यानों में क्रीड़ा करने के लिए नहीं जाती तथा धनी वैश्य भी दरवाजा खोलकर नहीं सो पाते।[9] नर-नारी भी वन-विहार के लिए नहीं निकलते।[10] राजा के न होने से भले-बुरे का भेद करने वाला कोई नहीं रह जाता। अतः राज्य में वादी एवं प्रतिवादी के विवाद का संतोषजनक निपटारा भी नहीं हो पाता।[11]

राजा के न रहने से राष्ट्र की सामाजिक दशा एवं मर्यादाएँ भी अस्त-व्यस्त हो जाती हैं। वर्णाश्रम की मर्यादा को भंग करने वाले नास्तिक मनुष्य भय विहीन हो जाते हैं।[12] पुत्र, पिता के वश में नहीं रहता और स्त्री पति के वश में नहीं रहती।[13] जिस राज्य में पत्नी भी अपनी नहीं रह पाती अर्थात् पति-पत्नी आदि का सत्य सम्बन्ध भी नहीं रह पाता, तब कोई दूसरा सत्य कैसे रह सकता है।[14] राष्ट्र को उन्नतिशील बनाने वाले उत्सव नहीं हो पाते। इसी प्रकार दूसरे राष्ट्र हितकारी संघ भी नहीं पनपने पाते हैं।[15]

राजा के न होने का प्रभाव देश की आर्थिक व्यवस्था पर भी बहुत घातक होता है। अराजकता की स्थिति के कारण किसान अपनी भूमि को जोत, बो नहीं पाते।[16] राजा हीन देश में धन भी अपना नहीं होता।[17] व्यापार करने वाले वणिक, चोर एवं लुटेरों के भय के कारण सुरक्षापूर्वक अपनी वस्तुएँ लेकर बाहर नहीं जा सकते।[18] अर्थात् राजाविहीन देश में आर्थिक जीवन पंगु हो जाने के कारण व्यापारियों को लाभ नहीं होता।[19] अराजक देश में अपर्याप्त वस्तु की प्राप्ति और प्राप्त वस्तु की रक्षा नहीं हो पाती।[20]

अराजकता का देश की धार्मिक स्थिति पर भी बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ता था। धार्मिक गतिविधियाँ लगभग ठप हो जाती थी। लोग देवताओं की पूजा के लिए फूल, मिठाई और दक्षिणा की व्यवस्था नहीं करते।[21] मनुष्य न तो पंचायत भवन, उद्यान आदि का निर्माण करवाते और न ही धर्मशाला, मंदिर, पुण्यग्रह आदि बनवाते हैं।[22] यज्ञ करने वाले द्विज और कठोर व्रती ब्राह्मण भी बड़े-बड़े अनुष्ठान नहीं करते।[23] यदि यज्ञों का आरम्भ होता भी तो धन सम्पन्न ब्राह्मण भी ऋषियों को इस भय के कारण पर्याप्त दक्षिणा नहीं देते कि कहीं उन्हें धनी समझकर लूट न लिया जाए।[24]

राजा के न रहने से देश की सैनिक गतिविधियों को भारी धक्का लगता है। वीरों द्वारा न तो अस्त्र-शस्त्रों का अभ्यास ही ठीक से होता है और न ही कोई उनके अभ्यास की प्रशंसा करता है क्योंकि वीरों को प्रश्रय देना और उन्हें उत्साहित कर सकना केवल राजा द्वारा ही सम्भव है।[25] राजा के न रहने पर सेना भी युद्ध में शत्रुओं का सामना नहीं करती।[26]

अराजकता का प्रभाव जनता की मनोवृत्ति पर भी पड़ता है। कथा सुनने की इच्छा रखने वाले लोग कथावाचक, पौराणिकों की कथाओं से प्रसन्न नहीं होते।[27] इन समस्त अव्यवस्थाओं के साथ-साथ यह सत्य माना जाता था कि राजा विहीन देश में प्रकृति भी साथ नहीं देकती और मेघ पृथ्वी पर दिव्य जल की वर्षा नहीं करते।[28] अतः ऐसे देश में जीवनोपयोगी आवश्यक खाद्यान्न भी उत्पन्न नहीं होते।

जिस प्रकार राजा के न होने से देश पर विभिन्न प्रकार के संकट मंडराने लगते हैं, उसी के ठीक विपरीत एक योग्य राजा के शासनकाल में देश उन्नति की ओर अग्रसर होता है, जनता सम्पन्न रहती है तथा कोई दुःखी नहीं रहता।[29] रामायण में योग्य राजा के शासनकाल में राज्य की जो स्थिति होती है उसका भी विषद् विवेचन किया गया है। राजा दशरथ के शासनकाल में अयोध्या नगर और वहाँ के नागरिकों की स्थिति का जो वर्णन किया गया है,[30] उससे स्पष्ट है कि एक अच्छे राजा के शासनकाल में राज्य एवं जनता की क्या स्थिति होती थी।

राजा दशरथ के राज्य में निवास करने वाले सभी मनुष्य धर्मात्मा, सत्यवादी, निर्लोभ, प्रसन्न तथा अपने-अपने धन से संतुष्ट रहने वाले थे।[31] सभी मनुष्यों के धर्म, अर्थ और कामादि उद्देश्यपूर्ण थे, कोई भी ऐसा नहीं था जिसके पास धन-धान्य, गायें, बैल, घोड़े आदि का अभाव हो।[32] राज्य में कोई भी मनुष्य मूर्ख, कामी, कृपण, क्रूर अथवा नास्तिक नहीं था।[33] सभी मनुष्य सदैव प्रसन्न रहने वाले संयमी, धर्मात्मा तथा शील एवं सदाचार में महिर्षियों की भाँति थे।[34] किसी के पास भोग-सामग्री की कमी नहीं थी। सभी साफ-सुथरे आभूषणादि से युक्त थे।[35] कोई भी व्यक्ति क्षुद्र, चोर, सदाचार-शून्य अथवा वर्णसंकर नहीं था।[36] राज्य में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था, जो अपवित्र अन्न का भोजन करता हो, दान न देने वाला तथा मन को वश में न रखने वाला वहाँ कोई भी मनुष्य नहीं था।[37] अयोध्या में कोई भी स्त्री या पुरुष रूप रहित श्रीहीन अथवा राजभक्ति से शून्य नहीं था।[38]

चारों वर्णों के लोग अपने-अपने कार्यों में लगे हुए थे।[39] सब मनुष्य दीर्घायु तथा धर्म और सत्य का आश्रय लेने वाले थे। वे अपने स्त्री, पुत्र, पौत्रादि परिवार के साथ सुखपूर्वक रहते थे।[40] सभी नागरिक देवता और अतिथियों की पूजा करने वाले, कृतज्ञ, उदार, शूर-वीर एवं पराक्रमी थे।[41] अयोध्यानगरी अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता योद्धाओं के समुदाय से भरी-पूरी रहती थी।[42] राजा दशरथ के शासनकाल में राज्य की स्थिति का वर्णन करने के अतिरिक्त महर्षि वाल्मीकि ने रामचन्द्र के शासनकाल में भी अयोध्या की स्थिति का वर्णन करते हुए बताया है कि राम के राज्य में मेघ समय पर वर्षा करते थे, देश में कभी अकाल नहीं पड़ता था, नगर और जनपद हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से भरे रहते थे और सभी ओर सब प्रसन्न दिखाई देते थे।[43] राज्य में कोई उपद्रव नहीं होता था, प्राणियों को कोई रोगनहीं सताता था तथा किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी।[44]

इस प्रकार निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि रामायण युग में यह समझा जाता था कि राजा के न रहने पर राज्य के ऊपर अनेकों प्रकार की आपत्ति आती थी। धर्म, अर्थ और काम आदि किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो पाती थी। राज्य के ऊपर भौतिक प्रकोपों के साथ-साथ ईश्वरीय प्रकोप भी कम नहीं होते थे। इसके ठीक विपरीत एक योग्य राजा के शासनकाल में चारों ओर सुख-समृद्धि दृष्टिगोचर होती थी। राज्य एवं नागरिक उन्नति की ओर अग्रसर होते थे। उन्हें भौतिक तथा आध्यात्मिक सभी प्रकार का सुख प्राप्त होता था। इस शोध-पत्र से यह भी स्पष्ट होता है कि रामायणीय राजा केवल मात्र शासन प्रमुख ही नहीं था। वह केवल राज्य का प्रथम नागरिक ही नहीं था, उसे देवता के समान माना जाता था। किन्तु उसे ईश्वरीय दर्जा देने का यह उद्देश्य नहीं था कि वह निरंकुश एवं अत्याचारी हो जाए। उसे देवता तुल्य इसीलिए माना जाता था क्योंकि उसमें देवताओं के गुण होते थे तथा वह अपने देश की जनता का उसी भाँति पालन करता था जिस भाँति परमात्मा इस पृथ्वी का पालन करता है।

यदि वर्तमान समय में हमारे राजनेता स्वार्थ की राजनीति को छोड़कर जनता के कल्याण के कार्यों को निःस्वार्थ होकर करने लगे तो हमारे देश में भी निश्चित रूप से रामराज्य की स्थापना हो जायेगी। इसमें किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं है।

संदर्भ सूची

1. युद्धकाण्ड, 128, 69-70
2. अयोध्याकाण्ड, 67, 31
3. वही, 67, 9-36
4. इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद् राजा विधीयताम्।
   अराजकं हि नौ राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात्।।
   —वही, 67, 8
5. यमो वेश्रवणः शक्रो वरुणश्च महाबलः।
   विशिष्यन्ते नरेन्द्रेण वृत्तेन महता ततः।।—वही, 67, 35
6. अयोध्याकाण्ड, 67, 33
7. वही, 67, 34
8. मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम्।।—अयोध्याकाण्ड, 67, 31
9. अयोध्याकाण्ड, 67, 17-18
10. वही, 67, 19
11. वही, 67, 16
12. वही, 67, 32
13. वही, 67, 10
14. वही, 67, 11
15. उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धन्ते राष्ट्रवर्धनाः।—अयोध्याकाण्ड, 67, 15
16. अयोध्याकाण्ड, 67, 10
17. वही, 67, 11
18. वही, 67, 22
19. अयोध्याकाण्ड, 67, 16
20. वही, 67, 24
21. वही, 67, 27
22. वही, 67, 12
23. वही, 67, 13
24. वही, 67, 14
25. वही, 67, 21
26. न चाप्यराज के सेना शत्रून् विषहते युधि।।—वही, 67, 24
27. वही, 67, 16
28. वही, 67, 9
29. युद्धकाण्ड, 128, 105
30. बालकाण्ड, 6, 21
31. तस्मिन् पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः।
   नरास्तुष्टाधनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः।।—बालकाण्ड, 6, 6
32. वही, 6, 7
33. वही, 6, 8
34. वही, 6, 9
35. वही, 6, 10
36. नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः।
   कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तौ न संकरः।।—वही, 6, 12
37. वही, 6, 11
38. वही, 6, 16
39. क्षत्रं ब्रह्मसुखं चासीद् वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः।
   शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन् वर्णानुपचारिणः।।—बालकाण्ड, 6 19
40. बालकाण्ड, 6, 18
41. वही, 6, 17
42. वही, 6, 21
43. उत्तरकाण्ड, 99, 13
44. नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधिः प्राणिनां तथा।—उत्तरकाण्ड, 99, 14

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

प्रो. अनिल सिंह के काव्य में जीवन मूल्य

❐ प्रो. सुरेन्द्र बहादुर सिंह

शोध सारांश

प्रत्येक कालखण्ड का अपना जीवन मूल्य होता है। वह उस काल विशेष की नैतिकता आदर्श ईमानदारी, त्याग, कर्तव्यनिष्ठा, परोपकार, जैसे मूल्यों से रक्षा करता है। मनुष्य एवं समाज की गरिमा उसके जीवन मूल्यों से आंकी जाती है। जिस व्यक्ति एवं समाज में जीवन मूल्यों का अभाव होता है, वह दूसरे के लिए वरिष्ठ एवं अनुकरणीय नहीं बन सकता। यह देखने में आता है कि समाज एवं राष्ट्र को यहाँ तक कि विश्व को भी कुपथगामी होने से जीवन मूल्य ही बचाता है। संवेदना पुत्रों में, कलाकारों एवं कलमकारों में जीवन मूल्यों के प्रति सजगता देखी जाती है। आत्मपूत होने के कारण ये सृजनधर्मी, रचनात्मक, प्रकाश से अधेरे के विरुद्ध सतत् संघर्ष करते हैं। उनके इन्हीं संघर्षों से समाज जीने लायक बना रहता है। प्रो. अनिल कुमार सिंह के काव्य लेखन में जीवन मूल्यों के प्रति राजगता को क्रियाशील, रचनात्मक, संघर्ष के रूप में देखा जाना चाहिए।

वर्तमान समय विशेष उथल-पुथल का काल है। जिन स्थापित जीवन मूल्यों पर बल दिया जाता रहा है सूखे पत्तों-सा बिखरने के लिए विवश है। जो इन मूल्यों के लिए संघर्षरत हैं वे उपेक्षित एवं हासिए पर ठकेल दिए गए हैं। आज स्थिति कुछ अधिक जटिल है। अंधेरा कुछ अधिक तेजी से फुत्कार रहा है। मूल्य हीन शक्तियाँ अपने लाभ के लिए लामबंद हैं। इसके बावजूद भी मूल्यों के वाहक क्या अपना धर्म छोड़ देते हैं? नहीं, कभी नहीं। बल्कि पूरी शक्ति से अंधेरे को चुनौती देते हैं। इस रूप में प्रो. अनिल कुमार का काव्य जीवन्त एवं चुनौतीपूर्ण है। आज जो उदासी, भयावहता, लूट, कदाचार का वातावरण चौगिद दिख रहा है उसमें अंधेरे का हाथ तो है ही, लेकिन इस डरावने समय को और भयाक्रांत बनाने में प्रकाश के छद्म रखवालों की भूमिका भी कम सोचनीय नहीं है। प्रकाश एवं मूल्यों का नारा देने वालों का आचरण भी अब संदिग्ध है। अंधेरे के विरुद्ध लड़ने का यह बनावटी रूप अधिक घातक है। ऐसे छद्म प्रकाश पुंजों की कलई खोलना भी प्रो. अनिल के काव्य का ध्येय है। उनके लेखन में समय और समाज को समग्र पड़ताल है। लेकिन रचनात्मक सुझाव मानवीय है। वे अन्तरात्मा के गायक कवि हैं। यही उनकी कमजोरी भी है और समय व समाज को बचाने की पुष्ट ताकत भी है। डॉ. धर्मवीर भारती भी मानते हैं कि ''अंन्तरात्मा मानवीय अन्तस में स्थित कोई दैवीय या अति प्राकृतिक शक्ति न

* विभागाध्यक्ष (हिन्दी), शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीधी, मो. 9407304406

होकर वस्तुतः मानवीय गरिमा के प्रति हमारी संवेदनशीलता का ही दूसरा रूप है और मनुष्य के गौरव को प्रतिष्ठित करने और उसकी निरन्तर रक्षा करने के प्रति हमारी जागरूकता ही हमारी जाग्रत अन्तरात्मा का प्रमाण है''।[1]

प्रो. अनिल कुमार जीवन के यथार्थ उसके खुरदुरेपन उसकी विषमताओं से सीधे नहीं टकराता है, बल्कि वह ऐसे गरिमामय परिवेश का सृजन करता है, ऐसे प्रकाश कीमिया को गढ़ता है ताकि एक रचनात्मक रूपान्तरण सम्भव हो सके। वह समाज सुधारने के लिए गोली का जबाव गोली से देने की बात कभी नहीं करता बल्कि ऐसे समय की रचना करता है जिससे हिंसा एवं क्रूरता के लिए जगह ही न रहे। ''हे परम ज्योतितिमिराच्छन्न खाई को दिव्य ज्योति से भर! ताकि यह पार्थिव सत्ता सारी पृथ्वी पर प्रेम बीज बो सके। फहरा सके रेशमी लाल पताका विश्व चेतना के उर्ध्व शिखर पर''।[2]

यह सच है कि अपनी अलग दिव्य दृष्टि एवं चेतना पोषी मानसिकता के कारण प्रो. अनिल की काव्य चेतना सबकी पकड़ में हाली-हूला नहीं आती। इनको समझने का मतलब है कि आप भारतीय मनीषा को समझ रहे हैं। आप वेद, उपनिषद, पुराण को समझ रहे हैं। ऐसा इसलिए भी कि इस कवि की कविताओं का रस आत्मापोषी है। इनमें गीता, बाइबिल, कुरान की समता और ममता है। भारतीय आत्मा की पुकार है तथा जीवन का सत सार है। मानवता एवं शाश्वत जीवन मूल्यों की सुगन्ध बहाने वालों के लिए उनकी रचनाओं में खुली जगह है, जीवन का समाधान है। लेकिन इनका काव्य रथ तो आत्मा के पथ पर ही गुजरने, उससे जुड़े अनुभवों को सहेजने से सुख पाता है। कवि कहता है—''आखिर मानवीय होना ही तो मनुष्य होना है। जिसमें मानवीयता नहीं भला उसे कोई क्यों कहेगा मनुष्य''।[3]

मानवीयता कवि के रोम-रोम में समाई हुई है। इन्हीं ताकतों से वह अंधेरी ताकतों से टकराता है। इसी विश्वास के सहारे वह कहता है, ''क्या पता लहरों की अनवरत ठोकर, शिवलिंग का रूप देगी मुझे। और मैं मन्दिर में सदियों तक पूजने के लिए। पवित्र हाथों द्वारा रखा दिया जाऊँगा''।[4] प्रो. कमला प्रसाद ने इस कवि के बारे में ठीक ही कहा है कि—''भावनाओं के अनेक कोण यहाँ (जाड़े की धूप में) मिलते और झाँकते हैं। पवित्रता और बराबरी के सरोकारों की अनुगूजें यहाँ सुनी जा सकती हैं।''[5]

यकीनन प्रो. अनिल कुमार की कविताओं के काल की क्षाणिकता की ओर नहीं, बल्कि काल की शाश्वता की ओर संकेत अधिक है। वह जीवन की क्षण भंगुरता में सोते-जागते शाश्वत सत्यों की ओर इशारा करने से नहीं चूकता। वह धर्म का नहीं बल्कि धार्मिकता का कवि है। उसकी राय में साहित्य समाज का दर्पण मात्र नहीं है इसके अलावा भी वह 'बहुत कुछ है' वह प्रेय और श्रेय का गरिमा पूर्ण समुच्चय है। बार-बार उसकी कविताओं में जीवन का अंतिम सत्य क्षणिक सत्य को अति क्रांत करता है। कवि ने इशारा किया है कि—''सिरहाने दबी अधूरी कविता को बिना पूर्ण किये ही छोड़नी होगी यह जगह। बिना इस प्याले की अंतिम बूँद पिये ही मोचक उठना होगा न जाने कहाँ जाने के लिए।''[6]

कवि के काव्य संकलनों—'जाड़े की धूप', 'बढ़ी रहेगी घूब, इव और नीला चाँद' और पाँचवा क्षितिज से गुजर कर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का काव्य बोध जीवन्तता का हिमायती है। उस चरम-परम सत्य को ठीक से जानकर ही इस मायावी जगत की यात्रा सहज और औचित्यपूर्ण हो सकती है। इसलिए वह जागतिक यथार्थ को जानबूझ कर जोड़ देता है। उनकी ही कविताओं में पूर्ववर्ती कलासाधकों, कवियों की जीवन्तता का सार है, वह गतिशील परम्पराओं के मूल सरोकारों की अनदेखी नहीं करता, वह उन अनुभवों को अपने लेखन में रूपांतरित करता है। इस रूप में भविष्यत कवियों के लिए वह आश्वासन का केन्द्र लगता है। उसमें भारत की भारतीयता है। विश्व की नागरिकता भी है। यही कारण है कि वह किसी वाद या समय विषय से प्रभावित होकर नहीं लिखता है। उसे वादों से चिढ़ है। उसका लेखन समय

की निरन्तरता से जुड़कर समरसता का गायन है। वह समता, बराबरी, समरसता, मानवता एवं लोकतांत्रिक मूल्यों को सहेजने-बचाने की कोशिश में लगा हुआ कवि है। क्योंकि सच्चा कवि दीवारों-वादों को खड़ा करने में विश्वास नहीं करता बल्कि उन्हें ढहाना एवं एक समरस तथा भेद-भाव रहित समाज बनाने का पक्षधर होता है जो वर्ग, सम्प्रदाय, जाति एवं अलग-अलग धर्मों का हिमायती है। क्या उसे भी सही मायने में रचनाकार या कलाकार कहा जा सकता है? शायद नहीं। कविता के मूल सरोकार के बारे में विष्णु डे के सुझाव अनुकरणीय हैं—''कविता लेखन आत्म-चेतना से परिपूर्ण सृजन कर्म है और इस दृष्टि से आधुनिक काव्य की देश (नाद) परम्परा बहुत पुरानी है।''[7]

वैसे तो कलाएँ सम्पूर्ण आस्तित्व का सृजन करती हैं, किन्तु सीताकान्त महापात्र के शब्दों में—हमारा चरम लक्ष्य अपनी अन्तरात्मा को पहचानना है और उसे विश्वात्मा से जोड़ना है। वे कहते हैं—''आत्मा अपनी मूल शुचिता में दीप्त है और जीवन का उद्देश्य आत्मा के लिए आवेग पैदा करना है, आत्मा की मुक्ति के लिए तीव्र लालसा पैदा करनी है।''[8]

विष्णु डे, डॉ. सीताकान्त महापात्र या दिव्य पराम्परा के प्रकाश में देखें तो प्रो. अनिल सिंह का लेखन उद्देश्यपूर्ण एवं सार्थक है, आत्मा के लिए आवेग पैदा करना एवं सामाजिक समरसता के लिए लेखकीय संघर्ष करना ही लेखन का केन्द्रीय भाव है। इस लिहाज से अगर उनमें भौतिकता का उद्घाटन है तो उसे आध्यात्मिक भौतिकता ही कहा जा सकता है। ये पंक्तियाँ दृष्यव्य हैं—''झुण्ड-की-झुण्ड नील गायें उतर आयीं। मैदानों में पठार-पहाड़ छोड़। सुनते हो भाई! गायें जंगली हो गईं हैं। रज रही हर जगह जंगल। गायें गोफा वाली फसलों को चर रही हैं। ये चर रही हैं सोयाबीन के खेत। खपस रही है फुनगियाँ इसलिए अब लुहा-लुहा का समय नहीं है। लुहा-लुहा बन जाने का समय है। सुनते हो भाई।''[9]

कविता को आत्मा की सहचरी एवं गम्भीर रचनात्मक कर्म मानने वाले कवि अनिल की कविताएँ आत्म चेतना को समर्पित दस्तावेज हैं। इन कविताओं को पढ़ना प्रकाश उत्सव में शामिल होने जैसा है। जीवन जगत की यंत्रणाओं-विद्रूपताओं का सामना करती कविताएँ व्यापक समावेशी जीवन विवेक में लय पाती हैं।' वह जीने की उम्मीद कभी नहीं छोड़ता है। वह कहता है—''गंगा में आई बाढ़। बहा ले गयी गाँव क गाँव।—लुटने-उजड़ने के बाद भी। बचा रहता है कुछ-न-कुछ, बची रहती हैं उम्मीदें। चोंच और तिनके।''[10]

प्रो. अनिल सिंह की कविताएँ मनुष्य को मनुष्य होने का बोध कराने के साथ-साथ उनमें पूर्णता की आकांक्षा को जागृत करती हैं; यथा—''पकना सुन्दर होना है। चाहे आम पके या मकोय। कला पके या पके अपने में समय। बिना तपे कला नहीं होती है कला। मिठास नहीं होती मिठास। समय नहीं होता खास। इस तरहं पकना स्वयं को खोना है। पर का होना है।''[11]

अपने लिए तो सब जीते हैं लेकिन जो अपनों के लिए जीते हैं, उनका जीवन ही जीना होता। प्रो. अनिल अपने लिए जीने का उपक्रम रचते-गढ़ते हैं। एक सार्थक जीवन से ही आत्मा की अमरता पर खरोंच नहीं आती। इसी भावभूति पर खड़ा होकर कवि विश्वात्मा से सतत जुड़ने का आह्वान करता है। यह बखूबी जानता है कि यह समय सांस्कृतिक विघटन का है। देह संस्कृति के ढोल पीटे जा रहे हैं। इसलिए वह गुहा साधक-सा अपने करणीय कर्म में निरत है। देह भविष्यत संततियों के सपनों को बचाने की चेष्टा करता है। वह पुकार उठता है। ''कैसे बचें अंकुरित सपने। कैसे मूर्त होंगे सतरंगी विचार। रेत होती दुनिया में। किसी-न-किसी को बनना होगा प्रह्लाद। दिखाना होगा लुक्क भेड़ियों को।''[12]

इस लौह समय के विकास के नाम पर भौतिकता का गायन एवं उनका प्रचार-प्रसार पूर्ण विकास नहीं ला सकता। इस तकनीक युग में देश-देश की संस्कृतियाँ अब बिखरेने को अभिशप्त हैं। एक नई वैश्विक संस्कृति

का उदय सुनिश्चित है लेकिन वह देह की संस्कृति का वाहक एवं पोषक न बनने पाये। उनमें आत्मा का उज्जवल प्रकाश भी समाहित हो। इस लिहाज से भारतीय मनीषा के उपासकों, मानवता एवं समता के पूजक आत्म पूतों को अहम भूमिका निभाने की जरूरत है। उस दृष्टि से मूल्यांकन करने पर प्रो. अनिल सिंह के रचनात्मक कर्म से विश्वास एवं सम्बल मिलता है। उनकी कविताएँ गतिशील चिन्तनधारा से गुजरते हुए समय आत्मीय संवाद रचती हैं जिनमें विशिष्ट वैचारिक लय होती है।

जहाँ तक कला पक्ष या कला साधना की रचनात्मक कर्म से भूमिका है उसे भाव साधना से अलग करके नहीं देखा जाना चाहिए। प्रो. अनिल सिंह अपने भावों, विचारों के अनुरूप कला को ढाल लेते हैं। भाषा उनके विचारों की अनुगामिनी है। वे ठिठक-ठिठक कर शब्दों को नहीं खोजते-गढ़ते बल्कि भाव प्रवाह में जो शब्द सहज की सहयात्री बनते हैं। उन्हें वे स्वीकार लेते हैं। फलतः कविताओं में सहजता एवं वैचारिक गति होती है। अंग्रेजी के प्राध्यापक होने के बावजूद तत्सम शब्दों को वरीयता देते हैं। अपनी बातों को सीधे कहने के पक्षधर नहीं लगते बल्कि कहन शैली में नाटकीयता लाते हैं। देशज शब्दों को भी इनके रचना संसार में आदर भाव है लेकिन जबरन आरोपित कुछ भी नहीं हैं।

प्रो. अनिल सिंह के काव्य में जीवन मूल्यों की पड़ताल से स्पष्ट है कि कवि एक उज्जवल कला परम्परा का वाहक है। कविता कर्म को एक जिम्मेदार कर्म मानने के नाते उसकी दृष्टि मानवीय एवं समता मूलक है। वे उस जीवन बोध को रचते हैं। जिसमें विषमता एवं वैराग्य न हो बल्कि जहाँ सबकी उपस्थिति के लिए समान रूप से सम्मान भाव हो। इस समत्व भावना की उपासना आत्मा एवं विश्वात्मा से जुड़कर ही सम्भव है। कवि में उत्तरोत्तर घनीभूत होती संवेदना उसकी दिव्य चेतना के प्रति निष्ठा का प्रतिफल है। यही कवि एवं कविता का परिचय है। जीवन मूल्यों के प्रति गहरी आस्था में गतिशील चेतना मूलक परम्परा का विशेष योग है। इस रूप में वह क्रान्तिकारी भी है। यकीनन प्रो. सिंह जीवन मूल्यों की स्थापना में बुद्ध, कबीर, श्री अरविन्दो, जे कृष्ण मूर्ति, टैगोर, निर्मल वर्मा की परम्परा के ध्वजवाहक हैं। गम्भीर संवेदना का संचार करने वाली कविताओं के अध्ययन के लिए मैं साहित्य प्रेमियों एवं मर्मज्ञों को आमंत्रित करता हूँ। इस कवि का सहयोगी बनने के लिए इसके काव्य समुद्र में गोता लगाने के लिए विशेष तैयारी की जरूरत है। वाणी के वरद पुत्र प्रो. अनिल का कलात्मक लेखन समय के भाले का कुम-कुम चंदन बने, इसी भावनाओं के साथ...।

संन्दर्भ ग्रंथ

1. डॉ. धर्मवीर भारती, मानव मूल्य और साहित्य भारतीय, ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1990, पृ. 04
2. अनिल कुमार सिंह, सत्यप्रिय, पाँचवा क्षितिज : भार्गव एण्ड कम्पनी, इलाहाबाद, 2014, पृ. 09
3. वही, पृ. 53
4. अनिल कुमार सिंह, जाड़े की धूप, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998, पृ. 06
5. वही, पेज (भूमिका से)
6. वही, पृ. 72
7. रवीद्र कालिया, स. ज्ञानपीठ पुरस्कार, 1965-2010, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2013, पृ. 161
8. डॉ. सीताकान्त महापात्र, शब्द, समय और संस्कृति, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1998, पृ. 72-73
9. अनिल कुमार सिंह, बची रहेगी धूप, विन्ध्य लिटरेरी फाउण्डेशन, सीधी, 2003, पृ. 49
10. डॉ. अनिल कुमार सिंह 'डूब और नीला चाँद' संरचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012, पृ. 45
11. वही, पृ. 67
12. वही, पृ. 99

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

''21वीं सदी के उभरते परिदृश्य में महिलाओं का योगदान''

❐ डॉ. गीता तिवारी

शोध सारांश

आधुनिक युग में स्वतन्त्रता के पश्चात् वैधानिक दृष्टि से भारत की नारी अधिकार सम्पन्न हुई, और शिक्षा ने उसकी प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाये। सामाजिक कुरीतियों और चुनौतियों का सामना करती हुई एक ओर उसने परिवार की संरचना में योगदान दिया तो, दूसरी ओर वह राष्ट्र निर्माण में अमर कीर्ति की परचायक हैं। 21वीं सदी के वर्तमान समय में अपने आस्तित्व अपनी पहचान और अपने अधिकारों का संकल्प लेती महिलायें मुखरित हो उठी हैं। महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उपलब्धियाँ परिवार से लेकर राष्ट्र निर्माण तक हर क्षेत्र में इनका योगदान अविस्मरणीय है। जब अपनी भारतीय महिला की बात करें तो गौरव की अनुभूति होती है। महिला का स्थान हमारे समाज में, हमारे साहित्य में, हमारे धर्म शास्त्रों में एवं हमारे राष्ट्र में हमेशा से बहुत ऊँचा रहा है। जन्मदात्री होने के कारण नारी ''जननी'' है। जीवन भर पति का साथ निभाने के कारण 'सद्वयात्रिणी' है। धर्मकार्यों में उसका साथ अनिवार्य होने के कारण 'सहधर्मिणी' है। गृह की व्यवस्थापिका होने के कारण 'गृहलक्ष्मी' विशेषण से विभूषित हुई है।

''महादेवी वर्मा के शब्दों में नारी केवल मांसपिंड की संज्ञा नहीं है। आदिकाल से आज तक विकास पथ पर पुरुषों का साथ देकर उसकी यात्रा को सरल बनाकर, उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भरकर मानवी ने जिस व्यक्तित्व, चेतना और हृदय का विकास किया है, उसी का पर्याय ''नारी'' है।''[1]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा ''तुम विश्व की पलनी शक्ति की धारिका'' हो, शक्तिमय माधुरी के रूप में।

''शेक्सपियर की मान्यता है कि—सौन्दर्य स्त्रियों को प्रायः अभिमानी बनाता है, सद्गुण उनको अति प्रशंसनीय बनाता है और विनय से वह देवतुल्य हो जाती हैं। मुझे मनु की पंक्तियाँ स्मरण हो उठती हैं 'यत्र नार्यस्तु-पूजयंते रमंते तत्र देवता'' भारतीय नारी के कई रूप हैं। वह कई रिश्तों में गुथी एक है।''

समाज की प्राथमिक इकाई परिवार की मुख्य धुरी 'महिला' को सशक्त बनाकर ही जागरूक समाज और प्रगतिशील राज्य की संकल्पना को साकार किया जा सकता है। बिना महिलाओं को मुख्य धारा से जोड़े दुनिया के मानचित्र में किसी भी देश को एक उन्नत राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठा दिलाने की कल्पना केवल दूर की कौड़ी ही साबित होगी, मध्य प्रदेश इस बदलाव का जीवंत साक्षी है कि प्रदेश की महिलायें निरन्तर आगे बढ़ रही हैं और प्रदेश सरकार ने उनकी समस्याओं को समझा एवं उन प्रतीकों और परम्पराओं

* अध्यापक, शासकीय माध्यमिक विद्यालय, बरा, रीवा (म.प्र.), मोबाइल : 9993212765

से स्त्रियों को मुक्त कराया जो भेदभाव और शोषण की बुनियाद को और मजबूत करते हैं।

सुविचारित नीतियों और कार्यक्रमों के माध्यम से समाज में महिलाओं की भूमिका निर्धारित करने के लिए कई ठोस कदम उठाये गये हैं। सरकार का मानना है कि, प्रदेश में महिलाओं के विकास के लिए एक सशक्त वातावरण तैयार हो ताकि वे अपने हित में स्वयं फैसला ले सकें। न सिर्फ महिलाओं को पुरुषों के बराबर खड़ा होने का मौका दिया बल्कि उन गरीब घरेलू कामकाजी महिलाओं के चेहरे पर भी मुस्कराहट जगाई, जहाँ पर 13 अक्टूबर 2009 को शहरी घरेलू कामकाजी महिलाओं की पंचायत हुई और घरों में काम करने वाली महिलाओं को फोटो युक्त परिचय पत्र, उपचार, अनेक बच्चों को निःशुल्क पाठ्य पुस्तक, प्रस्तुति सहायता बीमा योजना, पेंशन आदि सुविधायें उपलब्ध कराई। पुरुष और महिलाओं की समानता की प्रबल पक्षधर मध्य प्रदेश सरकार ने नगरीय निकायों और स्वास्थ निकायों के चुनावों में महिलाओं को 50 फीसदी आरक्षण देने का अहम फैसला किया है।[2]

''देश की सुरक्षा की मजबूत दावेदारी में देश की मिसाइल सुरक्षा की कड़ी में 5000 किमी. की मारक क्षमता वाली अग्नि-5 मिसाइल का सफल परीक्षण टेसी थॉमस ने किया। इसलिए इन्हें 'मिसाइल वूमेन' एवं 'अग्निपुत्री' से सम्बोधित करते हैं। 20 सालों से ये देश की मिसाइल प्रोजेक्ट को सम्भाल रही हैं। भारतीय ''टैंक एवं फील्ड की रानी'' पी.टी.ऊषा को हम कभी नहीं भुला सकते हैं। इन्हें 'पसोली एक्सप्रेस' नामक उपनाम दिया गया है, जिन्होंने एशियाई एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में विशिष्ट पहचान बनाई है। मैरी काम भारतीय महिला मुक्केबाज है। इनकी उपलब्धियों के कारण इन्हें मॉग्नीफिसेंट मैरी का सम्बोधन दिया गया है। सायना नेहवाल, सानिया मिर्जा आज खेल जगत की गौरवपूर्ण पहचान हैं। बछेन्द्री पाल एवरेस्ट पर चढ़ने वाली प्रथम भारतीय महिला हैं। भारतीय मूल की सुनीता विलियम्स और कल्पना चावला अतंरिक्ष पटल की विशिष्ट पहचान हैं।''

''विश्व निर्माण की कीर्ति-स्तंभचारियों में महिला मताधिकार के लिए सर्वप्रथम लड़ने वाली इमिलाइन पैंकहर्स्ट, नवीन बाल शिक्षण पद्धति की प्रणेता मारिया मांटेसरी, नेत्रहीनों की ज्योति हेलन केलर, करुणा और स्नेह की देवी मदर टेरेसा राष्ट्र निर्माण में अपने कार्यों द्वारा अमर हो गयी। राजनीति के क्षेत्र में श्रीलंका की भूतपूर्व प्रधानमंत्री सिरीमावो भंडारनायके, राष्ट्रपति चंद्रिका कुमारतुंगे, इजराइल की भूतपूर्व प्रधानमंत्री गोल्डामायर और ग्रेट ब्रिटेन की पूर्व प्रधानमंत्री मारग्रेट थैचर तथा भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी का नाम राजनीति के क्षेत्र लोकप्रिय है।''[3]

विश्व साहित्य में नोबल सम्मान से सम्मानित टोनी मोरिसन ने साहित्य के माध्यम से अफ्रीकी, अमेरिकी अश्वेत औरतों को पहचान दिलाने का काम किया है। अनेक नाम महिलाओं की उपलब्धियों तथा शौर्य का गुणगान कर रहे हैं। विजय लक्ष्मी पण्डित ने सन् 1953 में संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा की अध्यक्षता कर भारत को विश्व में विशिष्ट स्थान दिलाया। महिलाओं ने सभी भाषाओं के साहित्य में सृजन का समाज व राष्ट्र चित्रण किया है। भारत की आजादी में अगर महात्मा गांधी का योगदान है तो, कस्तूरबा बाई का योगदान कम नहीं है। यदि छत्रपति शिवाजी की तलवार से मुगल काँपते थे तो रानी लक्ष्मीबाई की तलवार से भी अंग्रेजों के छक्के छूट जाते थे। क्या वीरांगना दुर्गा बाई या फिर रानी कमलावती किसी से कम बहादुर और क्रान्तिकारी महिलायें थीं। ईश्वर ने महिला एवं पुरुष दोनों को एक समाज, एक रथ के दो पहियों के रूप में बनाया है, जो श्लोक हमारे देश में सबसे ज्यादा पढ़ा और बोला जाता है उसकी पहली पंक्ति है—

''त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव''[4]

यह हमारी पौराणिक अवधारणा है कि ईश्वर ही पहले हमारी माता है फिर पिता है फिर भाई है फिर सखा है। भारत और दुनिया भर के देशों को अब यह समझ लेना चाहिये कि नारी शक्ति के बिना विकास और अमन सम्भव नहीं है। ''महान कवियित्री महादेवी वर्मा ने अपनी पंक्तियों में नारी मन की पीड़ा को कुछ इस प्रकार से वर्णित किया है—''मैं नीर भरी दुःख की बदली, उमड़ी

कल-कल थी मिट आज चली। विस्तृत नभ का कोई कोना मेरा कभी न अपना होना, परिचय मेरा इतिहास यही''। किन्तु अब भारत की नारी बदल चुकी है। आज भारत क्रान्ति के युग में प्रवेश कर रहा है और इस बार क्रान्ति की कहानी लिखने में इस देश की नारी पुरुषों से पीछे नहीं रहेगी।''[5]

समाज में नारी सम्मान को कई चुनौती मिलती रही है। साध्वी पत्नी को अग्नि-परीक्षा देनी पड़ी, सन्देह मात्र से अग्नि ज्वाला में झुलसी, देवताओं के मनोरंजन के लिए देवदासी बनी और पुरुषों के मनोरंजन के लिए कणिका। बौद्धकालीन नारी की स्थिति इतनी दयनीय थी कि भगवान् बुद्ध को नारी के उद्धार के लिए 'भिक्षुणी'' बनने की स्वीकृत देनी पड़ी, मुगल काल में भारतीय नारी चारदीवारी के अन्दर कैद रही है।

आज समाज यदि महिलाओं की सामाजिक समानता के हक की बात सुनने को तैयार हुआ है तो यह महिलाओं के पक्ष में उभरती आवाज में आई नारी चेतना का परिणाम है। महिलाओं को वोट देने तथा देश की राजनीति और पंचायतों में हिस्सेदारी करने का अधिकार भी इसी ताकत के आधार पर मिला है।

''इतिहास गवाह है कि, देश में महिलाओं ने आदर्श कायम किया है। सीता हो या राधा, झांसी की रानी हो या अहिल्या बाई, इन्दिरा गांधी हो या कल्पना चावला इन महिलाओं ने पूरे विश्व में समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास किया है। महिलाएँ किसी भी मामले में पुरुषों से कम नहीं हैं लेकिन पुरुष प्रधान समाज में उन्हें अवसर कम मिले हैं। जहाँ भी अवसर मिले हैं उन्होंने दिखा दिया है कि वे सभी कार्यों को करने में सक्षम हैं।''[8] हालांकि अशिक्षा कुरीतियों के चलते आज भी हमारे देश की महिलाएँ वह प्रगति हासिल नहीं कर पायी हैं जो उन्हें करनी चाहिये। इसके लिए ईमानदारी से प्रयास भी नहीं किये गये। हमेशा महिलाओं को परदे में रखने की कोशिश की जाती रही है। समय के बदलाव के साथ महिलाएँ आगे आईं। ''महादेवी वर्मा के शब्दों में 'युगों से पीड़ित रहने के कारण जो हीनता के संस्कार भारतीय नारी में बन नये थे, उन्हें आधुनिक भारतीय नारी ने अपने रक्त और प्रस्वेद से इस प्रकार धो दिया कि आगामी युग की नारी को उस पर कोई रंग नहीं चढ़ाना पड़ेगा। अपने स्वरूप के लिए समाज से याचना करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। काल और परिस्थिति के अनुकूल नारी ने योगदान दिया है। गृहस्थी के रूप में घर का, हाथ में तलवार लेकर राष्ट्र की सुरक्षा का, सेवा की मूर्ति बन मानव पीड़ा का हरण किया और प्रधानमंत्री बन राष्ट्र की भाग्य विधाता बनी उसका योगदान असीमित है। महिलाएँ हर क्षेत्र में आगे बढ़ी हैं। पर साथ ही उनके प्रति होता अन्याय भी ओझल शोषित है।''[7]

''सामाजिक समस्याओं को दूर करने के लिए महिलाओं का संगठित होना जरूरी है। यह बदलने में अभी समय लगेगा, रास्ता लम्बा चुनौती भरा, पर आशावादी है, दृढ़ इच्छा शक्ति और शिक्षा ने नारी के सपनों को सप्तरंग देकर नई राहें खोली हैं। नई सदी की नारी के पास कामयाबी के उच्चतम शिखर को छूने की अपार क्षमता है।''[8]

सन्दर्भ स्त्रोत

1. उषा अरोड़ा : आजकल साहित्य और सांस्कृतिक का मासिक पत्रिका अंक, मार्च-2016, पृ. 6
2. दैनिक जागरण, रीवा अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर विशेष, 2011
3. उषा आरोड़ा, आजकल साहित्य और संस्कृति का मासिक, पृ. 7
4. दैनिक जागरण समाचार-पत्र, पृ. 6, सत्र 2012
5. दैनिक जागरण समाचार पत्र पृ., सत्र 2012
6. नई दुनिया समाचार-पत्र पृ. 7, सत्र 2011
7. उषा अरोड़ा, आजकल साहित्यिक एवं संस्कृति का मासिक अंक, मार्च 2015
8. उषा अरोड़ा, आजकल साहित्यिक एवं संस्कृति का मासिक, पृ. 7, मार्च 2015

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

वाल्मीकि रामायण और अर्थालंकार

❐ अनामिका चतुर्वेदी

शोध सारांश

अर्थालंकारों की सुषमा अपने नैसर्गिक रूप में काव्य को भूषित करती है। अर्थालंकार शब्द के चित्र धर्म से सम्बन्धित हैं। किसी वस्तु या घटना के स्मृतिधृत[1], स्फुट या अस्फुट चित्र को मन के पर्दे में जगाकर उसकी सहायता से वक्तव्य की अभिव्यक्ति करने का धर्म ही चित्र–धर्म है। वक्तव्य को सुन्दर बनाने के लिए उसमें स्पष्टता लाने के लिए चित्ररूप की सहायता ली जाती है। काव्य में अलंकरण के साथ–साथ, चित्रमयी भाषा, इन्द्रियग्राह्य भी हो जाती है और विशेषोक्ति का काम करती है। लौकिक छन्द के विकास की ही भांति वाल्मीकि ने अलंकारिक प्रयोगों का भी विकास किया। उन्होंने सरस और ललित शब्दों में विषय का चित्रण चित्रात्मक वर्णन किया है जो सहज ही किसी का मन आकृष्ट कर लेता है। उनकी सरस कोमल पदावली युक्त स्वभावोक्ति लोक में प्रचलित हो गई। इसी से (स्वाभवोक्ति) भी एक विशेष अलंकार रूप में प्रयुक्त होकर आदि कवि का प्रिय अलंकार माना जाने लगा। अस्तु, वाल्मीकि ने जिन मूल अलंकारों का आश्रय लेकर अपने अलंकारों का विकास किया, वे हैं – उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि। वैसे तो लोक प्रसिद्ध उक्ति यही है कि उपमा के सम्राट कालिदास हैं[2] किन्तु वाल्मीकि के प्रयोग के समक्ष उनका प्रयोग भी क्षीण प्रतिभासित होता है।

प्रस्तुत शोध–पत्र में वाल्मीकि रामायण में अर्थालंकर को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जिसमें उपमा सभी सादृश्यमूलक अलंकारों का उद्‌भावक है। इसकी प्रधानता बताते हुए राजशेखर ने इसे कविवंश की माता कहा है। अतः रामायण में इसी अलंकार की प्रधानता है। उपमा से उद्‌भूत उत्प्रेक्ष, प्रतीप, व्यतिरेक आदि का भी रामायण में प्रयोग हुआ है किन्तु ये सब उपमा के अन्तर्हित दिखाई पड़ते हैं। उपमा की योजना में कवि की व्यापक दृष्टि का आभास होता है। उपमेय और उपमान में व्यापक दृष्टि का आभास होता है।[3] उपमेय और उपमान में साधर्म्य–स्थापना के द्वारा कवि ने अपनी कल्पना शक्ति एवं वस्तुओं के रूप गुण–क्रिया आदि के प्रकटन से भावोक्ति में सफलता का ज्ञान होता है। प्रस्तुत का वर्णन करने के लिए व्यापक जीवन और प्रकृति के अप्रस्तुत पदार्थों का

* पी-एच.डी. (संस्कृत), आदर्श उ.मा. विद्यालय के सामने, विश्वविद्यालय रोड, रीवा (म.प्र.)

चयन किया गया है। वाल्मीकि ने मालोपमा4 का सुन्दर प्रयोग किया है। रामायण के प्रारम्भ में ही एक सुन्दर उपमा का उदाहरण मिलता है, जो हमारी कल्पना में अभिभूत हो जाती है। यथा –

''अकर्दममिदं तीर्थं भरछज सिशामय रमणीयं प्रसन्नाम्बु सन्मनुष्यमानो यथा''।।[5]

यहां प्रसन्न और रमणीय शब्द वाल्मीकि की शैली ओर प्रतिमा का आभास कराते हैं। रामायण में प्रयुक्त सभी अलंकार प्रसाद, रमणीयता और स्पष्टता के गुणों से युक्त हैं।

रामायण में काव्यात्मक विशिष्टता के लिए या विराट भावना के लिए सागर, वन, पर्वत, अनेकशः प्रस्तुत किया है। प्रकृति क्षेत्र के उपमानों को भी कवि ने अपनाया है। यही कारण है, कि काव्य–नायक को गौम्भीर्य में समुद्र के समान कहा गया है। राम के सौन्दर्य के लिए कमल को आधार माना गया है। अलंकार–जगत् में कमल की महत्ता इसलिए भी और अधिक हो गई है, क्योंकि उसका सम्बन्ध विष्णु लक्ष्मी, ब्रह्मा और सरस्वती से घनिष्ट था। अतएव राम की श्यामलता में श्याम–कमल को उपमान मानकर उन्हें इन्दीवर श्याम कहा गया है।[6] राम के पूर्वजों के पुरुषार्थ के चिन्ह सागर को राम ने सेतुबन्ध की चमत्कारिक घटना से जीता था, अतएव वाल्मीकि ही ऐसे प्रथम कवि थे जिन्होंने सागर के प्रति आत्मीयता और प्रेम का भाव प्रदर्शित कर उसका वर्णन रामायण में किया।[7] वाल्मीकि ने सागर के तरगों की तुलना उल्लास से की है।

आकाश में मेघों को चीरकर चन्द्रमा के निकलने की प्रक्रिया को भी उपमान मानकर हनुमान को उपमेय माना गया है। शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों की सुषमा अपने नैसर्गिक रूप में काव्य को अधिक भूषित करती है। अर्थालंकारों का सम्बन्ध शब्द के चित्रमयी इन्द्रिय ग्राह्यता भी हो जाती है तथा विशेषोक्ति का कार्य भी करती है। आदिकवि वाल्मीकि ने अपनी अद्वितीय काव्यगति रामायण में सरल एवं ललित शब्दों में विषय का चित्रात्मक वर्णन किया है, जो सहज ही मन को अकृष्ट कर लेता है। वाल्मीकि ने जिन मूल अलंकारों का आश्रम लेकर अपने अलंकारों का विकास किया है वे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि हैं। यथा– हनुमान् मेघजालानि प्रकर्षन्मारूतों यथा।

प्रविशन्नभ्रजालानि निएपतंश्च पुनः पुनः।।

रामायण में राम रहित सूनी अयोध्या का वर्णन और अशोक वन में। एकाकिनी[8] भयभीत सीता का चित्रण में दोनों प्रसंग अप्रस्तुत विधान[9] तथा उपमान संयोजन की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हैं। इसमें उपमानों की ऐसी सुन्दर संगति हुई हैं कि वाल्मीकि से ही मालोपमा की श्रृंखला परवर्ती काव्य को उपलब्ध हुई। यह संयोजन अलंकृत महाकाव्य की शैली के अनुरूप ही हुआ है। वाल्मीकि की उपमा का वैशिष्ट्य यही है कि उन्होंने परिस्थिति को अपनी भावुकता से पूर्ण साक्षात्कार करके उसे अपनी अद्भुत कल्पना द्वारा प्रत्यक्ष कर दिया। इससे भी अधिक उनके पाण्डित्य और लोकजीवन अथवा युगचेतना की झलक मिलती है। उनके उपमानों में खगोल विद्या, ऋतु–विज्ञान, अग्निहोत्र, रणक्षेत्र, पशु–जगत् रत्न आयल, ज्योतिष, प्रकृतिक उत्पात, मद्यशाला पौशाला शस्त्रविद्या आदि से सम्बन्धित सजीव चित्रण है।

विरहिणी[10] सीता की तुलना में भी मालोपमा का चित्रण मिला है।[11] वाल्मीकि का अत्यन्त प्रिय विचरण क्षेत्र प्रकृति है। अतः उन्होंने प्रकृति से ही पात्र और प्रकरण के अनुरूप विविध उपमान संवृहीत किये हैं। तपोवन के विघ्नमय भयानक जीवन दावाग्नि भौगोलिक उत्पात, आखेट आदि का चित्रण किया है। ज्योतिष और प्रकृति के साथ–साथ नीतिशास्त्र, संगीत, पुराण आदि के उपमान का आश्रय भी लिया है।[12]

रामायण में उपमेय और उपमान में स्थूल तथा सूक्ष्म के भेद से उपमा के कई प्रकार दृष्टिगोचर होते है। यथा स्थूल उपमेय (सीता) के लिए स्थूल उपमान (पत्रमग्ना पद्यिनी) था यूथभ्रष्य हरिणी, करिणी से उपमा दी गई है। रूप, गुण, क्रिया, के सादृश्य से

इनमें साधर्म्य हैं।[13] स्थूल उपमान में सीता के लिए रति की उपमा पौराणिक शैली की उपमा है।[14]

इस प्रकार सूक्ष्म उपमेय (बुद्धि) के लिए सूक्ष्म उपमान (विद्या) का भी साधर्म्य पूर्ण उदाहरण मिलता है।[15] सूक्ष्म उपमेय के लिए स्थूल उपमान (पर्वत सागर और वन आदि) का उदाहरण भी रामायण में उपलब्ध है।[16] एवमेद स्थूल उपमेय (सीता) का सूक्ष्म उपमान (वाणी) है। और स्थूल और उपमेय के लिए सूक्ष्म उपमानों की तो रामायण में भरमार है। उपमान (वाणी) है और स्थूल उपमेय के लिए सूक्ष्म उपमानों की तो रामायण में भरमार है।

उक्त उदाहरणों के पर्यालोचन से स्पष्ट होता है कि रामायण की उपमाएँ भावोत्कर्ष में पूर्ण सक्षम, साधर्म्ययोजना पूर्ण संश्लिष्ट है। उनमें चित्रोपमता भी है। वाल्मीकि की उपमाओं में सम, इव, यथा आदि वाचक शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इन दृष्टियों से उपमा अलंकारों का अलौकिक और पूर्ण प्रयोग रामायण में हुआ।

रामायण में स्पष्ट सुन्दर और स्वच्छन्द उपमाओं के उदाहरण बहुलतम मिलते हैं। जिनसे वाल्मीकि की अलौकिक और सहज प्रतिमा का आभास मिलता है। रामायण की उपमाओं की एक विशेषता और रही है कि कवि ने अपनी उपमा को उच्च उत्कृष्टतम रूप देने के लिए उपमा के लिए उपमा का प्रयोग किया है। रामायण के अयोध्याकाण्ड (सर्ग 14, 15, और 19) तथा सुन्दरकाण्ड में इसके उदाहरण उपलब्ध होते हैं।

रूपक भी सादृश्यमूलक अलंकारों में प्रमुख माना जाता है। ऋग्वेद में उल्लिखित आदिम अलंकारों में रूपक अत्यतम है। रामायण में भी सावयव और निरवयव दोनों प्रकार के रूपकों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। सावयव या सांग रूपकों का ही महाकाव्य में प्रयोग सुन्दर माना गया है। आचार्य दण्डी ने उपमा का ही रूप रूपक को बताकर उपमा–रूपक का घनिष्ठ सम्बन्ध बतलाया है। वाल्मीकि ने रूपक के आयोजन में उपमा का सहयोग लिया है उपमा की उपपेक्षा रूपक में उपमेय और उपमान सा सादृश्य इतना अधिक होता है कि दोनों में अभेद स्थापित हो जाता है। रामायण में रूपकों के प्रयोग अत्यन्त सुन्दर और कलापूर्ण हुए हैं। रूपक के तीन निरंग, सांग और परम्पारिक भेदों का प्रयोग रामायण में पाया जाता है। सांग रूपक निम्नरूप में उपलब्ध है। दशरथ और भरत का शोकसागर, भरत का दुःख शैल, शूर्पणखा का शोक, लंक–सुन्दरी, राम–गरूड़, राम–दिवाकर गगनार्णव, सैन्य–सागर, सैन्यसरिता, रणसरिता रामचक्र तथा रामवृक्ष। रामायण में इन वर्णनों से मनःस्थिति और परिस्थिति का सम्यक् प्रकाशन हुआ है और रूपक की सार्थकता सिद्ध हुई है, तथापि वाल्मीकि उपमा के प्रयोग में अधिक सफल रहे हैं।

संदर्भ स्रोत –

1. उपमा कालिदासस्य – डॉ. शशिभूषण दास गुप्त, पृ0 181
2. उपमा कालिदासस्य।
3. अलंकार शिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदम्। उपमा कविवंशस्य भावेतेति मतिर्भम।। काव्यमीमांसा
4. उपमा कालिदासस्य' डॉ. शशिभूषण दास गुप्त, पृ. 181
5. उपमा कालिदासस्य।
6. अलंकार शिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदम्।
7. उपमा कविवंशस्य भातेवेति मतिर्भम।। काव्यमीमांसा
8. वा0रा0 5/15, 17 सर्ग
9. वा0रा0 5/114/3–27
10. वा0रा0 5/19–22
11. वा0रा0 5/15, 24, 39
12. वा0रा0 5/17/3, 20–23, 26 सर्ग
13. वा0रा0 5/21, 24
14. वा0रा0 5/15/30
15. वा0रा0 5/15/38
16. वा0रा0 2/85/99

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

महिलाओं में मतदाता जागरूकता
(रीवा नगर के विशेष संदर्भ में)

❐ डॉ. गायत्री मिश्रा*
❐ संजली गुप्ता**

शोध सारांश

निर्वाचन प्रक्रिया कई चरणों को समाहित करती है, जिसका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभाव निर्वाचन परिणामों में देखने को मिलता है। विचिन प्रक्रिया का सम्बन्ध मतदाताओं के ज्ञान,दृष्टिकोण एवं व्यवहार से जुड़ा होता है, जिसका विशुद्ध परिणाम चुनावों में देखने को मिलता है। आज की राजनैतिक प्रक्रिया का यह सबसे गम्भीर बिन्दु है, जिसके माध्यम कसे सत्ता का निर्माण होता है। भारत के विगत विभिन्न संसदीय एवं विधानसभाई निवाचनों को यदि बारीकी से देखा जाय तो नागरिक भागीदारी की गति एवं प्रवृत्ति बदलती रही, जिसमें महिलाएं भी शामिल हैं। इस बदलती विचारधारा से प्रभावित होकर मतदाताओं में सरकारों का निर्माण किया है। जिससे सत्ता में परिवर्तन प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। भारत में चुनाव आयोग द्वारा केन्द्रतथा राज्य के चुनाव सम्पन्न कराये जाते हैं। अतः आयोग की य मन्शा होती है कि हर वर्ग के मतदाताओं में जागरूकता तथा भिज्ञता पैदा हो, क्योंकि इसके अभाव में कई समस्याएं चुनाव घोषणा के पूर्व, चुनाव के समय एवं चुनाव के उपरांत उत्पन्न होती है। अतः मतदाताओं का जागरूक होना चुनाव प्रक्रिया के व्यापक हित में होगा। इस भावना से प्रेरित होकर इस शोध–पत्र के विषय का चयन ''महिलाओं में मतदाता जागरूकता, रीवा नगर के विशेष सन्दर्भ में'' अध्ययन के लिये सुनिश्चित किया गया है।

मतदाताओं से सम्बन्धित प्रारम्भिक तथ्यों का परिचय प्राप्त करने के उपरान्त अध्ययन विषय से सम्बन्धित दूसरा महत्वपूर्ण परीक्षण योग्य पक्ष यह पाया गया कि मतदान की प्रक्रिया के पूर्व उत्तरदाताओं के विभिन्न चरणों की जानकारी का आधार क्या रहा ? इस प्रश्न का उत्तर इस अध ययन में जानने का प्रयास किया गया है। जिसे विभिनन संक्षिप्त उपखण्डों में विभाजित कर अध्ययन किया गया है।

* प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान), शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** एम.ए., एम.फिल., राजनीति विज्ञान, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह विद्यालय, रीवा (म.प्र.)

मतदाता सूची की तैयारी–

निर्वाचन प्रक्रिया में मतदाता सूची का विशेष महत्व होता है। चुनाव आयोग के द्वारा लोकसभा अथवा विधानसभा के प्रत्येक चुनाव या मध्यावधि चुनाव के पूर्व मतदाता सूचियाँ तैयार करवायी जाती हैं। इस कार्य के सम्पन्न होने के पश्चात् ही चुनाव सम्पन्न कराये जाते हैं। एक निश्चित तिथि को जिन व्यक्तियों ने 18 वर्ष अपनी आयु पूर्ण कर ली है, उन सीाी व्यक्तियों के नाम मतदाता सूची में शामिल किये जाते हैं, किन्तु जो व्यक्ति पागल अथवा दिवालिया हो उसके लिए यह लागू नहीं होता है। मतदातासूची तैयार कराने का प्रमुख उद्देश्य यह होता है कि कोई भी ऐसा व्यक्ति मताधिकार से वंचित न रहे, जो मताधिकार की योग्यता रखता है। मतदाता सूची तैयार करना एक महत्वपूर्ण व कठिन कार्य होता है। इसमें निरन्तर संशोधन भी होते रहते हैं। संशोधन के अनतर्गत सभी वयस्क पुरुषों एवं महिलाओं के नाम मतदाता सूची में जोड़ जाते है। साथ ही ऐसे व्यक्ति जो मृतक हो चुके हैं या उसे क्षेत्र ासे पलायित होकर अन्यत्र चले गये हों, उनका नाम मतदाता सूची से काट दिया जाता है। मतदाता सूची निर्माण का कार्य, चुनाव होने के कई महीने पूर्व शुरू हो जाता है। रीवा नगर की महिलाओं में मतदाता सूची की तैयारी की जागरूकता निम्नलिखित संबंधित उपखण्डों के माध्यम से जानी जा सकती है–

1. मतदाता सूची में पंजीयन – मतदाता सूची निर्माण कार्य होने पर मतदाता इस बात से जागरूक हो जाता है कि उसका एवं उसके परिवार का नाम मतदाता सूची में जोड़ा जाय। यह मतदाताओं के जागरूकता का प्रतीकहै। सामान्य रूप से जिन महिलाओं का नाम इस सूची में नहीं होता उनके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वे मताधिकार के प्रति सजग नहीं हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में यह पाया गया कि सभी उत्तरदाताओं के नाम मतदाता सूची मेंदर्ज हैं, जिससे अध्ययन समूह को सजग मतदाता का दर्जा दिया जा सकता है।मतदाता सूची में नाम न होने के तथ्य की जानकारी, मतदाताओं को कैसे हुई ? यह एक विश्लेष्ण का विषय बना। मतदाता सूची में नाम होने की जानकारी मतदाताओं को जिन विभिन्न स्रोतों से प्राप्त हुई, वह निम्न तालिका से स्पष्ट है :–

तालिका क्रमांक 1
मतदाता सूची में नाम होने की जानकारी का स्रोत

क्र.	विभिन्न स्रोत	संख्या	प्रतिशत
1	पड़ोसी से	08	16%
2	प्रत्याशियों से	11	22%
3	चुनाव एजेन्टों से	07	14%
4	स्वतः	04	8%
5	परिवार के सदस्यो से	20	40%
	योग	50	100%

तालिका क्रमांक 1 से स्पष्ट होता है कि 40 प्रतिशत उत्तरदाताओं को अपने ही परिवार के सदस्यों से, उनके मतदाता सूची में नाम होने की जानकारी प्राप्त हुई। दूसरी ओर 22 प्रतिशत उत्तरदाताओं को, उनके मतदाता सूची में नाम होने की जानकारी प्रत्याशियों के माध्यम से हुई। शेष 16 प्रतिशत जानकारी मतदाताओं को पड़ोसियों से प्राप्त हुई तथा 14 प्रतिशत एवं 8 प्रतिशत जानकारी उत्तरदाताओं को क्रमशः चुनाव एजेन्टों व स्वतः से प्राप्त हुई। इस तालिका से यह बात स्पष्ट है कि अधिकांश महिलाओं को मतदाता सूची में नाम होने की जानकारी, अपने ही परिवार के सदस्यों से हुई। इसका कारण यह है कि महिलाएं

अपने धर में ज्यादा समय तक रहती हैं, जिससे उनका सीधी सम्बन्ध चुनाव प्रत्याशियों, एजेन्टों अथवा अन्य से नहीं हो पाता। यह सम्बन्ध सीधे उनके परिवार के सदस्यों से ही होता है। जिससे यह अभिमत अधिकांश उत्तरदाताओं को अपने परिवार से मिली। जो महिलायें अपने गृह कार्य के अलावा अन्य गतिविधियों में भी रुचि लेती हैं, वे अतिरिक्त समय में घर से बाहर निकलती हैं। जिसके कारण उनका सम्बन्ध अन्य लोगों से भी हो पाता है। यही कारण है कि अन्य स्रोतों की तुलना में उत्तरदाताओं को अपने परिवार के सदस्यों द्वारा ही अधिकांशतः यह जानकारी प्राप्त होती है। इसके साथ ही प्रत्याशी भी मतदाता सूची के माध्यम से, मतदाताओं से मिलने का समुचित आधार बनाते हैं। अतः मतदाताओं को यह विश्वास रहता है कि चुनाव के समय इस सम्बन्ध में उन्हें अवश्य जानकारी प्राप्त होगी। किन्तु यह एक गम्भीर समस्या तब बन जाती है जब मतदाता का नाम मतदाता सूची में नहीं होता और इस समय तक काफी विलम्ब हो चुका होता है।

मतदाता सूची विषयक तथ्यों का संग्रहित करने से यह ज्ञात हुआ कि 90 प्रतिशत महिलाओं के नाम मतदाता सूची में पहले से ही जुड़ा रहा। केवल 10 प्रतिशत महिलाएं ऐसी मिली जिन्हें अपना नाम जुड़वाले के लिए प्रयास करना पड़ा।

2. मतदाता सूची निर्माण प्रक्रिया की जानकारी –

मतदाता सूची निर्माण प्रक्रिया की जानकारी के सम्बन्ध में 64 प्रतिशत महिलाओं ने अपने सकारात्मक उत्तर दिये किन्तु 36 प्रतिशत महिलाएं इसके बारे में अनभिज्ञता जाहिर की, जो निम्न तालिका से स्पष्ट है –

तालिका क्रमांक – 2

क्र.	मतदान सूची के निर्माण की जानकारी	संख्या	प्रतिशत
1	सकारात्मक उत्तर	32	64%
2	नकारात्मक उत्तर	18	36%
	योग	50	100%

मतदाता सूची के नाम जुड़वाने की प्रक्रिया की जानकारी से सम्बन्ध में यह ज्ञात हुआ कि 60 प्रतिशत महिलाओं को इस प्रक्रिया की जानकारी रही, जबकि 40 प्रतिशत महिलाओं को इसकी जानकारी नहीं थी। निश्चित रूप से इन 40 प्रतिशत महिलाओं का नाम प्रक्रिया के तहत, उनके परिवार के सदस्यों ने जुड़वाया होगा। 40 प्रतिशत महिलाओं ने सूची प्रकाशन की जानकारी का होना बताया, जबकि 60 प्रतिशत महिलाएं इसके बारे में अनभिज्ञता जाहिर की।

मतदाता सूची की त्रुटियों के सम्बन्ध में यह जानने का प्रयास किया गया कि सूची में एक ही व्यक्ति के कई बार नाम होते हैं, तो इस बावत 80 प्रतिशत उत्तर नकारात्मक प्राप्त हुये जबकि 20 प्रतिशत उत्तर सकारात्मक। जिसका यह आशस निकलता है कि मतदाता सूची की विश्वसनीयता के प्रति उत्तरदाताओं का एक मत नहीं है। यहां तक कि मृतक व्यक्ति का नाम भी मतदाता सूची में बना रहता है, उसे संशोधित नहीं किया जाता है। यह तथ्य 100 प्रतिशत महिलाओं ने स्वीकार किया। जिससे स्पष्ट होता है कि मतदाता सूची का निर्माण सावधानी पूर्वक एवं निरन्तर नहीं होता, एक सूची का प्रयोग कई निर्वाचनों तक होता रहता है।

साक्षात्कार के समय उत्तरदाताओं से यह भी पाया गया कि मतदाता सूची में अवश्यसक व्यक्तियों का नाम भी जुड़ा होता है, इस बात को सभी

महिलाओं ने स्वीकार किया। यह तथ्य मतदाता सूची के वैधानिकता पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। दूसरी ओर वयस्क मतदाताओं का नाम मतदाता सूची में नहीं होता। निर्वाचन प्रक्रिया मे मतदाता सूची के महत्व को 100 प्रतिशत महिलाओं ने स्वीकार किया है। साथ ही मतदाता सूची को मतदान के लिये निणप्रयक माना है।

इस प्रकार मतदाता सूची के सम्बन्ध में प्राप्त उत्तरों से यह सहज निष्कर्ष निकलता है कि सूची में व्यापक विसंगतियाँ रहीती हैं, जिसे सुधारना सफल निवाचनों के लिए अतिआवश्यक है, जो उपेक्षित है।

मतदान केन्द्र की स्थापना –

मतदान केन्द्रों की स्थापना हेतु चुनाव अधि ाकारी नियुक्त किये जाते हैं। यह चुनाव अधिकारी अपने सहयोगी अन्य शासकीय कर्मचारियों के माध यम से, चुनाव सम्बनधी सारी व्यवस्था पूर्ण करते हैं। इस व्यवस्था के लिए एक मुख्य पीठाशीन अधि ाकारी एवं अन्य सहायक 2 से 4 तक अधिकारी नियुक्त होते हैं, जो मतदान को सफलता पूर्वक सम्पन्न कराते हैं। मतदान केन्द्र की दूरी के लिए यह व्यवस्था की गई है कि 2 किलो मीटर से कम दूरी के बीच मतदान केन्द्र बनाये जायं अर्थात् दो नजदीकी मतदान केन्द्रों के बीच की दूरी 2 किलो मीटर से कम होनी चाहिए।

1. मतदान केन्द्रों की स्थिति – मतदान केन्द्र बनाते समय कुछ मूल–भूत सुविधाओं को आवश्यक रूप से देखा जाता है। जिसमें यह विशेष ध्यान दिया जाता है कि (1) बनाये जाने वाले मतदान केन्द्र में पर्याप्त जह है या नहीं (2) भवन सार्वजनिक रूप से उपयोग करने योग्य है या नहीं। मतदान केन्द्रों पर शान्ति व्यवस्था कायम रखने हेतु पुलिस बल भी तैनात किये जाते हैं। सुविधा की दृष्टि से रीवा नगर में वार्ड के अनुसार मतदान केन्द्र बनाये जाते हैं। वार्ड में उपस्थित जनसंख्या के आधार पर 2 अथवा 3 मतदान केन्द्र हो सकते हैं।

मतदान प्रक्रिया की जानकारी के साथ दूसरा जुड़ा हुआ पहलू मतदान केन्द्र की स्थिति, निर्माण, दूरी आदि है। जिसके सम्बन्ध में उत्तरदाताओं से जानकारी प्राप्त की गई। उनसे प्राप्त अभिमत निम्न तालिका से स्पष्ट है –

तालिका क्रमांक 3

क्र.	मतदाता सूची के निर्माण की जानकारी	संख्या	प्रतिशत
1	सकारात्मक उत्तर	32	64%
2	नकारात्मक उत्तर	18	36%
	योग	50	100%

तालिका से यह स्पष्ट है कि 90 प्रतिशत उत्तरदाता यह स्वीकार करते हैं कि मतदान केन्द्र शासकीय भवन होते हैं जबकि अन्य अस्थाई केन्द्र तथा अशासकीय भवनों की संख्या काफी कम होती है, जिनका प्रतिशत क्रमशः 6 तथा 4 होता है।

2. मतदान केन्द्रों की जनकारी का स्रोत – इन मतदान केन्द्रों की स्थापना की घोषणा चुनाव पूर्व की जाती है, जिसका क्रमांक भी आवंटित किया जाता है। इन केन्द्रों की स्थापना की जानकारी बावत् स्रोतों के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त जानकारी को निम्न तिालिका में प्रदर्शित किया गया है–

तालिका क्रमांक 4

क्र.	मतदान केन्द्रों की जानकारी के स्रोत	संख्या	प्रतिशत
1	पड़ोसी से	12	24%
2	समाचार पत्र	09	18%
3	राजनैतिक दलों के कार्यकर्ता	29	58%
	योग	50	100%

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि 58 प्रतिशत मतदाताओं को उनके मतान केन्द्रों की जानकारी राजनैतिक कार्यकर्ताओं से मिली। इससे यह प्रमाणित होता है कि मतदान केन्द्रों की स्थापना की जानकारी में राजनैतिक कार्यकर्ताओं की भूमिका अधिक होती है। पड़ोस एवं समाचार पत्रों के द्वारा मतदाताओं को अपने मतदान केन्द्रों की जानकारी का प्रतिशत क्रमशः 12 एवं 9 है। जिससे यह बात उद्घाटित होती है कि मतदान केन्द्रों की जानकारी में पड़ोसी की भी सराहनीय भूमिका होती है।

एक भवन में कई मतदान केन्द्रों की स्थापना के सम्बन्ध में पूछे जाने पर 80 प्रतिशत महिलाओं ने इस बात का समर्थन किया, जबकि शेष 20 प्रतिशत महिलाएं इस बात से इन्कार किया। एक भवन में कई मतदान केन्द्रों की स्थापना का विरोध ा प्रमुख रूप से शान्ति, अव्यवस्था, सुचारू मतदान तथा मतदाताओं की असुविधा को ध्यान में रख कर रेखांकित किया गया। एक से अधिक मतदान केन्द्रों को एक ही भवन में केन्द्रित करने में आर्थिक व्यय, पुलिस बल की उपलब्धता तथा प्रशासनिक सहयोग की दृष्टि से समर्थन दिया गया।

3. मतदान केन्द्रों की स्थापना विषयक अभिमत—यह जानने का प्रयास किया गया कि उत्तरदाताओं की दृष्टि में मतदान केन्द्रों की स्थापना का उचित स्थल क्या होना चाहिए ? जिस पर 86 प्रतिशत मतदाताओं ने शासकीय स्थल का समर्थन किया, जो निम्न तालिका से स्पष्ट है –

तालिका क्रमांक 5

क्र.	मतदाताओं द्वारा प्राप्त अभिमत	संख्या	प्रतिशत
1	शासकीय भवन	43	86%
2	अशासकीय भवन	02	04%
3	अस्थाई निर्मित केन्द्र	05	10%
	योग	50	100%

उक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि अधि ासंख्य उत्तरदाता शासकीय भवनों में मतदान केन्द्रों की स्थापना को रेखांकित किया है। अशासकीय भवन एवं अस्थाई निर्मित मतदान केन्द्रों की स्थापना की सम्भावनाओं को अस्वीकार नहीं किया, जेसा कि व्यवहार में देखा जाता है।

मतदान केन्द्रों की स्थापना मतदाताओं के आवास से अधिक दूरी पर न हो, इस बात का सभी उत्तरदाताओं ने समर्थन किया। 64 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आधा किलो मीटर दूरी उपर्युक्त माना, जबकि 36 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस दूरी को एक किलोमीटर तक उचित ठहराया। उपर्युक्त तथ्यों से यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है कि एक किलो मीटर की परिधि में ही सम्बन्धित क्षेत्र के मतदाताओं को मतदान हेतु जाने का प्रबन्ध होना चाहिए। यह दूरी सीमा से अधिक होने पर मतदान प्रभावित होता है।

मतदान भवनों की स्थिति पर सभी उत्तरदाताओं ने कड़ी आपत्ति दर्ज किया। प्रायः वे सभी शासकीय भवन जो मतदान केन्द्रों की स्थापना के लिए चयनित किये जाते हैं, उनमें प्रकाश, मतदाताओं के लिए प्रतीक्षालय एवं मतदान की गोपनीयता आदि का उचित प्रबन्ध नहीं होता है। इसके साथ अधिकांश उत्तरदाताओं ने चुनाव कार्यक्रम में लगे कर्मचारियों के व्यवहार के प्रति असंतोष व्यक्त किया। निश्चित यप से इन दोनों ही समस्याओं के प्रति भावी चुनाव नीति निर्माण में विचार करना न्यायोचित होगा।

मतदान केन्द्रों पर राजनैतिक दलों के अभिकर्ताओं की उपस्थिति के समब्ध में 100 प्रतिशत महिलाओं ने अपने सकारात्मक उत्तर दिये।

मतदान आचरण बावत् उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया जानने पर सभी ने एक मत से दूसरे के नाम पर मतदान करना अपराध माना। इसी तरह

से असामाजिक तथ्वों द्वारा मतदान केन्द्रों पर कब्जा करने की बात की 96 प्रतिशत मतदाताओं ने स्वीकार किया। जबकि शेश 4 प्रतिशत महिलाओं ने इस बात से अनभिज्ञता जतायी।

इस प्रकार संक्षेप में मतदान केन्द्र से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों पर जानकारियों को संग्रहित कर शोध पत्र में प्रस्तुत किया है।

चुनाव कार्यक्रम की घोषणा :–

निर्वाचन प्रक्रिया का प्रारम्भ लोकसभा/विधानसभा या अन्य चुनावों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई अधिसूचना से होता है। यह सूचना ''जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951'' की 14वीं धारा के अन्तर्गत जारी की जाती है। इसे लोकसभा/विधानसभा की अवधि समाप्ति या मध्यावधि चुनाव होने की स्थिति में जारी किया जाता है। इस अधिसूचना के जारी होने के पश्चात् चुनाव आयोग मतदान की तिथि और तत्सम्बन्धी समस्त कार्यक्रम की घोषणा करता है। इस घोषणा में नामजदगी पत्र भरने की अन्तिम तिथि, चुनाव संघर्ष से नाम वापस लेने की अन्तिम तिथि तथा मतदान की तिथि आदि का उल्लेख होता है। चुनाव कार्यक्रम की घोषणा के बाद उम्मीदवार और शासन सभी औपचारिक रूप से चुनाव की तैयारी में जुट जाते हैं।

चुनाव कार्यक्रम के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं से पूछे जाने पर जो अभिमत प्राप्त हुए, उनमें कई तथ्य सामने आते हैं। लोकसभा व विधान सभाओं के चुनाव एक साथ कराने पर, 70 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कठिनाई बातयी, किन्तु 30 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसे उचित बताया।

चुनाव घोषणा पत्र के महत्व पर प्राप्त अभिमत से यह स्पष्ट होता है कि 100 प्रतिशत महिलाओं को प्रलोभित करने का प्रयास किया जाता है। निर्वाचन के सफल संचालन में पुलिस बल की कमी को 90 प्रतिशत महिलाओं ने महसूस किया, जबकि 10 प्रतिशत महिलाओं ने पुलिस बल के महत्व को गम्भीरता पूर्वक नहीं लिया। चुनाव के आर्थिक कारकों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि निर्वाचनों में काले धन का उपयोग होता है। चुनाव में धनराशि के निर्धारण बावत् 88 प्रतिशत महिलाओं ने इस बात का समर्थन किया, जबकि 12 प्रतिशत महिलाओं ने नकारात्मक उत्तर दिये।

नामांकन –

पर्चा दाखिल करना – चुनाव आयोग द्वारा जैसे ही चुनाव कार्यक्रम की घोषणा की जाती है, वैसे ही देश की राजनीतिक गतिविधियां तीव्र हो जती है। चुनाव लड़ने के लिए उम्मीदवार को चुनाव आयोग द्वारा नियुक्त निर्वाचन अधिकारी समक्ष स्वयं या अपने एजेन्ट के माध्यम से नामंकन पत्र प्रस्तुत किया जाता है। नामांकन पत्र में प्रत्येक उम्मीदवार को संविधान (16वां संवैधानिक संशोधन, 1963) द्वारा निर्धारित यह शपथ लेनी हाती है कि ''मैं संवधान के पति निष्ठा रखूँगा और भारत की अखण्डता तथा प्रभुसत्ता को बनाये रखूंगा''। किसी भी उम्मीदवार को अपना नामांकन दखिल करने के लिऐ ऐसे दो मतदाताओं द्वारा प्रस्तावित होना चाहिए, जो उसी निर्वाचन क्षेत्र का मतदाता हो।

प्रत्येक उम्मीदवार को चुनाव के समय जमानत राशि जमा करनी होती है। लोक सभा चुनाव के लिए जमानत की राशि 25000 रुपये और विधान सभा चुनाव के लिए यह राशि 10000 रुपये निर्धारित है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के लिए यह राशि सीमा 12500 रुपये निर्धारित है।

नामांकन पत्रों की जांच और फार्म वापसी –

चुनाव आयोग द्वारा निश्चित किये गये दिन तक, सम्बन्धित चुनाव क्षेत्र के चुनाव अधिकारी द्वारा सभी नामांकन पत्रों की जांच की जाती है। सामान्यतया इस कार्य के लिए नामांकन पत्र प्रस्तुत करने की अन्तिम तिथि के तुरन्त बाद वाला दिन निश्चित किया जाता है। उम्मीदवार स्वयं या उसका एजेन्ट इस दिन चुनाव अधिकारी के समक्ष उपस्थित होते हैं। नामांकन पत्र अपूर्ण होने या सम्बन्धित व्यक्ति के इसी आधार पर, चुनाव लड़ने के आयोगय पाये जाने पर चुनाव अधिकारी द्वारा नामांकन पत्र रद्द कर दिया जाता है। जिन उम्मीदवारों के नामांकन पत्र वैध पाये गये हैं, उनमें से यदि कोई उम्मीदवार अपना नाम वापस लेना चाहे तो वह निर्धारित तिथि तक अपना नाम वापस ले सकता है।

नामांकन के सम्बन्ध में मतदाताओं का जो अभिमत प्राप्त प्राप्त हुआ, उसे प्रस्तुत करने का पूर्ण प्रयास किया गया है। प्रस्तावक के नाम व हसताक्षर गलत होते हैं, इस प्रश्न के उत्तर में सभी महिलाओं ने अपना सकारात्मक उत्तर दिया, इसी प्रकार नामांकन पत्र प्रस्तुत करने में समाज के असरदार लोग कमजोर व्यक्ति पर दबाव डालते हैं, इस बात को 90 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया। दूसरी ओर उत्तरदाताओं की दृष्टि में 96 प्रतिशत अयोग्य व्यक्ति चुनाव कार्य में भाग लेते हैं। नामांकन प्रस्तुत करते समय प्रायः यह देखने को मिलता है कि प्रत्यासी अपना नामांकन पत्र एक से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रसतुत करते हैं, इसे 98 प्रतिशम महिलाओं ने अनुचित माना, जबकि 02 प्रतिशत महिलाओं ने इस बात को उनका राजनैतिक अधिकार बताया। उक्त तथ्य से यह स्पश्ट होता है कि कोई एक प्रत्यासी, एक से अधिक स्थानों से निर्वाचित हो जाता है। उस परिस्थिति में उसे एक ही स्थान से प्रतिनिधित्व करने की पात्रता होती है। रिक्त हई सीट का पुनः निर्वाचन कराना पड़ता है, जिसमें धन और समय दोनों की हानि होती है। साथ हीएक दूसरा व्यक्ति अपना औसर खो देता है। अतः यह तथ्य विचारणीय है।

चुनाव प्रचार –

चुनाव प्रचार के सम्बन्धमें राष्ट्रपति द्वारा 19 जनवरी 1992 को जारी किये गये अध्यादेश के आधार पर लोक सभा / विधान सभा चुनावों में चुनाव पचार की न्यूनतम अवधि 20 दिन से घटाकर 14 दिन कर दी गई है। निर्वाचित होने के लिए प्रत्येक उम्मीदवार और उसका राजनैतिक दल अधिक से अधिक मतदाताओं से सम्पक स्थापित करने और उनका समर्थन प्रापत करने की चेष्टा करता है। अपने इस कार्यक्रम के लिए राजनैतिक दल ''चुनाव घोषणा पत्र'' जारी करते हैं, जिसमें राजनैतिक दल राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और अन्य क्षेत्रों में अपनी नीतियों तथा कार्यक्रमों को स्पष्ट करते हैं। वर्तमान समय में मान्यता प्राप्त राजनैतिक दलों को अपनेविचार जनता के सामने प्रस्तुत करने अपने मतदाताओं से अपील करने के लिए आकाशवाणी तथा दूरदर्शन पर निश्चित समय दिया जाता है।

राजनैतिक दल और उम्मीदवार मतदाताओं को प्रभावित करकने के लिए अन्य अनेक उपायों का सहारा लेते हैं जिसमें प्रमुख यप से पोस्टर, मतदाताओं के नाम अपील, जुलूस तथा रैलियां निकालना और आम सभाओं का आयोजन करना आदि शामिल है। कानून के अनुसार मतदान की तिथि के 48 घण्टे के पूर्व से सार्वजनिक प्रचार–प्रसार, नारेबाजी, जुलूस तथा आम सभायें

आदि बन्द हो जाती हैं। किसी भी उम्मीदवार द्वारा इस नियम का उल्लंघन किये जाने पर चुनाव आयोग आवश्यक कार्यवाही करता है। सार्वजनकि प्रचार बन्द हो जाने की अवधि में मतदाताओं से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने की प्रक्रिया जारी रहती है। चुनाव प्रचार के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के जो अभिमत प्राप्त हैं, उन्हें प्रस्तुत किया गया है।

चुनाव प्रचार में जातिवाद के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे जाने पर, 70 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सकारात्मक उत्तर दिये जबकि 30 प्रतिशत उत्तरदाता इसके प्रति अपना नकारात्मक उत्तर दिये । चुनाव प्रचार में अधिक धन खर्च करने के उत्तर में 80 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस बात को स्वीकार किया, जबकि 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसके प्रति अनभिज्ञता दर्शायी।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि लोकसभा/विधानसभा चुनावों में मुख्य रूप से महिलाओं में जागरूता बढ़ाने के लिए महिलाओं को बढ़–चढ़कर चुनावी प्रक्रिया में भाग लेना चाहिए जिससे समाज के अधिक से अधिक मतदान के प्रति महिलाएं जागरूक हों, जिससे निर्वाचन के जरिये अच्छी सरकारें बन सकें और देश की तरक्की में अपना योगदान दे सकें ।

संदर्भ स्रोत –

1. मुखर्जी, रवीनद्रनाथ : सामाजिक शोध व सांख्यिकी', रंजन प्रकाशन 1986, नई दिल्ली
2. वर्मा, रामसुजान : निर्माण कार्य में लगे मजदूरों में मतदाता जागरूकता रीवा नगर के विशेष संदर्भ में, अप्रकाशित एम.पिल. लघुशोध प्रबन्ध 1995, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा
3. सिंह, एस.डी. : वैज्ञानिक सामाजिक अनुसंधान एवं सर्वेक्षण के मूल तत्व, कमल प्रकाशन इन्दौर, 1988
4. श्रवास्तव, मधूरिका : ''रीवा नर के छात्र–छात्राओं में मतदाता जागरूकता'' अप्रकाशित लघुशोध प्रबन्ध 1995, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा
5. दैनिक जागरण समाचार पत्र
6. आकाशवाणी केन्द्रदीवा से पसारित टेप वार्ता ''ए आकाशवाण है'' प्रसारण दिनांक 23.03.93
7. जिला सांख्यिकीय पुस्तक, जिला रीवाख 1983
8. दैनिक भास्कर समाचार पत्र

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि में श्रीराम

❐ डॉ. वाल्मीकि प्रसाद मिश्र

युग प्रवर्तक गोस्वामी तुलसीदास जी भारतीय समाज के दर्पण माने जाते है। अतः श्रीराम कथा के माध्यम एवं प्रभाव से गोस्वामी तुलसीदास जी जनमानस में सर्वोपरि प्रतिष्ठित हुए, उनके विषय में कहा गया है कि–

तुलसी तुलसी सब कहैं, तुलसी वन की घास।
हुई कृपा जब राम की, तो हो गये तुलसीदास।।

गोस्वामी तुलसी दास जी की प्रमुख रचना श्रीरामचरित मानस है। जिसमें प्रभु श्रीराम का लोक–चरित्र वर्णित है। श्रीराम भारतीय सास्कृतिक चेतना की आत्मा हैं। तुलसी का मानसप्रसंग वैश्विक, सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मर्यादाओं से परिपूर्ण है। लोकमानस में मर्यादायों को चरितार्थ करने के कारण श्रीराम पुरुषो में पुरुषोत्तम हो गये। तुलसी के भक्तिसागर से चैत्रमास के शुक्लपक्ष की नौमी को भगवान् श्रीराम का जब प्राकट्य हुआ तो उस काल का मनोरम एवं हृदयस्पर्शी वर्णन करते हुए श्री तुलसी कहते हैं–

जोग लगन ग्रह बार तिथि, सकल भये अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षयुत, राम जनम सुखमूल।।1
नौमी तिथि मधु मास पुनीता।
शुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता।।
मध्य दिवस अति सीत न घामा।
पावन काल लोक विश्रामा।।
सीतल मंद सुरभि वह बाऊ।
हरषित सुर संतन मन चाऊ।।

तुलसी अपने श्रीराम से परिवार, समाज, प्रजा एवं सेना में नैतिक मूल्यों का पूर्णतः परिपालन कराते हैं। क्योंकि श्री तुलसी के श्रीराम का जन्म ही इसी हेतु हुआ है। तुलसी श्रीराम के प्राकट्य का हेतु बताते हुए कहते हैं–

विप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु , माया गुन गो पार।।2

पुत्र–प्रेम से विह्वल महाराज दशरथ श्रीराम के वनगमन के अवसर पर शिव से प्रार्थना करते हैं कि–

तुम प्रेरक सब के हदय, सो मति रामहि देहु।
वचन मोर तजि रहहिं घर, परिहरि सीलु सनेहु।।3

किन्तु तुलसी के श्रीराम अपने पिता की मनःस्थिति का अनुभव करते हुए भी रघुकुल के वचनधर्म की मर्यादा का पालन स्वयं कर अपने पिता से भी करवाया। संसार के कल्याण हेतु श्रीराम समग्र राज्यवैभव, माया, ममता एवं मोह आदि का परित्याग कर वनगमन किया। ''नाना पुराण निगमागम सम्मत''3 श्रीरामचरितमानस का प्रारम्भ गुरु वंदना, सज्जन–असज्जन के उत्प्रेरक प्रसंगो से होता है। संपूर्ण होते हुए लोक–लीला के अन्तर समग्रदृष्टि का संचार श्रीराम के अद्भुत प्राकट्य, बालशुलभ लीलाओं से होता दिखाई

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (संस्कृत-वेद), शासकीय वेंकट संस्कृत महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

देता है। श्रीराम रावण के मध्य नैतिक–अनैतिक मूल्यों को लेकर ही युद्व की स्थिति निर्मित हुई। जहाँ एक तहफ अंहकारपूर्वक मर्यादाओं का सर्वथा परित्याग एवं दूसरी तरफ मर्यादाओं का पूर्णतः पालन अंहकारमुक्त दिखाई देता है। श्रीराम जी की कृपा से नैतिकता पर आधारित तुलसी द्वारा मर्यादाओं का पालन लक्ष्मण, सुग्रीव, जामवन्त, हनुमान आदि वानरवीरों से भी कराया गया है।

श्रीराम और रावण सत्य–असत्य के उपलक्षण मात्र है। जो समय–समय पर अनेकों रुपों में परिवर्तित होते रहतें है। श्रीराम अंहकार को मिटाते हैं तथा रावण अंहकार का बीजारोपण करता है। जिससे सांसारिक माया, मोह, छल, छद्म, तृष्णा, स्वार्थ आदि का उदय होता है; और यही मानव मात्र के प्रमुख शत्रु हैं। जिनका उन्मूलन करना प्रभु श्रीराम का लक्ष्य बन जाता है। लेकिन मानस में व्याप्त भय का अंत करना सामान्य जनों, अरण्य एवं वन्यजातियों के नैतिक साहस को जागृत कर युद्व को जनयुद्व में बदलकर लोक को विजयश्री से अंलकृत किया।

भारतीय समाज में संस्कृतिक चेतना की स्थापना करने हेतु सभी सुखों का परित्याग कर श्रीराम द्वारा तापस जीवन को श्रेष्ठ माना गया। प्रभु श्रीराम का देवत्व मनुष्यत्व का सर्वोत्तम सोपान है, "आचारः परमों धर्माः" के वे श्रेष्ठतम उदाहरण है। राम ही तुलसी के अभिव्यक्ति कौशल, तथा काव्य–शिल्प है। श्रीराम के ब्रहम एवं विष्णु रुपों को नर रुप में वर्णित करना तुलसी के काव्य कौशल का प्रमाण है।

भारतीय जनमानस में श्रीराम एक आदर्श नायक, पुत्र, भाई, सखा, स्वामी एवं राजा के रुप में प्रतिष्ठित हुए। तुलसी के राम का समग्रजीवन कर्म–सौंदर्य से ओतप्रोत है, रामराज की संकल्पना प्रजा के परस्पर प्रीति का रहा है–

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज काहुहि नहि व्यापा।।
सबा नर करहिं परस्पर प्रीति।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।
अल्प मृत्यु नहिं कवनिव पीरा।
सब सुन्दर सब विरुज सरीरा।।4

चौदह वर्ष वनवास के उपरांत राज्याभिषेक के अवसर पर श्रीराम का नागरिको की सभा में एक आर्दश घोषणा की गई कि–

जौं अनीति कछु भाषौ भाई।
तौं मोहि बरजहु भय विसराई।।5

यही प्रजातांत्रिक आदर्श शासन–पद्धति के लिए औचित्यपूर्ण घोषणा मान्य की गई है। राम की शरण में जो जाता है उसका कल्याण अवश्य होता है। विभीषण राम की कृपा से लंकेश हो जाते है। तुलसी कहते है कि–

जो सम्पति शिव रावनहिं,
दीन्हि दिएं दस माथ।।
सोई सम्पदा विभीषनहिं,
सकुचि दीन्हि रघुनाथ।।6

प्रभु श्रीराम किशोरावस्था में ही गुरु वशिष्ठ से शिक्षा प्राप्तकर उस शिक्षा का प्रयोग विश्वामित्र के साथ यज्ञ की रक्षा करते हुए ऋषि–मुनियों को अभयदान देते हुए राक्षसों का वध किया। कठिन परिस्थियों में भी श्रीराम की वाणी शालीनता का परित्याग नही करती, अपितु शरणागत की रक्षा करती है।

तुलसी के राम अपने से अधिक अपने दास को महत्व देता है– ''राम ते अधिक राम कर दासा'' वे अपने भक्तों के हृदय में सदा विराजमान रहते हैं। कलयुग में जहाँ राम हैं वहीं विश्राम है। राम नाम का जप एवं भजन मुक्ति प्रदान करता है–

रामचन्द्र के भजन बिनु ,जो चह पद निर्वान।
ग्यानवन्त अपि सो नर, पशु बिनु पूँछ विषान।।7

ऐसा माना जाता हैं।

भारतीय समाज में विभिन्न संस्कारों का महत्व श्रृष्टि के आदिकाल से तुलसी का मानस उन सभी संस्कारो से परिपूर्ण है। जिससे ब्रहम रुप श्रीराम आपने भाईयो सहित संस्कारित होते है। पुत्रकामेष्टि, गर्माधानयज्ञ, जातकर्म, नान्दीमुखश्राद्व, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, वेदारम्भ एवं विवाह संस्कारों से राम पूर्णरुप से संस्कारित हुए। श्रीराम के द्वारा संस्कारों की प्रतिष्ठाकर मानवसमाज के लिए तथा मानवीय गुणों का आध ानकर श्रेष्ठ आदर्श स्थापित किया गया है। तुलसीदास के राम की मान्यता है कि –

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी।
बिनहिं बिचार करिअसुभ जानी।।8
बड़े भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा।।9

अत एव ''पाप न करो कर्म करो'' का नारा तुलसी जी कुछ इस प्रकार देते है–

करम प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा।।
काहु न कोउ सुख दुःख कर दाता।
निजकृत करम भोगु सबु भ्राता।।10

तुलसी राम नाम की महिमा का बखान करते हुए कहते हैं कि–

कलियुग जोग न जग्य न ज्ञाना।
एकु अधार राम गुन गाना।।11

इतना ही नहीं श्रीराम तो अपने शत्रुओं के प्रति भी इस तरह उदार हैं कि, दनकी उदारता देखते ही ही बनती है। लकेश रावण का वध करने के पश्चात् श्री राम परिजनों के सम्मुख कहते हैं–

श्रीरामकथा के माध्यम से तुलसीदास यह सिद्व करते है कि परिवार राष्ट्र की एक सशक्त ईकाई है। यदि परिवार माता–पिता, पति–पत्नी, भाई–भाई आदि का परस्पर संबंध आदर्श हो जाए तो समाज स्वतः सुधर जायेगा। ''वसुधैव कुटुम्बकंम्'' की भावना प्रबल हो जायेगी तो राष्ट्र अपने आप सुधर जायेगा। राष्ट्र कल्याणार्थ श्रीरामचरित मानस का प्राकट्य भी रघुनाथगाथा के साथ ''स्वान्तः सुखाय, बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय'' तथा ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः'' की प्रबल भावना से हुआ है। युग–युगान्तर से श्रीराम कथा की अविरलधारा विशिष्ठ कवियों के माध्यम से अनवरत प्रवहमान है। श्रीराम की कृपा से आदिकवि महर्षि वाल्मीकि का रामायण तथा तुलसीदास जी की मानस को भारतीय समाज के जनमानस मे सर्वोपरि स्थान प्राप्त है।

किं करोमि ? क्व गच्छामि ? को मे रक्षां करिष्यति ? की वेदना करुण होकर जब पुकारती है तब उसके समाधान के लिए भगवान श्रीराम की भक्ती को उपाय के रुप में तुलसीदास जी ढूढ़ निकालते हैं, जिसमें शक्तिस्वरूपा जगज्जननी माता सीता का अद्भुत सम्पुट है।

लोककल्याणार्थ लोकमानस में सीता–राम को तुलसी अपनी रचना में प्रतिठित किया। उनके श्री राम अनादि अनन्त अव्यक्त अज्ञात निराकार होते हुए भी अखिलब्रह्माण्ड के नायक हैं। श्रीराम की सम्पूर्ण क्रियाओं में लोककल्याण की भावना निहित है। श्री राम कर्मयोगी हैं उनमें त्याग, पवित्रता, सत्य एवं तपस्या आदि पवित्र भावों का सुन्दर समन्वय है। इस प्रकार तुलसी के श्रीराम अलौकिक होते हुए भी लौकिक हैं। श्रीराम की कथा में विश्व–बन्धुत्व की भावना के साथ विश्वकल्याण का भाव भी सन्निहित है। इस प्रकार के अनेक

विशेषताओं के कारण आधुनिक सन्दर्भ में भी तुलसी के श्रीराम अधिकाधिक प्रासंगिक हैं।

सन्दर्भ

1. रामचरित मानस बा0का0 दोहा 190 चौपाई 1–3
2. रामचरित मानस का0 2 दोहा 44
3. रामचरित मानस का0 1 दोहा 01
4. रामचरित मानस बा0का0 दोहा 192
5. रामचरित मानस का0 दोहा
6. रामचरित मानस सु0का0 दोहा 49 (ख)
7. रामचरित मानस लं0का0 दोहा 78 (क)
8. रामचरित मानस बा0का0 दोहा 77/3
9. रामचरित मानस उ0का0 दोहा 43/7
10. रामचरित मानस अ0का0 दोहा 219/4
11. रामचरित मानस उ0का0 दोहा 103/5

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

कोरिया जिला एवं पर्यटन विकास की सम्भावनाएँ

❐ डॉ. श्रीमती आरती तिवारी*
❐ कु. रजनी सेठिया**

पर्यटन वर्तमान में एक उभरता हुआ उद्योगा हैं। किसी भी देश केा आर्थिका विकास के लिए पर्यटन आधुनिक समय की उपयोगि विधि हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव समाज के भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक व्यवस्था पर पड़ता हैं। जलवायु, भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृति, आर्थिक, राजनीति वैषम्यता एवं विविधता के आकर्षण से पर्यटक एक स्थान से अन्यत्र भ्रमण करता है। इससे वह उस क्षेत्र के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। विश्व के सभी देशों की अर्थव्यवस्था में पर्यटन का विस्तार नई-नई रोजगार व्यवस्थाओं को जन्म देता है। यह एक विकसित होने वाला उद्योगा हैं। पर्यटन के अंश बाजार उपलब्ध होता है। तथा गुणक व संचित प्रभावो के परिणाम स्वरूप समाज का प्रत्येक वर्ग लाभान्वित होता है।

किसी भी राष्ट्र के लिए पर्यटन उद्योग की अलग ही महत्त्व होती हैं। औद्योगिका विकास ने जहाँ पर्यावरण असंतुलन को जन्म दिया हैं, पर्यटन की एक मात्र ऐसाा उद्योग है जो पर्यावरण को छति पहुचाए बिना राष्ट्र के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता हैं। पर्यटन को बिना चिमनी व धुआँ का उद्योग बिना ''कक्षा की शिक्षा'' तथा बिना कानून निर्माण के ''एकता तथा सौहार्द'' का उद्योग कहा जाता है। यह एक ऐसा उद्योग है जिसमे न तो अधिक पूँजी निवेश की आवश्यकता होती है न ही पर्यावरण असंतुलन उत्पन्न होता है। यह यहाँ एक ओर नये-नये रोजगार अवसर पैदा करता हैं वही दूसरी ओर लघु एवं कुटी उद्योग के यप में वस्तकारी, हथकरघा तथा कलात्मक वस्तुओं से संबंध उद्योगों को विकसित करता है। इसमें एक ओर जहाँ स्थानीय कौशल को प्रोत्साहन मिलता हैं वही सांस्कृतिक विकास करता हैं, साथ ही परिवहन व संचार के साधनों के विस्तार की सम्भावनाए विद्यमान रहती हैं। पर्यटन उद्योग की खासियत यह है कि संसाधनों के कम उपयोग तथा बिना निर्यात किये ही विदेशी मुद्रा का अर्जन किया जा सकता हैं तथा राष्ट्र के अन्दर पर्यटन से आय भी प्राप्त की जा सकती है। यह कहना अतिश्योक्ति पूर्ण न होगा कि ''राष्ट्रीय एकता तथा अन्तराष्ट्रीय सदभाव एवं मैत्री'' को बढ़ावा पर्यटन उद्योग के साथ ही सम्भव हैं।

छत्तीसगढ़ राज्य प्रकृति की गोद में बसा होने के कारण नैसर्गिक सौन्दर्य से भरपूर है प्राचीन सम्राज्यों एवं राज्यो का केन्द्र बिन्दु होने के कारण यह राज्य अपने ऐतिहासिक दर्शनीय स्थलो से परिपूर्ण हैं। धार्मिक सम्प्रदायों की उत्पत्ति एवं प्रचार स्थली होने के कारण यहाँ अनेक धार्मिक तीर्थ स्थल हैं। खनिज संसाधनों की प्रचुरता के कारण राज्य में अनेक प्रकार के उद्योगों का विकास हुआ हैं। राज्य के अनेक नगर वाणिज्यिक और औद्योगिक नगर के रूप में विकसित हुए। यहाँ की सभ्यता, संस्कृति

* प्राचार्य/प्राध्यापक (राजनीतिशास्त्र), शासकीय लाहिड़ी महाविद्यालय, चिरमिरी, जिला-कोरिया (छ.ग.)
** सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र), शासकीय लाहिड़ी महाविद्याय, चिरमिरी, जिला-कोरिया (छ.ग.)

रीति-रिवाज, मेले, त्योहार, वेशभूषा, भाषा, नदियाँ, गुफाएँ, धार्मिक एवं ऐतिहासिक, प्राकृतिक रमणीय स्थल, राष्ट्रीय उद्यान इमारते, विभिन्न प्रजातियों के वन्य जीव, आदि पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। यहाँ की जनजातीय संस्कृति भी पर्यटको को विशेष रूप से आकर्षित करती हें। छ. ग को प्रकृतिक वरदान प्राप्त हैं जिस राज्य के पास विपुल प्राकृतिक सम्पदा तथा नैसर्गिक सौन्दर्य मौजूद हैं। अतः यहा पर्यटन की भी सम्भवनाएँ असीम हैं।

राजिम, डोगरगढ़ रतनपुर चम्पारण्य, सिरपुर, आरंग शिवरीनारायण मलहार, भोरमदेव, खैरागढ़, गिरोधपुरी, छत्तीसगढ़ के शिमला के नाम से विश्वख्यात मैनपाट मुख्य पर्यटन स्थल हैं। प्राकृतिक तौर पर छोटे जलप्रपात बहुत हैं पर सबसे प्रसिद्ध हैं, चित्रकुट जलप्रपात तथा कोरिया जिले में अमृतधारा जलप्रपात,। यहाँ की कुदुमसर की गुफा, कवडा पहाड़ की गुफा, कैलाश गुफा, दण्डक गुफा, देवगिरी की गुफा, गुप्तेश्वर गुफा प्रसिद्ध है। औद्योगिक नगर भिलाई स्टील प्लाअ के लिए प्रसिद्ध हैं।

छत्तीसगढ़ का कोरिया जिला मुख्यत; कोयला उत्पादक क्षेत्र हैं यहाँ पर्यटन की असीम सम्भावनाएँ हैं। अमृतधारा जल प्रपात, चिताझोर पोड़ी में जगन्नाथ मन्दिर, चनवारीडांड में माँ महामाया का भव्य मन्दिर, गौरघाट, पिकनिक स्थल प्रसिद्ध हैं। प्राचीन समय से ही अपने विभिन्न सांस्कृतिक ऐतिहासिक पुरात्तव तथा नैसर्गिक सुन्दरता को समेटे हुए इस क्षेत्र में पर्यटन की असीम सम्भावनाएँ हैं। यहाँ कई नदियों का उदगम स्थल भी हैं। कोरिया जिला का अमृतधारा जल प्रपात वर्तमान समय में अपनी प्राकृतिक सुन्दरता तथा पिकनिक स्थल के लिए लोकप्रिया हो रहा हैं। यहाँ हसदो नदी बहरामपुर की पहाड़ी से गिरकर जल प्रपात का निर्माण करती है। इस जल प्रपाता का जल स्वास्थ्य वर्धक होने के कारण इसका नाम अमृतधारा जल प्रपात पड़ा।

चिरमिरी कोयला क्षेत्र अपने कोयले उत्पादन के लिए क्षेत्र में अग्रणी हैं वही यहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता भी लोगों को मोह लेती हैं।, पहाड़ी के नीचे रेल्वे स्टेशन है। जगह-जगह रिसता पानी झरने जैसा दिखाई देता हैं इस क्षेत्र में कालरी प्रबंधन तथा कालरी में सेवारत कर्मचारियों अधिकारियों की भूमिका व स्थानीय सहयोगा से चितांझोर पाड़ी में उत्कृष्ट नमूना उड़ीसा में पुरी मन्दिर की तरह जगन्नाथ मन्दिर बनाया गया है। जिसकी पहचान छ.ग. के सबसे ऊचें मन्दिर के रूप में हैं, चिरमिरी से लगा खड़गावं में चनवारीडांड ने माँ महामाया के भव्य मन्दिर काा निर्माण इसा क्षेत्र की विशिष्ट पहचान है। मुख्य द्वार से घुसते ही यहाँ की उत्कृष्ट स्थापत्य कला का आभास होता है, दोनों नवरात्रि में यहाँ भक्तो की आपार भीड़ लगती हैं।

इस प्रकार कोरिया जिला में पर्यटन की महत्त्वपूर्ण सम्भावना है, जिससे विकास के पहल की जरूरत है। कोयला उत्पादन क्षेत्र होने के साथ पर्यटन के विकास से यहाँ रोजगार के नये अवसर उपलब्ध होगे लोगों को क्षेत्र में ही रोजगार मिलेगा। स्थानीय कौशल को बढ़ावा मिलेगा साथ ही इस क्षेत्र के आदिवासी संस्कृति का विकास होगा। इस दिशा में आज तक किए राजनैतिक तथा प्रशासनिक प्रयास नाकाफी रहे। माननीय मुख्यमन्त्री डॉ. रमन सिंह जी ने अपने चिरमिरी दौरे में कोरिया तथा चिरमिरी क्षेत्र में पर्यटन को बढ़ावा देनेा की बात कही हैं। अतः यहा पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए राजनीति तथा प्रशासनिक प्रयास की आवश्यकता हैं।

आज पर्यटको केा दृष्टिकोण में बदलाव आया है। आजा पर्यटन आरामाा देह होटलों में रहने के बजाय प्रकृति के समीप रहकर प्राकृति सुन्दरता का आनन्द प्राप्त करना चाहता हैं। ऐसे पर्यटको को आकर्षित करने के प्राकृतिक वातावरण का विकास करना आवश्यक है। पर्यटन उद्योग अभी विदेशी तथा स्वदेशी पर्यटकों में उच्च वर्ग को आकर्षित करता रहा है। यदि पर्यटन स्थलों में आवास मनोरंजन, परिवहन आदि की सुविधाए सस्ती एवं सुलभ हो जाए तो स्वदेशी पर्यटकोां का निम्न तथा माध्यम वर्ग भी पर्यटन सुविधाओं का लाभ प्राप्त कर सकेगा। रोजगार के अवसरो के विस्तार हेतु सरकार द्वारा स्थानीय लघु कुटीर उद्योग के

लिए आवश्यक सुविधाए उपलब्ध करनी होगी इससे क्षेत्रीय बाजार को भी फायदा होंगा।

पर्यटक हमारा मेहमान होता है और हमारी संस्कृति सदैव अतिथि सत्कार को सर्वोपरि मानती हैं। इसलिए पर्यटकों के प्रति न केवल सद्व्यवहार किया जाए बल्कि सेवा भाव होना चाहिए ताकि पर्यटक बार-बार उस क्षेत्र में आने की इच्छा करें और हमारी संस्कृति की अधिका छाप के चिन्ह उस पर पड़ सके। कही अन्यत्र पर्यटन करने पर उसे उस क्षेत्र में किये पर्यटन को याद आए।

चूकि पर्यटन अर्थ व्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण उद्योग साबित हो सकता है इसीलिए सभी राज्यों से पर्यटन को बढ़ावा देने की होड़ लगी हुई हैं। बड़े-बड़े अभिनेताओं, खिलाड़ियों चर्चित व्यक्तियों को ब्रांउ एम्बेसउर बना कर पर्यटकों को अपनो राज्य में पर्यटन के लिए आकर्षित किया जा रहा है। छत्तीसगढ़ राज्य में पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए प्रयास की आवश्यकता हैं। वर्तमान समय में पर्यटन अर्थव्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण उद्योग साबित हो सकता है। अतः इस ओर सरकार को रचानात्मक प्रयास करने होगे। अगर पर्यटन से राज्य के विकास को गति देनी है तो अधिकधिक पर्यटन केन्द्रो के विकास के साथ पर्यटको की सुविधाओं पर विशेष ध्यान देना होगा। पर्यटन बिना ''चिमनी और धुआ'' के उद्योग के रूप में सुविख्यात है। तो क्यो न इसका राज्य के अर्थिक विकास में अधिकाधिका उपयोग किया जाए।

सन्दर्भ—

1. पर्यटन भूगोल
2. योजना
3. छत्तीसगढ़ सामान्य ज्ञान
4. छत्तीसगढ़ सामान्य ज्ञान
5. समाचार पत्र पत्रिका

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

भवन निवेश की प्राचीनता और महत्ता

❒ डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी*
❒ डॉ. कृष्णा मिश्रा**

शोध सारांश

वैदिक आर्य लोगों का समाज कृषिबल समाज था, जो एक निश्चित स्थान पर अपनी बस्तियाँ बनाकर पशुपालन तथा कृषिकर्म में सतत् निरत रहता था। आर्य लोगों का जीवन अधिकतर ग्राम्य था, परन्तु नागरिक जीवन की सत्ता के प्रमाणों की भी कमी नहीं है। वेदों में ग्रामों तथा जंगलों में और वहाँ उगने वाले पौधों तथा रहने वाले जानवरों में परस्पर विभेद दिखलाया गया है। देश भर में ग्राम फैले हुए थे, कुछ ग्राम के नजदीक होते, कुछ दूर, परंतु वे आपस में सड़कों (रथ्या) के द्वारा जुड़े रहते थे। 'रथ्या' का अभिप्राय पगडंडियों से नहीं, सड़कों से है। सड़कें माल लदी गाड़ियों तथा रथों के आवागमन के लिए बहुत चौड़ी हुआ करती थीं। गाँव में केवल मनुष्य ही नहीं रहते, बल्कि गाय, बैल, भैंस, बकरी तथा भेड़ों के झुण्ड और रखवाली करने वाले कुत्ते भी रहते थे। कृषिबल समाज होने के कारण आर्यों की जीविका-प्रधान साधन कृषिकर्म तथा पशुपालन था। सबेरा होते ही गाएँ शाला (गोशाला) से चारागाह (गोष्ठ) में चरने के लिए गोपाल की संरक्षता में भेज दी जाती थीं। जहाँ वे दिन भर चरती थीं और सायंकाल के समय वे गाँव में लौटती थीं। गायों के दुहने का काम गृहपति की पुत्री के जिम्मे रहता था, जो इसी कारण 'दुहिता' (दुहने वाली) कहलाती थी। सायंकाल में अपने दुध-मुंहों बछड़ों के लिए धेनुओं का रंभाना वैदिक आर्यों के कानों में इतना सुखद प्रतीत होता था कि उन्होंने इन्द्र के बुलाने के लिए प्रयुक्त अपनी प्रार्थनामय वाणी की उनसे तुलना की है।[1] जब सायंकाल बछड़े रस्सियों से खोल दिये जाते[2] और वे अपनी माताओं के पास दौड़ जाते थे, तब वैदिक गृहपति की दुहिता अपने कोमल हाथों से गृहस्थी के लिए दूध दुहती थी और घरघों-घरघों की आवाज से वह शाला गूँज उठती थी, तब उस वैदिक काल में सुलभ सार्वत्रिक मनोरम दृश्य की स्मृति आज भी हमारे शरीर को पुलकित कर देती है।

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह (दरबार) महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, एम.ए., एम.फिल., पी-एच.डी. (संस्कृत), शासकीय ठाकुर रणमत सिंह (दरबार) महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

वैदिक काल में नगरों की सत्ता के विषय में पर्याप्त मतभेद है। वैदिक समाज प्रधानतया ग्राम्य समाज था अवश्य; परन्तु नागरिक जीवन की छटा का एकान्त अभाव उस समय मानने के लिए हम तैयार नहीं। 'नगर' शब्द स्वतन्त्र रूप से पीछे अरण्यक[3] में मिलता है, परन्तु ब्राह्मणकाल में भी 'नगरी जानश्रौतेय' (जनश्रुति की सन्तान) के व्यक्तिवाचक नाम में यह उपलब्ध होता है[4]। इसी प्रसंग में 'पुर्' शब्द के अर्थ को समझ लेना जरूरी है। रामायण काल में 'पुर्' या 'पुर' प्रत्यक्ष रूप से नगर का ही बोधक प्रतीत होता है, परन्तु वैदिक काल में यह प्रयोग सार्वत्रिक था या नहीं? यह जानना कठिन है। 'पुर' से अभिप्राय 'किला' दिया जाता है जिसे वेदकालीन राजाओं ने अपने निवास-स्थान को शत्रुओं से बचाने के लिए बना रखा था। बड़े-बड़े गाँवों में किलाबन्दी की जाती थी। पुर बहुत विशाल हुआ करते थे, क्योंकि एक मन्त्र में[5] इसे विस्तृत तथा उर्वी (विशाल) बतलाया गया है। किले पत्थर के बनाये जाते थे[6] (अश्मन्मयी)। लोहे के बने (आयसी) किलों को इन्द्र के द्वारा ध्वस्त किये जाने का उल्लेख ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में किया गया है[7]। इन पुरों को गोमती[8] (गो-समन्वित) कहने से प्रतीत होता है कि इसमें मनुष्यों के अतिरिक्त गाएँ भी रहा करती थीं। दस्युओं के पुरों के लिए 'शारदी' (शरत्कालीन) शब्द का व्यवहार सूचित करता है कि वे लोग आर्यों से यु में अपनी रक्षा के लिए शरत्काल में इनमें निवास करते थे। सौ दीवाल वाले (शतभुज) किलों का निर्देश ऋग्वेद के दो स्थलों पर किया गया है।[9] आर्य और दास सरदार अपने प्रबल शत्रुओं से रक्षा करने के उद्देश्य से अनेकों किलों की रचना भिन्न-भिन्न स्थानों पर किया करते थे।[10] पिप्रु, चमुमुरि, घुनादि दासजातीय सरदारों के विपुल पुरों के उल्लेख करने के अतिरिक्त ऋग्वेद ने स्पष्टतः प्रतापी दासराज शम्बर के 90, 99 या 100 किलो के इन्द्र के द्वारा ध्वस्त किये जाने का वर्णन किया है। पिछली संहिताओं और ब्राह्मणों ने किलों पर शत्रुओं द्वारा घेरा डालने की बात लिखी है। ऋग्वेद ने इस कार्य में अग्नि के प्रयोग करने का उल्लेख किया है। इस वर्णन से प्रतीत होता है कि वैदिक आर्यों तथा दासों ने आत्मरक्षा के लिए किलों का निर्माण पत्थर आदि कड़े और टिकाऊ साधनों से किया था।

वैदिक ग्रन्थों में 'पुर्' तथा 'पुर' दोनों शब्द मिले रहते हैं, परन्तु दोनों के अर्थ में तनिक पार्थक्य सा प्रतीत होता है। त्रिपुर[11] तथा महापुर[12] शब्द निःसन्देह किसी बड़े निवासस्थान के लिए प्रयुक्त किये गये हैं। 'त्रिपुर' का संकेत उस शहर से जान पड़ता है जिसमें किलाबन्दी की तीन कतारें खड़ी की गयी थीं; 'महापुर' तो निश्चय ही किसी वृहत् आकार वाले, किलाबन्दी किये गये नगर को बतलाता है। ये शब्द उस काल में प्रयुक्त किये गये हैं जब आर्य लोग बड़ी जातियों की प्रधान राजधानियों से परिचित हो चले थे। इस युग में वे काम्पिल (पाञ्चालों की राजधानी), आसन्दीवन्त (कुरु राजधानी) तथा कौशाम्बी नगरियों से भली-भाँति परिचित हो गये थे। 'एकादशद्वारं पुरं' तथा 'नवद्वारं पुरं' का औपनिषद उल्लेख इसी सिद्धान्त को पुष्ट कर रहा है। इन शब्दों में शरीर की उपमा नौ द्वार वाले या ग्यारह द्वार वाले पुर से दी गयी है, परन्तु जब तक आर्यों ने इतने दरवाजा वाले बड़े नगरों को न देखा होगा, तब तक ऐसा उपमा के प्रयोग करने का अवसर ही न आया होगा। उपमा का प्रयोग वास्तविक आधार से विरहित नहीं हो सकता। प्राचीन काल में बड़े नगरों में 4, 8, 12 या चार के द्वारा विभाज्य संख्या वाले मुख्य द्वारा हुआ करते थे, जो एक-दूसरे के सड़कों के द्वारा मिले रहते थे। इन चारों नगरद्वारों के एकत्र मिलने का स्थान 'चतुष्पथ' (चौक) कहलाता था। उपनिषत्काल में ऐसे पुरों की सत्ता सर्वतोभावेन विद्यमान थी जिनके नमूने पर शरीर की समता अधिक दरवाजे वाले पुरों से की गयी है।

नगर का प्रयोग आजकल साधारण रीति से बड़े-बड़े शहरों के लिए किया जाता है, परन्तु महाभारत-काल में इसका मुख्य अभिप्राय राज्य की राजधानी से ही था। और यह विशिष्ट अर्थ प्राचीनकाल से चला आता प्रतीत होता है। आरण्यक ग्रंथ में 'नगर' शब्द की उपलब्धि से

यह अनुमान लगाना कि संहिताकाल में नगरों का अभाव था सुसंगत नहीं प्रतीत होता। जब जंगल में रहने वाले (आरण्यक) ब्राह्मणों के हृदय में भी नगरों के लिए पक्षपात था, तब तो निश्चय ही यह प्राचीन संस्था जान पड़ती है। व्यक्तिवाचक नाम में 'नगरिन्' शब्द का ब्राह्मण-ग्रंथ में किया गया उल्लेख इस बात का प्रत्यक्ष साक्षी है कि ब्राह्मण युग में नगर राजकीय राजधानी या कम-से-कम बड़े शहर की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। राजाओं ने अपने तथा राजकर्म में सहायक 'वीरों' अथवा 'रानियों' के उपयुक्त बड़े-बड़े मकानों को बनाकर नगर को सुसज्जित किया था। राजा के लिए अपना विशिष्ट महल हुआ करता था जिसमें अनेक खम्भे हुआ करते थे। ऋग्वेद में राजा वरुण के बृहदाकार प्रासादों का वर्णन स्पष्ट शब्दों में किया गया है। राजा वरुण का महल (सदस् तथा गृह) बहुत ही बड़ा विशालकाय प्रतीत होता है; क्या उसमें हजार खम्भे (असहस्रस्थूल) लगे थे।[13] और वह सहस्रद्वारों से अलंकृत किया गया था।[14] यह कल्पना निराधार नहीं हो सकती है। वैदिक राजाओं के महल भी इस प्रकार लम्बे-चौड़े हुआ करते थे। ऐसे महलों के वास्ते 'हर्म्य' शब्द प्रयुक्त किया गया है। ऋग्वेद[15] ने महल की अटारी पर खड़ेहोने वाले (हर्म्येष्ठा) राजा का उल्लेख किया है, जो सम्भवतः पिछले राजाओं के समान अपने महल के झरोखे से अपनी प्रजाओं का दर्शन दिया करता था। 'प्रासाद' शब्द तो अवान्तर-वैदिक काल के ग्रंथों में मिलता है; परन्तु राजमहल की विशिष्टता की पर्याप्तसूचना ब्राह्मण-ग्रंथों में मिलती है। शतपथ[16] में उल्लिखित 'एकवेशमन्' (प्रधान गृह) शब्द से प्रकट होता है कि राजा का महल साधारण लोगों के घरों की अपेक्षा अधिक ऊँचा, भड़कीला तथा प्रभावशाली हुआ करता था। इतने स्पष्ट प्रमाणों के रहते यह अनुमान करना कि वैदिक काल में बड़े-बड़े नगरों की सत्ता नहीं थी, संगत नहीं प्रतीत होता। वैदिक युग में ग्राम्य जीवन की सादगी के साथ-साथ नगर जीवन की मनोरम आभा हमारे विस्मय-मिश्रित आनन्दोल्लास की जननी है।

वैदिक ग्राम आवश्यक सामग्रियों से परिपूर्ण रहता था। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे अन्य ग्रामों की किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं थी। ग्राम के निवासी आर्य लोग अन्नादि भोज्य-पदार्थ, कृषि-कर्म से तथा दूध, घी, दही आदि पदार्थ पशुपालन से उत्पन्न करते थे। गाँवों में भेड़ें तथा बकरियाँ पाली जाती थीं जिनके ऊन के कम्बल जाड़े में शीत-निवारण के लिए ओढ़े जाते थे। रुई की पैदावार भी खूब होती थी, रुई के सूत से बढ़ियाँ-से-बढ़ियाँ कपड़े बुने जाते थे। बुनने का काम अधिकतर स्त्रियों के ही सुपुर्द रहता था।[17] प्रेममयी माता अपने पुत्र के लिए कपड़ा बुनकर पहनाया करती थीं।[18] बढ़ई लोग युद्ध यात्रा के तथा मनोविनोद के प्रधान सहायक रथ बनाते थे, तथा आर्यों की गृहस्थी की उपयोगी काठ की चीजें तैयार करने में लगे रहते थे। लोहार (कार्मार) हल तथा फाल की तैयारी में व्यस्त रहता था। कुम्हार (कुलाल) कलश, कुम्भ, उखा (रसोई का बर्तन) आदि मिट्टी की चीजें बनाता था। पानी तथा मधु रखने के लिए कुछ लोग चाम (अजिन) को साफ करके उससे बड़े-बड़े बर्तन बनाते थे जो 'दृति' कहे जाते थे। ऐसे लोगों का नाम चर्मन्न[19] दिया गया है। प्रत्येक ग्राम में हजाम[20] होते थे जो आर्य लोगों की हजामत बनाया करते थे। इन अत्यावश्यक पेशावाले लोगों के सिवाय दवा देकर रोगों को दूर करने वाले वैद्यों[21] का उल्लेख अनेक स्थलों पर मिलता है। एक मंत्र में ऋषि ने हँसी में कहा है कि वैद्य लोग बीमार की ही खोज में लगे रहते हैं—यह कथन उससमय सत्य भले ही न हो, परन्तु आजकल के वैज्ञानिक युग में तो यह नितान्त सत्य है। वैदिक काल में आयुर्वेद में जितनी उन्नति कर ली थी, वह आजकल के युग के लिए भी निःसंदेह आश्चर्यजनक है।

वैदिक ग्रामों में जीवन को रसमय बनाने वाले साधनों की कमी न थी। सामवेद इस बात का प्रधान साक्षी है कि उस समय आर्य लोग संगीत विद्या से सर्वथा परिचित थे। सोमयाग के अनुष्ठान के अवसर पर वैदिक ऋषियों के कलकण्ठ से निकला हुआ सामगान मण्डप

भर में गूँज उठता था, तथा वायुमण्डल को मनोरम स्वरलहरी से संगीतमय बनाता हुआ प्रस्तुत देवता को प्रसन्न करने में सर्वथा समर्थ बनाता था। ऋग्वेद के मण्डलों में कथनोपकथन से संवलित अनेक सूक्त उपलब्ध होते हैं जिन्हें 'संवादसूक्त' कहते हैं। जर्मन विद्वान् डॉ. श्रोयदेर की सम्मति में ये वस्तुतः नाटकीय संवाद हैं जिनका यज्ञों के अवसर पर आवश्यक सामग्री जुटा कर सचमुच अभिनय किया जाता था। इस प्रकार वैदिक ग्राम जीवन की आवश्यक सामग्रियों के लिए किसी दूसरे पर अवलम्बित न रहकर पूर्णतया स्वावलम्बी था।

वैदिक मंत्रों में घर के अर्थ को सूचित करने वाले गृह, आयतन, पस्त्या, वास्तु हर्म्य, दुरोण आदि अनेक शब्द उपलब्ध होते हैं जो गृह की विशिष्टता को लक्ष्य कर प्रयुक्त किये गये हैं। चारों ओर दीवालों से घिरे रहने के कारण 'आयतन' कहलाता है, दरवाजा होने के कारण उसे 'दुरोण' के नाम से पुकारते थे। निवास स्थान के अर्थ में वास्तु तथा पस्त्या का प्रयोग किया जाता था। 'सुवास्तु' तथा 'वास्तोरुपति' शब्दों में वास्तु घर बनाने के स्थान को भी लक्षित करता है जो इस शब्द का कालान्तर में गृहीत अर्थ है। इन घरों में वैदिक आर्यों के कुटुम्ब रहते थे और रात के समय गायें तथा भेड़ें भी रहती थीं। घरों में बहुत से कमरे हुआ करते थे, तथा आने-जाने के लिए दरवाजे (द्वार) भी बने रहते थे, जिनके कारण घर की ही 'दुरोण' संज्ञा होती थी। आर्यों के रहने के निर्मित्त गृहों के अतिरिक्त राजाओं के महल, सभी के भवन एवं अध्यापन कार्य के लिए आचार्यों के परिषद के भवनों की स्वतंत्र स्थिति तथा विशिष्ट रचना के द्योतक अनेक निर्देश मंत्रों में पाये जाते हैं।

घरों को बनाने के लिए बाँस, मिट्टी, लकड़ी-पत्थर और पके हुए ईंट प्रधान समान थे। अथर्ववेद के दो सूक्तों[22] में गृह-निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है, परन्तु इन मन्त्रों में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों की दुर्ज्ञेयता के कारण रचना-पद्धति का यथार्थ विवेचन करना कठिन प्रतीत होता है, तथापि वैदिक गृहों की विशिष्टताओं से हम भलीभाँति परिचित हो जाते हैं। वैदिककालीन गृहों की विशिष्टता इस प्रकार है—

(1) घर बनाने के लिए लकड़ी के खम्भे (उपमित) गाड़े जाते थे, जिन पर सीधी या आड़ी थरने (प्रतिमित और परिमित) रखी जाती थीं। इन धरनों के ऊपर का तल पाट दिया जाता था। इन्हीं पर 'अक्षु' रखा जाता था। बाँस के टुकड़े काटकर छाजन बनाने का काम लिया जाता था। इन टुकड़ों के ऊपर का छत पाट दिया जाता था। इन्हीं को 'अक्षु' कहा जाता था। अक्षु के (सहस्र-चक्षु) हजार आँखों वाला कहने का अभिप्राय यही जान पड़ता है कि इनमें बहुत से छेद धूम आदि के निकलने के लिए हुआ करते थे। आजकल की भाषा में 'अक्षु' को पाटन कह सकते हैं। इनके ऊपर छाजन (छदिः) के लिए 'पलद' तथा 'तृण' (घास-फूंस) रखे जाते थे। इसके अनन्तर पूरे ठाट को तरह-तरह की रस्सियों से बाँध दिया जाता था जिसे 'नहन','प्राणाह', 'संदंश', 'परिष्वञ्जल्य' नामों से पुकारते थे। इस प्रकार के घरों में बाँस और घास-फूंस ही का प्रयोग किया जाता था; दूसरे प्रकार के घरों में लकड़ी का विशेष उपयोग किया जाता था। लकड़ी के मकानों में खम्भों (स्कन्ध, स्थाणु, स्थूणा) की बहुलता एक विशिष्ट चीज थी। वैदिक काल में राजमहलों में हजार खम्भे तक होते थे, तथा इतने विशाल प्रासाद में आने-जाने के लिए हजार दरवाजे तक बनाये जाते थे। मिट्टी के गृह (मृण्ययं गृहम्) भी बनाये जाते, तथा पत्थरों और ईंटों का भी उपयोग कर वैदिक आर्य लोग विविध आकार के लम्बे-चौड़े मकान बनाने में कभी नहीं चूकते थे।

वैदिक घरों में आवश्यकतानुसार अलग-अलग कमरे हुआ करते थे। इस प्रसंग में हविर्धान; अग्निशाला, पत्नीनं सदनम् तथा सदस्—इन चार शब्दों का उल्लेख मिलता है, जो यज्ञ के प्रसंग में मुख्यतया निर्दिष्ट होने पर भी साधारण घरों के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं। इससे प्रतीत होता है कि उस काल में घरों के चार विभाग हुआ करते थे—(1) अग्निशाला—वह कमरा

जिसमें अग्नि जलाई जाती तथा विभिन्न अग्नि-कुण्डों में देवताओं के लिए होम किया जाता था।

(2) **हविर्धान**—भाण्डार गृह, जिसमें घर गृह, जिसमें घर गृहस्थी के नित्य खर्च तथा यज्ञ याग की चीजें एकत्र रखी जाती थी। (3) पत्नीनां सदनम्—अन्तःपुर जनाना। यह बहुत ही भीतर हुआ करता था, जिनमें स्त्रियाँ स्वच्छन्दतापूर्वक अन्य घरवालों की आँख से ओझल होकर रह सकती थी।[23] दूसरे कमरों में आने-जाने में स्त्रियों के लिए कोई रुकावट न थीं, परन्तु बाहर जाने के समय विवाहित स्त्रियाँ चादर या दुपट्टे से अपने शरीर को ढंक लिया करती थीं।[24]

(4) **सदस्**—बैठने का स्थान; बाहरी दालान जिसमें पुरुषावृन्द एकत्र होकर सोते, बैठते या बातचीत किया करते थे। इनके कमरों के सिवाय पशुओं के रहने के भी अलग कमरे होते थे, जो 'शाला' या 'गोत्र' कहे जाते थे। उत्सव तथा यज्ञों में आने वाले अतिथियों और निमन्त्रित व्यक्तियों, विशेषतः ब्राह्मणों के रहने के लिए भी अलग घर होता था जो 'आवसथ' में यात्रियों के रहने तथा आराम करने का पूरा प्रबन्ध रखा जाता था। इसका विस्तृत वर्णन सूत्रग्रन्थों[25] में दिया गया है। ऋग्वेद[26] के एक मंत्र के सायणभाष्य के आधार पर उस समय घरों में तीन आंगन मा खण्ड हुआ करते थे। इस मंत्र में 'त्रिधातु'[27] का अर्थ सायण ने 'त्रिभूमिकम्' किया है। इससे वैदिक गृहों के विस्तृत तथा लम्बे-चौड़े होने की बात पुष्ट होती है।

अपने गृहों की रक्षा करने के निमित्त ऋग्वेद में 'वास्तोष्पति' देवता की कल्पना की गयी है और उनकी स्तुति दो सूक्तों[28] में की गयी है। वास्तोष्पति से प्रार्थना की गयी है कि आर्यों का निवास शोभन तथा रोगहीन हो, द्विपद तथा चतुष्पद का कल्याण हो, गायों और घोड़ों के द्वारा समृद्धि को बढ़ाओ तथा सदा जवानी का अनुभव करते हुए हम लोग आपके मित्र बने रहे और पुत्रों के प्रति पिता के समान तुम हम लोगों पर सदा प्रीतियुक्त बने रहो।[29]

वैदिककालीन लोग अपने घरों को सूत्र से मापते थे (थाम ममे)। इस अर्थ में 'निमित' एवं 'मित' शब्द प्रयुक्त हैं।[30] बड़े मापन को मित कहते थे एवं अवान्तर भागों को सूत्र से मापते थे। स्तम्भ के प्रतिष्ठान (बुनियाद) का भी उल्लेख मिलता है।[31] ऋग्वेद[32] में वर्ष्मन् शब्द बड़े खम्भे या लाट की ऊँचाई के लिए प्रयुक्त बड़े माप वाले गृह को बृहन्त मान[33] तथा सामान्य गृह को शाला कहते थे। महाशाला शब्द का प्रयोग उपनिषदों में मिलता है। घर में कई पाख (पक्ष या भित्ति) भी होते थे, जिनके आधार पर द्विपद्वा, चतुष्पक्ष, षट्पक्ष गृहों का उल्लेख मिलता है।[34] घर में छतों से लटकते हुए सिकहर या छींके (शक्य) का भी उल्लेख मिलता है। कोठे के अन्दर कोठे या कोठरी का भी उल्लेख है।[35] शाला को बृहच्छन्दाः भी कहा गया है।[36] विषुवत् या नलदण्ड के ऊपर हजार नेत्रों या छेदों वाले ओपस या स्तूपिकाओं का यहाँ स्पष्ट वर्णन है। घर को पर्याप्त अलंकृत किया जाता था; उसकी उपमा अलंकृत हथिनी से दी गयी है।

शतपथ-ब्राह्मण में घर के दो भागों का उल्लेख है। एक पूर्वार्ध या सदस् और दूसरा उत्तरार्ध भाग के पृथुश्रोणी स्त्री के समान होने पर सुन्दर माना गया है, अर्थात् उसके पिछले मध्य-भाग की विशाल बनाने की सलाह दी गयी है। माप के लिए पैरों से चलकर भी पदगणना की जाती थी। शाला का मुख-मण्डप उसकी नासिका थी, जिसे बाद में 'अलिन्द' कहा जाने लगा। शतपथ-ब्राह्मण में कहा गया है कि देवों को पूर्व-पश्चिम का विन्यास रुचिकर था और मनुष्य उत्तर-दक्षिण के विन्यास को अधिक पसन्द करते थे। इन प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि वैदिक वास्तु-विन्यास विकसित, स्पष्ट और सरल था। साथ ही वे तत्त्व भी उसमें विद्यमान थे जो ऐतिहासिक युग की वास्तु-कला में पाये जाते हैं। इससे भवन निवेश की प्राचीनता स्वतः सिद्ध होती है।

संदर्भ स्त्रोत

1. तं वो दस्मृतोषहं वसोर्मन्द नमन्धसः।
   अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनध इन्द्रं गीर्धिर्नवामहे।। (अथर्व. 20/9/1)
2. सृजा वत्सं न दाम्नो वशिष्ठम् (ऋ. 20/9/1)
3. तैत्तरीय आराण्यक 1/11/8
4. ऐतरेय ब्रा. 5/3
5. ऋ 1/189/2
6. शतमश्मन्मयीनां पुराभिन्द्रो व्यास्यत्।
   दिवोदासाय दाशुषे। (ऋ. 4/30/20)
7. ऋ. 1/58/8; 2/20/8; 4/27/1; 10/101/8
8. अथर्व. 8/6/23
9. प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून् पुर आयसीनि तारीत्। (ऋ. 2/20/8)
10. शतभुजिभिस्तमर्भिह्रु तेरघात् पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत (ऋ. 1/166/8)
11. तैत्ति.सं. 6/23; शत. 6/3/3/25; ऐत. 2/11
12. तै.सं. 6/2/3/1; ऐ. 1/23/2
13. राजानावभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्त्रस्थूण आसाते। (ऋ. 2/41/5)
    वृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्त्रद्वारं जगमा गृहं ते। (ऋ. 7/88/5)
14. ऋग्वेद 7/56/16
15. शतपथ (1/3/2/14)
16. तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुधे सुदुधे पयस्वती। (ऋ. 2/3/6)
17. वितन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय आतरो वयन्ति। (ऋ. 5/47/6)
18. ऋ. 8/5/38
19. वप्ता, ऋ. 10/42/4
20. भिषक् ऋ. 2/33/4
21. अथर्ववेद 3/12, 9/3
22. गुहा चरन्ती योषा,ऋ. 1/167/3
23. अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः। प्र सोम इन्द्र सर्पतु (ऋ. 8/17/7)
24. आपस्तम्ब श्रौतसूत्र 5/9/3; धर्मसूत्र 2/9/25/4
25. ऋग्वेद (6/46/9)
26. इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरुथं स्वस्तिमत्।
27. छर्दिर्यच्छ मधवद्भ्यश्च मह्यं च यावया विद्युमेभ्यः। (ऋ. 6/46/9)
28. ऋग्वेद 7/54, 55
29. वातोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
    अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व।। (ऋ. 7/54/2)
30. अ.वे. 9/3/19
31. ऋ. 10/44
32. ऋग्वेद 3/8/3
33. ऋ. 7/88/5
34. अ.वे. 9/3/21
35. अ.वे. 9/3/6
36. कुलाये अधिकुलायाम् 9/3/20

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

रीवा एवं शहडोल संभाग में पर्यटन स्थलों का विकास

❐ डॉ. के. के. शर्मा*
❐ मुकेश कुमार तिवारी**

शोध सारांश

यह दुनिया एक किताब जैसी है और जो लोग जीवन में यात्रा नहीं करते वे इसका सिर्फ एक पन्ना पढ़ पाते हैं। संत ऑगस्टीन का यह कथन वाकई पर्यटन की आत्मा को दर्शाता है और एक गतिशील देश के रूप में भारत दुनिया भर के पर्यटकों के लिए ढेर सारे अवसर प्रदान करता है। प्राकृतिक सौंदर्य, ऐतिहासिक इमारतें, विरासत स्थल, ढेर सारी विविधता, देश का रंग–बिरंगा स्वरूप, सतरंगी संस्कृति, खान–पान और धार्मिक स्थलों में पर्यटन की असीम संभावना छुपी हुई है। हाल के दशक में यहां तक कि शिक्षा और चिकित्सा पर्यटन, एडवेंचर, ग्रामीण और इको–टूरिज्म ने भी भारतीय पर्यटन उद्योग में नए आयाम जोड़े हैं। सिर्फ अंतर्राष्ट्रीय ही नहीं बल्कि घरेलू पर्यटन में भी कई गुणा इजाफा हुआ है। हाल में जो आंकड़े सामने आए हैं उससे पता चलता है कि पिछले दशक में भारत में पर्यटन क्षेत्र ने अद्‌भुत विकास किया है और सकल घरेलू उत्पाद में सिर्फ 6.6 प्रतिशत का योगदान दिया है।

दुनिया भर में पर्यटन रोजगार पैदा करने वाले एक क्षेत्र के रूप में जाना जाता है, साथ ही यह विदेशी मुद्रा लाने वाले और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए भी जाना जाता है। विशिष्ट संस्कृति से परिपूर्ण, प्राकृतिक विविधता, विरासत, जीवंत बाजार और पारंपरिक आतिथ्य–भाव वाले भारत में पर्यटन की प्रचुर संभावनाएं हैं। जरूरत इस बात की है कि इसे उपभोक्ताओं तक कायदे से प्रस्तुत किया जाए। किसी भी देश में पर्यटन उद्योग वहां की सुविधाएं मसलन बुनियादी ढांचे, रहने–ठहरने की व्यवस्था, पविहन और मनोरंजन के साधनों की प्रतिस्पध र्ात्मकता पर विकास करती है और यहीं पर कई सारे भागीदारों की भूमिका सामने आती हैं जिसमें केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, उद्यमी और समाज का भी योगदान होता है।

* प्राध्यापक (समाजशास्त्र), शा. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, एम.ए. (समाजशास्त्र), शा. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सरकार की नीतियां किसी क्षेत्र के विकास का नक्शा तैयार करती है और विकास को क्रियान्वित करती है। वे दिशा–निर्देशों और रणनीतियों को सामने लाती हैं ताकि पर्यटकों की आमद बढ़ सके। वे संसाधनों और रोजगार के साधनों तक पहुंच भी मुहैया करवाती हैं। वर्तमान में सरकार का लक्ष्य ये है कि सन् 2016–17 के आखिर तक दुनिया भर में जितने पर्यटक आवाजाही करते हैं–उनमें से एक प्रतिशत हिस्सेदारी हासिल कर ली जाए। हाल में सरकार ने 44 देशों के पर्यटकों को (वीजा ऑन अराइवल/आगमन पर वीजा) देने का निर्णय किया है जिससे बढ़ाकर 106 देश का ई–प्रबन्धन कुछ ऐसे ही सही दिशा में उठाए गए कदम हैं। थीम आधारित पर्यटन सर्किटों के लिए स्वदेश दर्शन की योजना, तीर्थस्थलों के विकास और आध्यात्मिक संवर्धन के लिए राष्ट्रीय मिशन और सभी मतों के धार्मिक केन्द्रों पर आधारित पर्यटन स्थलों के विकास और सौंदर्यीकरण की योजना कुछ ऐसी ही योजनाएं हैं, जिनका लक्ष्य सन् 2016–17 तक 154 करोड़ घरेलू पर्यटकों को पर्यटन स्थल तक लाना है। इसके अलावा हुनर से रोजगार तक और हुनर जायका जैसे कार्यक्रम रोजगार पैदा करने के उद्देश्य से शुरू किए जा रहे हैं।

हालांकि ये किसी उद्यमी की दृष्टि और उसकी प्रतिभा होती है कि वो इन योजनाओं और संसाधनों में आर्थिक मूल्य जोड़ पाता है और उसे समाज व अपने बेहतरी के लिए इस्तेमाल कर लेता है। अपनी सहायक क्रियाओं के साथ पर्यटन उद्योग व्यवसायिक गतिविधियों का विशाल संसार प्रस्तुत करती है जैसे परिवहन, आतिथ्य, भोजन, टूर पेकेज, मनोरंजन आदि–आदि। अभिनव और अपारंपरिक पर्यटन स्थलों की तलाश जो अभी तक नहीं खंगाले जा सके है–वो एक कायमयाब उद्यमी के लिए और भारत में पर्यटन को टिकाऊ बनाने के लिए महत्वपूर्ण है।

भारत में 'अतिथि देवो भव' की पुरानी धारणा रही है और पर्यटक को 'अतिथि' का दर्जा हासिल है। समाज मेजबान की भूमिका निभाता है। लेकिन आखिर में समाज सेवा प्रदाता और लाभ–हासिल करने वाले की भूमिका में ही रहता है। समाज के समावेशी विकास के लिए भी पर्यटन शानदार माध्यम हो सकता है और गरीबी उन्मूलन में सकारात्मक भूमिका अदा कर सकता है। पर्यटन उद्योग में ये क्षमता है कि वो लोगों के जीवन और सोचने की दृष्टि से बदलाव ला सकता है। लेकिन इसके लिए उद्योग को सतर्कतापूर्वक विकसित करने की आवश्यकता है और पर्यटकों और मेजवान समुदाय की सकारात्मक मनोवृत्ति वे महत्वपूर्ण कारक हैं जो इस उद्योग को एक रचनात्मक दिशा प्रदान करते हैं।

भारत में पर्यटन का भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल है लेकिन हमें एक लंबी दूरी तय करनी है। महान दार्शनिक लाओत्से ने कहा था कि हजार मील की यात्रा सबसे पहले, पहले कदम से शुरू की जाती है और हाल में जो इस क्षेत्र में नीतियां शुरू की गई है, उससे वो सही कदम उठा लिया गया है।

देश में पर्यटन के विकास व विस्तार की अपार संभावानाएं हैं। इस दिशा में सबसे बड़ी जरूरत है पर्यटन सेवाओं को उत्पाद के तौर पर मान्यता देने की ओर बेहतर पैकेजिंग के साथ उसे पेश करने की। परिवहन, आवासन, खान–पान और तमाम उद्योगों को पर्यटन उद्योग के विकास के साथ ही–बाई–प्रोडक्ट' के तौर पर सफलता मिल जाएगी। भारत का पर्यटन क्षेत्र एक ऊंची छलांग लगाने के मुहाने पर खड़ा है। उपरोक्त तमाम सहउत्पाद अवसंरचना क्षेत्र से जुड़े हैं और अवसंरचना विकास पर मौजूद सरकार का जोर

भी है। ऐसे में बेहतर कल की उम्मीद तो की ही जा सकती है।

पर्यटन का उद्देश्य प्रारंभ से ही मानसिक तनाव और रोजमर्रा के जीवन की बोरियत से छुटकारा पाना रहा है लेकिन बहुत से लोग शारीरिक और मानसिक विकारों से मुक्ति प्राप्त करने के लिये भी विभिन्न स्थानों को भ्रमण करते हैं। भारत में पर्यटन का यह स्वरूप बड़ी तेजी से फल फूल रहा है हमारे यहां परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों और आध्यात्मिक क्रियाओं की लंबी परंपरा रही है जिनका उपयोग अब पर्यटन को बढ़ावा देने के लिये हो रहा है।

एलोपैथी में कई असाध्य रोगों के इलाज के लिये भी आसपास के देशों और अन्य विकासशील देशों के लोग भारत आने लगे हैं, पर्यटकों की नयी पसंद है आयुर्वेद योग, सिद्ध, प्राकृतिक चिकित्सा जैसी उपचार प्रणालियाँ इनमें मालिश, जड़ी बूटियों से विभिन्न विकारों का इलाज और मानसिक तनाव कम करने के लिये यौगिक क्रियाएँ व ध्यान जैसी क्रियाएँ शामिल हैं। ये सुविधाएँ कई बड़े अस्पतालों में जुटाई जा रही है और साथ ही इन पद्धतियों के लिये अलग से केन्द्र स्थापित लाभ करते हैं। कई केन्द्रों या आश्रमों में संगीत और रागों की सहायता से भी उपचार किया जाता है।

एक अनुमान के अनुसार चिकित्सा पर्यटन के अंतर्गत लगभग 1.5 लाख विदेशी पर्यटक प्रतिवर्ष भारत आते हैं इनकी संख्या बढ़ाने पर वर्ष 2012 तक भारत में स्वास्थ्य पर्यटन का करोबार लगभग दो अरब डॉलर तक पहुंच जाएगा। इस क्षेत्र में केरल अग्रणी भूमिका निभा रहा है। यहां पर राज्य के पर्यटन विकास निगम और निजी संगठनों की ओर से कई केन्द्र चलाए जा रहे हैं जिनमें वजन घटाने, चर्बी कम करने, स्पांडिलभइटिस, पथरी, जोड़ों का दर्द जैसे सामान्य और वायुजनित विकारों का इलाज किया जाता है। इन केन्द्र की लोकप्रियता का कारण यह है कि यहां कि चिकित्सा कम महंगी है और इनमें प्रवेश के लिये प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। आयुर्वेद, योग प्राकृतिक चिकित्सा आदि के केन्द्र प्राकृतिक दृष्टि से रमणीय स्थानों पर ही खोले जाते हैं जिससे पर्यटक इलाज के साथ–साथ प्राकृतिक सौंदर्य का भी आनन्द उठा सकते हैं। सेहत और सैर दोनों एक साथ हो जाए तो पर्यटकों को और क्या चाहिए। चिकित्सा पर्यटन जोर पकड़ रहा है और इस खंड के संवर्धन के लिए निम्नलिखित पहल की गई है :–

- पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार ने बर्लिन में इंटरनेशनल टूरिज्म बोर्ड (आईटीबी) में भाग लिया, जहाँ भारत को नए उभरते हेल्थकेयर गंतव्य के रूप में संवर्धित किया गया।
- इंडियन हेल्थेयर सर्विसेज के संवर्धन एवं भारत में निवेश के आमंत्रण हेतु, पर्यटन मंत्रालय ने न्यूयार्क टाइम्स ट्रेवल शो में भाग लिया, जिसमें इंडिया टूरिज्म ऑफिस, न्यूयार्क इंडियन इंडस्ट्री (सीआईआई) द्वारा सत्र का आयोजन भी किया गया।
- मेडिकल बीजा की एक नई श्रेणी की शुरूआत की गई है, जिसे भारत आने वाले विदेशी पर्यटकों का मेडिकल इलाज के विशिष्ट उद्देश्य हेतु किया जा सकता है।

पर्यावरण पर्यटन :–

पर्यावरण पर्यटन या इको टूरिज्म भी अपेक्षाकृत नवीन अवधारणा है जो पश्चिमी राष्ट्रों और दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में लोकप्रियता हासिल कर चुकी है पर भारत में अभी इस दिशा में बहुत कम प्रयास हुए है। इसमें समुद्रों के स्थिरजल यानी बैंक वाटर के क्षेत्र, वन्य प्राणी अभ्यारण्य, पर्वतों की तलहटियों, राष्ट्रीय पार्क, पक्षी अभ्यारण्य आदि शामिल है।

स्थिरजल स्थल अपने मनोरम प्राकृतिक सौंदर्य के लिये प्रसिद्ध हैं। इनके अलावा आम के बागान भी सैलानियों को आकर्षित करते हैं। वन्य प्राणियों व पक्षियों के अनेक अभ्यारण्य जहां पर्यटक वन्य प्राणियों और क्षेत्र की कुदरत का नजारा करते हैं। पर्यावरण पर्यटन का आदर्श केंद्र है। यह प्राकृतिक छटा वन्य जंतुओं और नदियों के सौंदर्य का संगम भी दर्शनीय है विश्व भर से पर्यटक आकर विशालतम बाघ अभ्यारण्य और विविध प्रकार के जीव जंतुओं के दर्शन कर सकते हैं प्राकृतिक छटा के दर्शन कराने वाले असंख्य स्थल हैं जो पर्यावरण पर्यटन के उद्देश्य से आने वाले सैलानियों का स्वागत करने को आतुर है। इन स्थानों पर आधुनिक सुविधाओं की व्यवस्था हो जाने से देश में पर्यटन को निश्चय ही प्रोत्साहन मिलेगा।

पर्यटन की आधुनिक अवधारणाओं में एक नया नाम जुड़ा है हैरिटेज होटल, इसे आप प्राचीनता और आधुनिकता का संगम कह सकते हैं। हमारे देश में ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अनेक महल, दुर्ग, भवन आदि हैं जो पुराने राजघरानों के स्वामित्व में हैं। इन धरोहर इमारतों को आधुनिक सुविधाओं से संपन्न होटलों और गेस्ट हाउसों में परिवर्तित करने का नया सिलसिला चल निकला है जो पर्यटन की दृष्टि से काफी उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

अतीत की भव्य, मनोरम और विशालाकार इमारतें जो कभी राजा–महाराजाओं और जमीदारों की संपन्नता और अभिमान की प्रतीक थी। आज पर्यटकों की आरामगाह बनती जा रही है। मध्यकालीन संस्कृति के अनुरूप बनी ये इमारते आधुनिक सुविधाओं से संपन्न होकर संस्कृति और उपभोग का अद्वितीय मिश्रण प्रस्तुत कर रही हैं। इस दृष्टि से राजस्थान अग्रणी भूमिका निभा रहा है। यहां के अनेक महल और दुर्ग अपना स्वरूप खोकर हैरीटेज होटल का नाम अपना चुके हैं। हैरिटेज ट्रेन की परिकल्पना भी परंपरा और आधुनिक के संगम के उद्देश्य को ध्यान में रखकर की गई है।

देश में दो अत्यंत आरामदेह और भव्य रेलगाड़ियाँ चल रही है जिसमें यात्री क्षेत्र विशेष का भ्रमण करते हुए उस क्षेत्र के जनजीवन और संस्कृति का रेलगाड़ी में भी आनंद उठाते चलते हैं। 21 डिब्बों वाली 'डक्कन ओडिसी' दक्षिण पठार की सैर कराती है तो दूसरी रेलगाड़ी 'पैलेस आन ह्विल्स' राजस्थान के राजपुतानी शाही संस्कृति का अवलोकन करने का अवसर देतीहै। इस भव्य रेलगाड़ी की गिनती विश्व की 10 शीर्ष लग्जरी ट्रेनों में की जाती है।

हैरिटेज पर्यटन का, जहाँ कहीं भी संभव हो पायेगा, निकटवर्ती सांस्कृतिक रूप से समृद्ध गांवों तथा शहरों, शिल्प ग्रामों में, परिपथ में भीतर एकीकृत करने हेतु विस्तर किया जायेगा। भारतीय पर्यटन का यह नवीनतम आयाम धीरे–धीरे अपने पांव जमा रहा है। वैश्वीकरण के इस युग में सारी दुनिया एक गांव में तब्दील हो रही है। विश्व बाजार में भारत के बढ़ते हस्तक्षेप के कारण अनेक अंतर्राष्ट्रीय तथा बहुराष्ट्रीय व्यापारिक एवं राजनीतिक संगठन भारत में अपनी बैठकें, गोष्ठियाँ और सम्मेलन आयोजित करते है। हमारे देश के छोटे–बड़े सभी होटल अपने यहाँ सम्मेलन का निर्माण कर रहे हैं, जहाँ बैठके आयोजित करने, अतिथियों और प्रतिभागियों के रहने–ठहरने, खान–पान के साथ–साथ सम्मेलन के लिये बुनियादी आवश्यकताओं, जैसे वीडियों कांफ्रेसिंग, क्लब, बार आदि का व्यवस्था की जाती है कुछ होटलों की एक पूरी फ्लोर सम्मेलनों के लिये निर्धारित रहती है। भारत के होटल दक्षिण एशिया से संबंधित विचार–विमर्श और सम्मेलनों के लिये आदर्श केन्द्र माने जाते हैं।

आधुनिक सूचना टेक्नोलॉजी के इस्तेमाल से होटल के कंन्वेशन हॉल बनाने के अलावा अलग से कंन्वेशन सेंटर भी बनाए जा रहे हैं जो केवल सम्मेलन आदि आयोजित करने के लिये किराए पर दिए जाते हैं। सरकार ने दिल्ली, मुंबई, गोवा और जयपुर में 50,000 सीटों वाले अंतर्राष्ट्रीय स्तर के कंन्वेशन सेंटर बनाने की घोषणा की है। उधर निजी क्षेत्र के प्रयासों से कोलकाता, हैदराबाद, चेन्नई, कोच्चि और आगरा में कंन्वेशन सेंटर बनाए जा रहे है।

सरकारी तथा गैरसरकारी पर्यटन प्रबंधन मिलकर यह प्रयास कर रहे हैं कि सम्मेलन पर्यटन में भारत का हिस्सा अधिकाधिक बढ़ाया जाए। उम्मीद है कि पर्यटन के इन नये आयामों के विकास के फलस्वरूप भारत में पर्यटन के स्वरूप में आ रहे बदलाव से विश्व पर्यटन में भारत के अनुपात में उल्लेखनीय बढ़ोतरी होगी और इस उद्योग में और अधिक लोगों को रोजगार मिल सकेगा।

साहसिक पर्यटन पर्वत, पहाड़, नदी आदि जल केन्द्रों में खेलकूद गतिविधि में हिस्सा लेने की सुविधा प्रदान करती है। उपरोक्त गतिविधि के लिए रीवा संभाग सहित पूरे प्रदेश में अपार संभावनाएँ मौजूद है। सीमित संसाधनों पर निर्भर होने के कारण म.प्र. शासन ने इस क्षेत्र में निजी भीगीदारी के प्रवेश का निर्णय लिया है ताकि प्राकृतिक संसाधनों का सर्वोत्तम सदुपयोग किया जा सके।

इस तरह जहाँ एक ओर म.प्र. शासन इस प्रयास से अधिकाधिक पर्यटक संख्या को आकर्षित करने की आशाएँ बलवती होगी वही दूसरी ओर स्थानीय उत्पादों की माँग में वृद्धि होने की संभावनाएँ बनेगी तथा स्थानीय लोगों में नये रोजगार के अवसर भी उत्पन्न होगे।

निजी भागीदारी को आकर्षित करने हेतु राज्य शासन ने सामान्य निर्देश रेखा को अंतिम स्वरूप दिया है जिससे आसानी से साहसी अपनी प्रतिभा दिखा सके। साहसिक पर्यटन की निम्नलिखित विधाओं में निजी भागीदारी को जोड़ा गया है।

1. कैम्पिंग
2. ट्रेकिंग
3. एन्जलिंग
4. जल क्रीड़ा
5. हाथी की सवारी
6. साइकल सवारी
7. राइंडिंग ट्रेल
8. फोटो सफारी
9. ऊँट सवारी
10. वाटर राफ्टिंग
11. चट्टानों की चढ़ाई/माउन्टेनियरिंग

उपरोक्त गतिविधि म.प्र. शासन द्वारा राज्य के अनेक केन्द्रों में प्रस्तावित हैं वर्तमान में रीवा जिले के सफारी टाइगर संभाग की महत्वपूर्ण रिर्जवटागर के रूप में विकसित किया गया है जहां पर पर्यटकों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही हैं यहां पर सफेद शेरों का संरक्षण भी किया जा रहा है जिससे 'मोहन' विश्व की सबसे प्रथम सफेद शेर का जनक माना जाता है। जो रीवा जिले में ही पाया गया है। इस सबसे पहले महाराजा मार्तण्ड सिंह ने शिकार के दौरान प्राप्त किया था। आज मोहन के वंशजों को इस सफारी शेर को पूर्णरूप से संरक्षण प्राप्त है। जबकि उपरोक्त स्थानों पर प्रस्तावित साहसिक गतिविधियाँ संचालित करने से रीवा संभाग पर्यटन उद्योग को नई ऊँचाईयों को छू रहा है।

सारणी क्रमांक 1

साहसिक पर्यटन गतिविधियाँ निम्नलिखित स्थान पर प्रयोग के आधार पर प्रारंभ की जा सकती है

क्र.	प्रस्तावित गतिविधि	स्थान
1	कैम्पिंग, ट्रेकिंग, हाथी सवारी	बाँधवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान, संजय गाँधी राष्ट्रीय उद्यान एवं अभ्यारण्यों पर।
2	जल क्रीड़ा	अमरकंटक, गोविन्दगढ़, बांधवगढ़, चुरहट सोन नदी, बाणसागर बाँध रीवा पर।
3	केनोइंग सफारी/व्हाइट वाटर राफ्टिंग	बीहर नदी, नर्मदा नदी, सोन नदी, टमस नदी, बनारस नदी पर।
4	रॉक क्लाइम्बिंग और पर्वतारोहरण	अमरकंटक, चित्रकूट, बांधवगढ़, गड्डी पहाड़ रीवा, गोविन्दगढ़ पहाड़, मोहनिया घाटी, छुहिया घाटी, बर्दहा घाट पर।
5	पैरासैलिंग/पैरा ग्लाइडिंग/गर्म हवा के गुब्बारे में उड़ान	गोविन्दगढ़, सोहागी घाटी, बांधवगढ़, अमरकंटक

क्रूज पर्यटन, वैश्विक दृष्टि से तेजी से वृद्धि करते हुए सेक्टर है केरिबीयन लेटिन अमरीकी और दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के अनुभव यह दर्शाते हैं कि क्रूट पर्यटन की वृद्धि हेतु, सही नीति वातावरण और अवसंरचना उपलब्ध कराकर, भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है फ्लीट एवं यात्रियों की शर्तों में क्रूज शिपिंग हेतु वैश्विक परिदृश्य बड़ी तेजी से ऊपर उठ रहा है। भारत अपनी विशाल और सुदंर तटरेखा, अक्षत वनों एवं शांत सौम्य द्वीपों, शिल्पकला की दीर्घ ऐतिहासिक व सांस्कृतिक परम्परा, थियेटर और कलाओं का प्रदर्शन के साथ, क्रूज पर्यटकों हेतु, एक उच्च संभाव्य पर्यटक गंतव्य है।

साहसिक पर्यटन :–

साहसिक पर्यटन का विकास, भारत के पर्यटक उत्पादों की विविधता के लिए नीति के एक भाग के रूप में है। पर्वतरोहण, ट्रेनिंग, हैंग, ग्लाइडिंग, पैराग्लाइडिंग, बंजी जंपिग और रिवर राफ्टिंग, सहित थल, वायु एवं जल आधारित क्रियाकलापों हेतु प्राथमिक न्यूनतम मानक के रूप में, साहसिक पर्यटन पर, सुरक्षा और गुणवत्ता प्रतिमानकों पर दिशा–निर्देशों के एक सेट का सूत्रपात किया गया। विभिन्न राज्य/संघ राज्य क्षेत्र सरकारों को ट्रेकिंग, रॉक क्लाइम्बिग, पर्वतरोहरण, एरो–स्पोट्स, शीतकालीन/जल संबंधी खेल–कूद, ट्रेकर हट्स वन्यजीवन प्रदर्शित करने वाली सुविधाएँ, इत्यादि हेतु आवश्यक विभिन्न साहसिक पर्यटन परियोजनाओं एवं अवसंरचना सुविधाओं के विकास के लिए केन्द्रीय वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। वर्ष 2006–07 के दौरान, जलक्रीड़ा संबंधी उपकरण जैसे कायाक, केनोस, पैडल बोट्स फाइबर, ग्लास बोट्स, हॉवर क्राफ्ट्स स्कूट्र्स, आदि खरीदने हेतु मध्यप्रदेश को वित्तीय सहायता प्रदान की गई है।

ग्रामीण पर्यटन :–

भारत के संदर्भ में ग्रामीण पर्यटन अत्यंत अनूठा और अभिन्न प्रयोग है। यह एकदम नयी अवधारणा है जिसका ध्येय देश के गांवों में संस्कृति, कला कौशल और प्रकृति के विपुल भंडार को पर्यटन के लिये खोजना है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की मदद से सरकार ने ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने का विशेष कार्यक्रम तैयार किया है जिसमें देशभर के 32 ग्रामीण क्षेत्रों का चयनप किया गया है जहां क्षेत्र विशेष के विशिष्ट तत्वों के विकास पर जोर दिया जाएगा लगभग पौने दो करोड़ रुपये की इस परियोजना के तहत गांवों में सदियों पुरने हस्तशिल्प, लोक कलाओं और संस्कृतिक धरोहर के संरक्षण के उपाय किए जाएगे।

इस परियोजना का एक अतिरिक्त लाभ यह होगा कि पर्यटन के साथ–साथ इन ग्रामीण अंचलों के आर्थिक विकास को गति मिलेगी और देहाती युवकों को रोजगार मिलेगा इससे गांवों से

शहरों की ओर पलायन पर विराम लगाने में मदद मिलेगी।

ग्रामीण पर्यटन हालांकि एकदम नयी अवध ाारणा है लेकिन भारत में इसके फलने–फूलने के अच्छे आसार हैं क्योंकि यहां देहात में पर्याटकों को आकर्षित करने वाले तत्व बहुतायत में मौजूद हैं आवश्यकता उनके सही संरक्षण प्रबंधन और रख–रखाव की है इसमें स्थानीय प्रतिभा का इस्तेमाल किया जाना चाहिए किंतु एक बात का ध यान रखना आवश्यक है कि ग्रामीण पर्यटन के विकास के लिये शहरी पर्याटन विकास वाला मॉडल न अपनाया जाए और प्रदूषण आदि से ग्रामीण क्षेत्रों को बचाने की सावधानी बरती जाए इसमें कोई संदेश नही कि शहरी आपाधापी और कोलाहल से उकताए लोगों के लिये ग्रामीण पर्याटन काफी आकर्षक सिद्ध हो सकता है।

ग्रामीण पर्यटन के पास भारत की ''इंटेन्जिबल हैरिटेज'' अथवा ''साफ्ट कल्चर'' के साथ आगे बढ़ने की प्रचुर संभावना है, जिसमें लोक–गीत, संगीत, नृत्य, स्थानीय शिल्प एवं कला, क्रीड़ा, उत्सव आदि शामिल हैं। भारत की शिल्पकला आभूषण, हथकरधा आदि पर अधिक पर्यटक व्यय हासिल करने के लिये, पर्यटन यात्रा कार्यक्रम के रूप में विशेष रुचि वाले शॉपिंग पर्यटन को प्रोत्साहित किया जा सकता है, जो परम्परागत कला एवं शिल्प के पुनरुद्धार में मददगार होगा और ग्रामीण कलाकरों एवं शिल्पकारों के समुदाय की जीविकोर्पाजन में भी मदद देगा।

बैठक, प्रोत्साहन, सम्मेलन और प्रदर्शिनियाँ (माइस) पर्यटन उद्योग का महत्वपूर्ण हिस्सा है। त्वरित वैश्वीकरण और भारतीय अर्थव्यवस्था की उच्च वृद्धि को देखते हुए माइस पर्यटन का बढ़ना तय है और इसकी जरूरतों को पूरा करने के लिए देश में और समागम एवं प्रदर्शनी केन्द्रों की आवश्यकता है। इस क्षेत्रों में निवेश को बढ़ावा देने तथा सुविधाओं को उन्नत बनाने के लिए पर्यटन मंत्रालय समागम केन्द्रों को अनुमोदन प्रदान करता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारत सरकार ने, पारस्परिक समृद्ध अनुभव हेतु, पर्यटकों और स्थानीय लोगों के मध्य विचार–विमर्श कर सकने के साथ–साथ स्थानीय समुदाय को आर्थिक एवं सामाजिक रूप से लाभ पहुँचाने हेतु, ग्रामीण स्थलों पर उनके ग्रामीण जीवन कला, संस्कृति और विरासत को प्रदर्शित करने के लिए ग्रामीण पर्यटन का विकास और संवर्धन करने का निश्चय किया। इसी कड़ी में रीवा एवं शहडोल संभाग में स्थित पर्यटन स्थलों को विकसित करने का प्रयास किया जाना चाहिए जिससे यहां पर स्थानीय लोगों को पर्यटन के जरिये रोजगार एवं आर्थिक समृद्धि का विकास हो सके, स्थानीय लोगों के जीवन–स्तर में सकारात्मक सोच का विकास हो सके।

संदर्भ स्रोत :–

1. माथुर के.एम, हय्मन रिसोर्स डेवलपमेंट इन इंडिया, अरिहत, जयपुर
2. मानव संसाधन प्रबंध एवं नियोजन, रमेश बुक डिपो, जयपुर
3. ग्रामीण विकास की प्रमुख योजनाएँ एवं कार्यक्रम, म.प्र. सरकार
4. अटल,योगेश एवं सिसोदिया, यतीन्द्र सिंह, आदिवासी भारत, रावत पब्लिकेशन जयपुर
5. जैन व श्रीचंद्र आदिवासियों के बीच शिवानी बुक्स; नई दिल्ली
6. तिवारी शिव कुमार, भारत की जनजातियाँ (1992)
7. सिंह विनोद, गोड़ एवं बैगा जनजातियों में औपचारिक शिक्षा का प्रभाव 1993
8. निरगुणे, बंसत; आर्यवृत्त मध्य प्रदेश की जनजातियाँ (2004)
9. मिश्रा, शिवा, बैगा जनजाति के आर्थिक सामाजिक एवं पर्यावरणीय परिस्थिति का अध्ययन

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

''भारत में कुपोषण की समस्या एवं निदान''

❒ डॉ. गोकुल प्रसाद द्विवेदी*
❒ विजय शंकर चौधरी**

शोध सारांश

संयुक्त राष्ट्र का कहना है कि में हर साल कुपोषण के कारण मरने वाले पांच साल से कम उम्र वाले बच्चों की संख्या दस लाख से भी ज्यादा है, दक्षिण एशिया में भारत कुपोषण के मामले में सबसे बुरी हालत में है। राजस्थान और मध्य प्रदेश में किए गए सर्वेक्षणों में पाया गया कि देश के सबसे गरीब इलाकों में आज भी बच्चे भुखमारी के कारण अपनी जान गंवा रहे हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि अगर इस ओर ध्यान दिया जाए तो इन मौतों को रोका जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र ने भारत में जो आंकड़े पाए हैं, वे अंतर्राष्ट्रीय स्तर से कई गुना ज्यादा हैं। संयुक्त राष्ट्र ने स्थिति को ''चिंताजनक'' बताया है। भारत में फाइट हंगर फाउंडेशन और एसीएफ इंडिया ने मिल कर ''जनरेशनल न्यूट्रिशन प्रोग्राम'' की शुरूआत की है।

भारत में एसीएफ के उपाध्यक्ष राजीव टंडन ने इस प्रोग्राम के बारे में बताते हुए कहा कि कुपोषण को ''चिकित्सीय आपात स्थिति'' के रूप में देखने की जरूरत है। साथ ही उन्होंने इस दिशा में बेहतर नीतियों के बनाए जाने और इसके लिए बजट दिए जाने की भी पैरवी की नई दिल्ली में हुई कॉन्फ्रेंस में सरकार से जरूरी कदम उठाने पर जोर दिया गया। राजीव टंडन ने सरकार से कुपोषण मिटाने को एक ''मिशन'' की तरह लेने की अपील की है। उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री मोदी अगर चाहें, तो इसे एक नई दिशा दे सकते हैं। एसीएफ की रिपोर्ट बताती है कि भारत में कुपोषण जितनी बड़ी समस्या है, वैसा पूरे दक्षिण एशिया में और कहीं देखने को नहीं मिला है। रिपोर्ट में लिखा गया है,

तालिका क्र. 01
भारत में निवासरत कुपोषित जनसंख्या

क्रमांक	निवासरत जनसंख्या	प्रतिशत
1	अनुसूचित जनजाति	28
2	अनुसूचित जाति	21
3	पिछड़ी जाति	20
4	सामान्य जाति	21
5	अन्य	10
	योग	100 प्रतिशत

* प्राध्यापक (समाजशास्त्र), यमुना प्रसाद शास्त्री महाविद्यालय, सिरमौर, जिला- रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्वशासी महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि ''भारत में अनुसूचित जनजाति (28 प्रतिशत), अनुसूचित जाति (21 प्रतिशत), पिछड़ी जाति (20प्रतिशत) और ग्रामीण समुदाय (21प्रतिशत) पर अत्यधिक कुपोषण का बहुत बड़ा बोझ है।'' वहीं महाराष्ट्र में राजमाता जिजाऊ मिशन चलाने वाली वंदना कृष्णा का कहना है कि राज्य सरकार कुपोषण कम करने के लिए कई कदम उठा रही है, पर साथ ही उन्होंने इस ओर भी ध्यान दिलाया कि दलित और आदिवासी इलाकों में अभी भी सफलता नहीं मिल पाई है। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट में बच्चों को खाना ना मिलने के साथ–साथ, देश में खाने की बर्बादी का ब्योरा भी दिया गया है।

आज के समय में कुपोषण अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लिये चिंता का विषय बन गया है। यहां तक की विश्व बैंक ने इसकी तुलना ब्लेक डेथनामक महामारी से की है। जिसने 18वीं सदीं में यूरोप की जनसंख्या के एक बड़े हिस्से को निगल लिया था। कुपोषण को क्या इतना महत्वपूर्ण माना जा रहा हैं ? विश्व बैंक जैसी संस्थायें क्यों इसके प्रति इतनी चिंतित है ? सामान्य रूप में कुपोषण को चिकित्सीय मामला माना जाता है और हममे से अधिकतर सोचते हैं कि यह चिकित्सा का विषय है। वास्तव में कुपोषण बहुत सारे सामाजिक–राजनैतिक कारणों का परिणाम है। जब भूख और गरीबी राजनैतिक एजेड़ा की प्राथमिकता नहीं होती तो बड़ी तादाद में कुपोषण सतह पर उभरता है। भारत का उदाहरण ले जहां कुपोषण उसकी पड़ोसी अधिक गरीब और कम विकसित पड़ोसीयों जैसे बांग्लादेश और नेपाल से भी अधिक है। बांग्लादेश में शिशु मृत्युदर 48 प्रति हजार है जबकि इसकी तुलना में भारत में यह 67 प्रति हजार है। यहां तक की यह उप सहारा अफ्रीकी देशों से भी अधिक है। भारत में कुपोषण का दर लगभग 55 प्रतिशत है जबकि उप सहारीय अफ्रीका में यह 27 प्रतिशत के आसपास है।

तालिका क्रमांक 02
5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में
मृत्युदर प्रति हजार : तुलनात्मक

क्रमांक	देश	प्रतिशत में
1	बांग्लादेश	77
2	ब्राजील	36
3	चीन	09
4	मिश्र	41
5	भारत	93
6	इंडोनेशिया	45
7	मैक्सिकों	29
8	नाईजेरिया	183
9	पाकिस्तान	109

जिन क्षेत्रों में अत्यमधिक अल्पै पोषण है वहां कुपोषित महिलायें या किशोरी बालिकायें उन बच्चोंद को जन्मन देती हैं जो पैदा होते ही वृद्धिवाधि ात या पतले होते हैं। इस प्रकार अल्प पोषण एक पीढ़ी तक खौफनाक उत्तराधिकार के रूप में हस्तांणतरित होता है। ये बच्चे आने वाले वर्षों में वृद्धि की भरपाई नहीं कर पाते। वे जल्द ही बीमार होने, देर से स्कूल में प्रवेश करने, सीख नहीं पाने की संभावना से ग्रसित होते हैं और बड़े होकर कम उत्पाशदक वयस्के बन जाता है। इस प्रकार कुपोषण एक भयंकर 'टाईम बम' है।

क्या है कुपोषण ?

यह एक ऐस चक्र है जिसके चंगुल में बच्चे अपनी मां के गर्भ में ही फंस जाते हैं। उनके जीवन की नियति दुनिया में जन्म लेने के पहले ही तय हो जाती है। यह नियति लिखी जाती है गरीबी और भुखमरी की स्याही से। इसका ढंग

स्याह उदास होता है और स्थिति गंभीर होने पर जीवन में आशा की किरणों भी नहीं पनप पाती हैं। कुपोषण के मायने होते हैं आयु और शरीर के अनुरूप पर्याप्त शारीरिक विकास न होना, एक स्तर के बाद यह मानसिक विकास की प्रक्रिया को भी अवरूद्ध करने लगता है। बहुत छोटे बच्चों खासतौर पर जन्म से लेकर 5 वर्ष की आयु तक के बच्चों को भोजन के जरिये पर्यापत पोषण आहार न मिलने के कारण उनमें कुपोषण की समस्या जन्म ले लेती है। इसके परिणाम स्वरूप बच्चों में रोग प्रतिरोधक क्षमता का हास होता है और छोटी–छोटी बीमारियां उनकी मृत्यु का कारण बन जाती हैं।

कुपोषण वास्तव में घरेलू खाद्य असुरक्षा का सीधा परिणाम है। सामान्य रूप से खाद्य सुरक्षा का अर्थ है सब तक खाद्य की पहुंच, हर समय खाद्य की पहुंच और सक्रिय और स्वस्थ्य जीवन के लिए पर्याप्त खाद्य। जब इनमें से एक या सारे घटक कम हो जाते हैं तो परिवार खाद्य असुरक्षा में डूब जाते है। खाद्य सुरक्षा सरकार की नीतियों और प्राथमिकताओं पर निर्भर करती है। भारत का उदाहरण ले जहां सरकार खाद्यान्न के ढेर पर बैठती है (एक अनुमान के अनुसार यदि बोरियों को एक के ऊपर एक रखा जाए तो आप चांद तक पैदल आ–जा सकते हैं)। पर उपयुक्त नीतियों के अभाव में यह जरूरत मंदों तक नहीं पहुंच पाता है। अनाज भण्डारण के अभाव में सड़ता है, चूहों द्वारा नष्ट होता है या समुद्रों में डुबाया जाता है पर जनसंख्या का बड़ा भाग भूखे पेट सोता है।

कुपोषण बच्चों को सबसे अधिक प्रभावित करता हैं। यह जन्म या उससे भी पहले शुरू होता है और 6 महीने से 3 वर्ष की अवधि में तीव्रता से बढ़ता है। इसके परिणाम स्वरूप वृद्धि बाधिता, मृत्यु, कम दक्षता और 15 पाइंट तक आईक्यू का नुकसान होता है। सबसे भयंकर परिणाम इसके द्वारा जनित आर्थिक नुकसान होता है। कुपोषण के कारण मानव उत्पादकता 10–15 प्रतिशत तक कम हो जाती है जो सकल घरेलू उत्पाद को 5–10 प्रतिशत तक कम कर सकता है। कुपोषण के कारण बड़ी तादाद में बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं। कुपोषित बच्चे घटी हुई सिखने की क्षमता के कारण खुद को स्कूल में रोक नहीं पाते। स्कूल से बाहर वे सामाजिक उपेक्षा तथा घटी हुई कमाऊ क्षमता तथा जीवन पर्यंत शोषण के शिकार हो जाते हैं। इस कारण बड़ी संख्या में बच्चें बाल श्रमिक या बाल वैश्यावृत्ति के लिए मजबूर हो जाते हैं। बड़े होने पर वे अकुशल मजदूरों की लम्बी कतार में जुड़ जाते हैं जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर भारती बोझ बनता है।

कुपोषण जन्म या उससे भी पहले शुरू होता है और 6 माह से 3 वर्ष की अवधि में तीव्रता से बढ़ता है। 6 माह से 3 वर्ष की उम्र में बच्चे के लिए मां का दूध पर्याप्त नहीं होता। बच्चा खुद खा पाने या मांग पाने में असमर्थ होता है। उसको बार–बार नरम भोजन की जरूरत होती है जो उसे कोई वयस्क ही खिला सकता है। माताओं को अजीविका कमाने के साथ–साथि और भी कई घरेलू काम करने पड़ते हैं जैसे– पकाना, पानी, लाना, सफाई करना आदि। उनमें इतनी ऊर्जा या समय नहीं बचता कि वह बच्चे को बार–बार खिला सके। परिवार में भी अन्य वयस्क इसे सिर्फ माँ की जिम्मेदारी समझते हैं। बचपन में कुपोषित बच्चे को बाद में सुधार की संभावना बहुत कम होती है। मध्यान्ह भोजन, छात्रवृत्ति, बाल श्रमिकों के लिए विशेष स्कूल आदि सहायक तो है किन्तु पहले 6 वर्षों के नुकसान की भरपाई नहीं कर सकते। कुपोषण मुख्यतः 6 रूपों में नजर आता है जो क्रमशः 1 जन्म के समय कम वजन, 2. बचपन में

बाधित विकास, 3. अल्प रक्तता, 4. विटामिन ए की कमी, 5. आयोडिन कमी संबंधित बिमारियां, 6. मोटापा।

बच्चों में कुपोषण मुख्यतः दो प्रकार का होता है : सूखे वाला कुपोषण सूजन वाला कुपोषण कुपोषण के सूचक

बच्चे की उम्र एवं ऊंचाई के अनुरूप उसका वजन कम होना। उसके हाथ–पैर पतले और कमजोर होना और पेट बढ़ा होना। बच्चे को बार–बार संक्रमण होना और बीमार होना। कुपोषण और स्वास्थ के संबंध 500 लाख से ज्यादा ऐसे परिवार हैं जो अति गरीब की श्रेणी में आते हैं। इसका मतलब यह है कि आधी आबादी को दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं हो पाती है। यह सिद्ध हो चुका है कि पर्याप्त भोजन नहीं मिलने पर शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता कम हो जाती है और वह शीघ्र ही बीमारियों की चपेट में आ जाता है। जन्म के समय ढाई किलो से कम वजन होने पर बच्चे के बहुत कम उम्र में मरने की संभावना तीन गुना बढ़ जाती है। जबकि जहां कुपोषण ज्यादा होता है वहां खसरा से होने वाली मौतों की दर सामान्य से चार सौ गुना ज्यादा होती है।

3 वर्ष पूर्व राष्ट्रीय पोषण संस्थान द्वारा किये गये अध्ययन से पता चलता है कि मध्यप्रदेश भारत में कुपोषण का सबसे ज्यादा शिकार राज्य है और यहां बच्चों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बहुत क्षीण हो चुकी है। कुपोषित बच्चों पर दस्त का प्रकोप सामान्य से 4 गुना अधिक होता है। खून की कमी की शिकार औरंतों में मातृत्व सम्बन्धी मौतें स्वस्थ्य औरतों की तुलना में पांच गुना ज्यादा होती हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि कुल मरीजों में से करीब तीन–चौथाई की रूग्णता का कारण कुपोषण या उससे जुड़ी अन्य दिक्कते हो सकती हैं।

बच्चों में कुपोषण के कारण एक दुष्चक्र शुरू हो जाता है। जो बच्चे इसके चंगुल में फंस जाते हैं वे दस्त, खसरा, कुकरखांसी, टीबी, और निमोनिया जैसे संक्रामक रोगों की चपेट में आ जाते हैं। कुपोषित बच्चों में ये बीमारियां ज्यादा गंभीर होती हैं और उनकी अवधि लम्बी होने की संभावना बहुत ज्यादा होती है। दस्त की समस्या से कुपोषण की गंभीरता को सही ढंग से समझा जा सकता हैं वैसे तो दस्त एक सामान्य बीमारी है जिसके बारे में माना जाता था कि पानी में गंदगी के कारण यह बीमारी फैलती है परन्तु बाद में पता चला कि दस्त का समय दूध छुड़ाने की अवधि से मेल खाता है। यह अवधि बच्चों को तरल आहार देने से लेकर स्तनपान समाप्त होने के तीन महीने बाद तक चलती है। यही वह समय होता है जब आम तौर पर बच्चे कुपोषण के शिकार होते है। यह भी देखा गया है कि दूध छुड़ाने में दस्त के तीन गुना अधिक शिकार होते हैं। कम पोषित बच्चे दस्त के अधिक शिकार क्यों होते हैं, जब इसका जैविक अध्ययन किया गया तो पता चला कि बच्चों की छोटी आंत की अंदरूनी सतह पर प्रतिरोधक क्षमता कम होने के कारण बैक्टीरिया की संख्या बढ़ जाती है। इन बैक्टिरिया के कारण उत्पन्न जहरीले पदार्थों से सोडियम को सोखने की प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है। बच्चा इसे सहन नहीं कर पाता है और दस्त की समस्या जन्म ले लेती है। यह पाया गया है कि दस्त के दौरान बच्चा प्रतिदिन 600 कैलारी तक गंवा सकता है। ऐसी स्थिति में कम पोषित बच्चे की स्थिति तो और भी ज्यादा खराब हो जाती है। महाराष्ट्र में किये गये एक अध्ययन से पता चला है कि कुपोषण स्वयं भी रोगों और मृत्यु का बड़ा कारण है। वहां कुपोषण और एनीमिया 31.9 प्रतिशत ब्रोंकोन्यूमोनिया 21.3 प्रतिशत, आंत्रशोथ 20.2 प्रतिशत मृत्यु के सबसे बड़े कारण थे।

इसी तरह जन्म के समय कम वजन जीवन भर की अस्वस्थता का बड़ा कारण होता है। गर्भावस्था के समय उचित आहार न मिलने और अब घरेलू हिंसा की शिकार होने के कारण महिलाओं के साथ–साथ बच्चों की स्थिति भी खराब हो रही है। स्त्री के प्रति घरेलू हिंसा के कारण बच्चों में स्नायु तंत्र से सम्बन्धित रोगों को प्रतिशत बढ़ा है। राष्ट्रीय पोषण संस्थान की एक रपट के अनुसार वे सभी बच्चे जिनका समय कम वजन के कारण ही होती है। इसी तरह कमजोरी के कारण बच्चों पर तपेदिक (टीबी) जैस संक्रामक रोगों के बढ़ते प्रभाव को भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

खसरे के संदर्भ में गरीबी और कुपोषण के परस्पर सम्बन्धों को ज्यादा स्पष्ट किया गया है। यह एक आम रोग है और कभी ही जानलेवा साबित होता है परन्तु गरीबी में यह अक्सर जानलेवा होता है। जब यह रोग होता है तब बुखार और खांसी होती है, चौथे दिन त्वचा पर लाल दाने दिखने लगते हैं। इलाज होने पर दसवें दिन तक यह दाने ठीक हो जाते हैं। परन्तु कुपोषित बच्चे के संदर्भ में खसरा दूसरा ही रूप दिखाता है। उन बच्चों में लालदाने बढ़ कर चकत्तो का रूप ले लेते हैं और उनका रंग बैंगनी तक हो जाता है। कुछ दिनों में त्वचा पपड़ीदार हो जाती है और झड़ने लगती है। चमड़ी के झड़ने की यह प्रक्रिया इस हद तक बढ़ सकती है कि कुपोषित बच्चे को प्योडर्मा नामक छूत की बीमारी हो जाती है। बच्चे को ब्रोन्काइटिस और निमोनिया भी हो सकता है। अध्ययनों से पता चलता है कि कम पोषित बच्चे के लिये खसरे के कारण मृत्यु का खतरा 400 गुना ज्यादा होता है। हम यदि यह भी स्वीकार कर रहे हैं कि गांवों में दस्त, खांसी, निमोनिया, बुखार और टीबी के कारण बच्चे मर रहे हैं तो इसका अर्थ यह है कि इन कारणों की बुनियाद में भुखमरी से उत्पन्न हुआ कुपोषण ही है, और कुछ नहीं।

मध्यप्रदेश में कुपोषण

जहां तक मध्यप्रदेश का संदर्भ है कुपोषण की स्थिति काफी चिंताजनक है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 55 प्रतिशत बच्चे कम वजन के है और 55 प्रतिशत बच्चों की मौते कुपोषण के कारण होती है। (स्त्रोत–यूनिसेफ और महिला एवं बाल विकास विभाग के प्रकाशन–बाल संजीवनी के अनुसार) कुछ और महत्वपूर्ण बिंदु है जैसे मध्यप्रदेश में देश में सर्वाधिक कम वजन के बच्चे हैं और यह स्थिति 1990 से यथावत है।

मध्यप्रदेश में बच्चों की स्थिति

कुपोषण की दर 64 प्रतिशत से बढ़कर 76 प्रतिशत हो गयी है। (1 से 3 वर्ष) 3 वर्ष की आयु के बच्चों में 4 में से 3 बच्चे अनीमिया से ग्रसित हैं। 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों में 1000 में से 4 बच्चे रतौधी से ग्रसित है। स्रोत– महिला एवं बाल विकास विभाग म.प्र./युनिसेफ भोपाल।

कुपोषण की मध्यप्रदेश की एक गंभीर जन स्वास्यिन समस्या है

सारे राज्यों में से सर्वाधिक कम वजन के बच्चे यहां पर हैं। सर्वाधिक कम वजन के बच्चों की संख्या सन् 1990 से बदली नहीं। कुपोषण विकास और सीखने की क्षमता के लिए एक खतरा है। बच्चों में कुपोषण की स्थिति राज्य की अर्थ व्यवस्था पर भारी बोझ है। स्रोत–महिला एवं बाल विकास विभाग म.प्र./युनिसेफ भोपाल

कुपोषण नियंत्रण पर प्रस्तावित पहल

प्रोटीन कैलोरी कुपोषण मरास्मस शरीर के आकार में वृद्धि रूकना और शरीर बेकार होना और क्वाशियोरकोर आमतौर पर एक साल तक के उम्र के बच्चों में होती है। उस समय बच्चों को

स्तनपान से अलग कर प्रोटीन की कमी वाला पोषण मांड या चीनी पानी का घोल दिया जाता है। वैसे यह बीमारी बच्चों के वृ िकाल में कभी भी हो सकती है। मरास्मस छह से 18 महीने की उम्र के वैसे बच्चों को होती है, जिन्हें स्तनपान से वंचित किया जाता है या डायरिया की गंभीर बीमारी होती है।

संकेत व लक्षण

गंभीर पीसीएम से ग्रस्त बच्चे अपनी उम्र से कम दिखते हैं, शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर तथा संक्रमण से प्रति बेहद संवेदनशील होते है। उन्हें एनोरेक्सिया ओर डायरिया जैसी बीमारी हमेशा घेरे रहती है। पीसीएम से गंभीर रूप से पीड़ित बच्चे छोटे, सुस्त और रूखी त्वचा वाले होते हैं। और बाल कत संख्या में तथा भूरे या लाल पीले होते है। उनके शरीर का तापमान हमेशा कम रहता है, नब्ज की गति धीमी होती है और सांस लेने की रफ्तार भी कम रहती है। ऐसे बच्चे कमजार, गुस्सैल और हमेशा भूखे होते हैं, हालांकि उनमें जी मिचलाने और उल्टी के साथ अपचय की शिकायत हो सकती है।

मारास्मस के विपरीत क्वाशियोकर में मरीज के शरीर के आकार में वृ ितो होती है, लेकिन त्वचा सूखती जाती है, उनमें भी मरास्मस जैसे लक्षण होते है और उनके शरीर की त्वचा बेकार होने लगती है तथा वे क्रमिक ढंग से सुस्त पड़ते जाते है।

पोषण संबंधी कमी

जब किसी व्यक्ति का पोषण न्यूनतम अनुशांसित जरूरतेां से लगातार कम होता है, तो वह कुपोषण संबंधी कमी का शिकार हो जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 10 से 19 साल तक के बच्चों में यह बीमारी पूरी दुनिया में आम है।

विटामिन बी 1

थायमिन या विटामिन बी 1, पानी मे घुलनशीत विटामिन है, जो ऊर्जा उत्पादन एडीनोसिन ट्राई फास्फेट के संश्लेषण और नसों के फैलने से बनती है एटीपी मानव शरीर द्वारा कामा किये जाने की ऊर्जा प्रदान करने का प्रमुख स्रोत है में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। थायमिन पोर्क, लेग्यूम और जो में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है इसके विपरीत अरवा चावल, सफेद आटा, परिष्कृत चीनी, वसा और तेल में यह नहीं पाा जाता है। जो लोग अधि ाक मात्रा में एल्कोहल का सेवन करते हैं या आध ुनिक जीवन शैली में रहते हैं, उन्हें थायमिन की कमी का खतरा रहता है। ऐसे लागों में खनिजों की कमी भी आम है।

बेरी बेरी नामक बीमारी थायमिन की कमी का उदाहरण है। इसके लक्षणों में स्नायु तंत्र का असामान्य होना, पांव में मोच या मांसपेशियां का कमजोर होना, बांह में सूजन, नब्ज की गति तेज होना तथा हृदय गति रूकना शामिल है। वर्निक कोर्साकोफ सिंड्रोम इसमें जुड़ी एक स्थिति है, जिसमें बेहोशी असामान्य बातचीत और स्मरण शक्ति कमजोर हो जाती है। यह आमतौर पर एल्कोहल लेनेवालों को होती है।

विटामिन बी 3

पेलेग्रा पोषण की कमी या नियासीन अथवा अमीनो एसिड ट्रिप्टोफेन लेने में विफलता से होनेवाली एक बीमारी है। पेलेग्रा का अर्थ है खुरदरी त्वचा। इसके लक्षण तीन हैं, यानी डीमेंसिया, डरमेटाइटिस, और डायरिया।

खनिज की कमी, कैल्शियम और विटामिन डी

ओस्टियोपोरोसिस, जो हड्डियों को कमजोर करने की बीमारी है, कुपोषण के कारण हड्डियों को

प्रभावित करनेवाली सबसे आम बीमारी है। हड्डियों को प्रभावित करनेवाली सबसे आम बीमारी हैं। हड्डियों की मजबूती 35 साल की उम्र तक बढ़ती है, उससे अधिक गति से दरकने लगती है, जिससे हड्डियां कमजोर होती जाती हैं और कैल्शियम की कमी हो जाती है महिलाओं के लिए उम्र संबंधित इस बीमारी के आलावा रजानिवृत्ति तथा महिला हार्मोन की कमी के कारण हड्डियो मे कमजोरी पैदा होने लगती है। ओस्टियोपोरेासिस से ग्रस्त लोग 30 से 40 प्रतिशत तक कैल्शियम की कमी झेलते हैं, जिसके कारण उनकी हड्डियां टूटने लगती हैं।

ओस्टियोपोरोसिस के विकास के कई कारण होते हैं। धूम्रपान, एल्कोहल ओर अनियमित जीवन के कारण यह बीमारी होती है। उम्र और लिंग भी इसके महत्वपूर्ण कारक हैं। जिन महिलाओं मे एस्ट्रोजन की कमी होती है, उन्हें यह बीमारी होने का खतरा अधिक होता है। पुरूषों की हड्डियां महिलाओं के मुकाबले अधिक मजबूत होती हैं, इसलिए उनमें यह बीमारी कम ही होती है। इसमे प्रजाति की भी भूमिका है।

विटामिन डी

कभी रिकेट्स को बाल्यावस्था में होनेवाली आम बीमारी की संज्ञा दी गयी थी। सूखा रोग से ग्रस्त बच्चों की पहचान टेढ़े मेढ़े पैर और मुड़े घुटने से की जा सकती है। इसके कारण इनकी शरीरिक बनावट बेढंगी होती है। सूखा रोग विटामिन डी की कमी से होती है। विकास के दौरान मानव शरीर की हड्डिया कैल्शियम, फास्फोरस और विटामिन डी के संयोग से बनती तथा विकसित होती है। कैल्शियम अपरिपक्त हड्डियों में जमा रहता हे। इस प्रक्रिया को कैल्शिफिकेशन कहा जाता है। इसके अपरिपक्व हड्डी क्रमशः मजबूत होती है और आकार ग्रहण करती है। भोजन में मौजूद कैल्शियम को ग्रहण करने श्के लिए विटामिन डी की जरूरत होती है। रिकेट्स में इस विटामिन की कमी के कारण कैल्शियम की मात्रा कम हो जाती है और हड्डियां विकृत हो जाती है।

विटामिन डी एकमात्र ऐसा विटामिन है, जो भोजन से भी मिलता है और खुद शरीर भी इसका उत्पादन करता है। हालांकि विटामिन डी पशुओं की चर्बी, जैये दूध, पनीर, मछली, और मांस में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, लेकिन यह शरीर की आवश्यकता का मात्र 10 प्रतिशत ही दे पाता है। शेष 90 प्रतिशत का उत्पादन शरीर खुद करता है। समुचित विटामिन डी के बिना शरीर भोजन में मौजूद कैल्शियम की मात्र 10 से15 फीसदी मात्रा ही ले सकता है। इसलिए विटामिन डी, कैल्शियम और फॉस्फेट का संतुलन हड्डियों के विकास ओर रखरखाव विशेष कर बच्चों के लिए बहुत आवश्यक है। यह कम बुजुर्गों में भी हो सकती है।

विटामिन ए की कमी से अंधापन

अच्छी तरह देखने के लिए विटामिन ए बहुत जरूरी है। बच्चों में विटामिन ए की कमी से आख की रोशनी कम पड़ जाती है। यदि यह कमी बहुत अधिक होती है तो इससे स्थायी अंधापन भी हो सकता है। हमारे देश में हर साल 30 हजार बच्चे विटामिन ए की कमी के कारण अधे होते है। विटाामिन ए की कमी के लक्षण 5 साल की आयु मे बच्चों में आधिक पायी जाती है।

विटामिन ए की कमी के लक्षण

विटामिन ए की कमी से बच्चों मे अंधेपन अचानकी नहीं होता। विटामिन ए की कमी का यदि पहले पता चल जाये, तो विआमिन ए युक्त पौष्टिक भोजन लेकर इसे रोका जा सकता है।

विटामिन ए की अत्यधिक कमी के लक्षण

रतोंधी इसका पहला लक्षण है। रतौंधी से पीड़ित बच्चे कम रोशनी या अंधेरे में नही देख सकते। आंखों का सफेद हिस्सा सूख जाता है और इसकी चमक खत्म हो जाती है इन लक्षणों की पहचान होने पर तत्काल डॉक्टर से संपर्क करें। यदि इनका नहीं किया जाये, तो हमेशा के लिए अंधा हेाने का खतरा होता है।

विटामिन ए की कमी रोकने के उपाय

ऐसा भोजन लें, जिनमे विटामिन ए अधिक हो। दूध, अंडे, मछली के तेल आदि में विटामिन ए अधिक होता है। पत्तेदार सब्जी, हरी सब्जी, गाजर, पपीता और आम जैसे फल भी अच्छे स्रोत है। राष्ट्रीय पोषण संस्थान,हैदराबाद द्वारा किये गये शोध के अनुसार 1 से 5 साल तक के बच्चों को छह महीने में एक बार एक चम्मच विटामिन ए सीरप पिलाने से भी विटामिन ए की कमी पर कुछ हद तक रोक लगायी जा सकती है।

जब बच्चों को छह महीनें मे एक बार विटामिन ए की दवा पिलायी जाती है, तो यह उनकी आंत में जमा रहता है और शरीर को समुचित मात्रा में उपलब्ध होता है। हमारे देश में यह सिलसिला अभी चल रहा है, ताकि बच्चों को विटाामिन ए की कमी के कारण होनेवाते अंधेपन से बचाया जा सके। गर्भवती महिलाओं को विटामिन ए युक्त भोजन लेना चाहिए। इससे शिशु को खुद विटामिन ए की खुराक मिलती है।

बढ़ते बच्चों के लिए पौष्टिक भोजन – बढ़ते बच्चों को पौष्टिक भोजन की बहुत जरूरत होती है। बच्चों के शरीर में जब प्रोटीन और कैलोरी की कमी होती है, तो उनमें मरास्मस और क्वाशियोरकर जैसी बीमारियां होती हैं। मेरास्मस और क्वाशियोरकर किसे होता है यह 1 से 5 साल तक की आयु के बच्चे को होता है।

मेरास्मस के लक्षण

यह बीमारी पैर में सूजन के साथ शुरू होती है और फिर हाथ तथा शरीर फूलने लगता है। त्वचा खुरदुरी होती है, सिर पर बाल कम होते हैं और उनका रंग लाल भूरा होता है यह मेरास्मस के लक्षण हैं इससे ग्रस्त बच्चे बीमारी और थके थके नजर आते हैं।

क्वाशियोरकर के लक्षण

इस बीमारी से ग्रस्त बच्चे कमजोर और दुबले होते हैं। बच्चों को शुरूआती दिनों में डायरिया हो सकता है। उनकी त्वचा रूखी होती है।

इन बीमारियों से ग्रस्त बच्चों के इलाज के लिए सलाह–बच्चों को नियमित रूप से कैलोरी और प्रोटीन युक्त पौष्टिक भोजन दें। बहुत अधिक संक्रमित बच्चों को तत्काल डॉक्टर से पास ले जायें। मेरास्मस और क्वाशियोरकर से प्रभावित बच्चों का आहार राष्ट्रीय पोषण संस्थान, हैदराबाद ने मिक्स नामक पौष्टिक भोजन विकसित किया है, जिसमें सभी पौष्टिक तत्वों का मिश्रण है। यह मिश्रण घर में भी तैयार किया जा सकता है।

तालिका क्रमांक 03

पौष्टक मिश्रण मे उपयोग की जानेवाली पदार्थ

क्रमांक	खाद्य पदार्थ	ग्राम
1	भुना हुआ गेहूं	40
2	पत्तेदार सब्जियां व अनाज	16
3.	मूंगफली	10
4	जैगरी	20

इस मिश्रण को पीस लें और अच्छी तरह मिला लें। इसमें 330 ग्राम कैलोरी और 11 ग्राम प्राटीन होता है। इस मिश्रण को दूध या पानी के साथ खिलायें। मरास्मस या क्वाशियोरकर से ग्रस्त बच्चों को इसे खिला कर इसका परीक्षण किया गया।

कृषि को अधिक उत्पादक बनाना ताकि बेहतर पोषण उपलब्ध हो सके। आय वर्धन कार्यक्रमों को गरीबी एवं कुपोषितों के लिए और अधिक लक्षित करना। खाद्यान्न के दरों को नियंत्रित रखना। खाद्य असुरक्षा की सतत निगरानी करना। महिला और बच्चों की देखरेख

समाज और घर में महिलाओं की भूमिका को मजबूत करना। स्वास्थ्य जल और स्वच्छता लोक स्वास्थ्य का विस्तार करना। स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता बढ़ना। स्वास्थ्य सेवाओं के साथ पोषण को भी सम्मिलित करना। उचित मात्रा में गुणवत्ता पूर्ण पनी की पहुंच बढ़ाना। अच्छे स्तर की स्वच्छता सुनिश्चित करना। आर्थिक विकास गरीबी कम करने वाली आर्थिक वृद्धि के प्रभाव को बढ़ाना। लोकतंत्र को बढ़ावा देना और मानव अधिकारों की रक्षा करना। वैश्वीकरण के खतरों से गरीबों की रक्षा करना और उन्हें अधिक अवसर और दक्षता प्रदान करना। कुपोषण नियंत्रण में समेकिन बाल विकास सेवा की भूमिका भारत में समेकित बाल विकास सेवा एक मात्र कार्यक्रम है जो सीधे कुपोषण निवारण के लिये जिम्मेदार है। यह आंगनवाड़ियों के एक विस्तृत नेटवर्क द्वारा संचालित होता है जिसमें पूरक पोषण, स्कूल पूर्व शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओ की बच्चों, गर्भवति एवं धात्री महिलाओं और कुपोषित बालिकाओं तक पहुंचाना अपेक्षित है। किन्तु आंगनवाड़ियों की प्रभाविता कई कारणों से बाधित होती है। केन्द्रों की अपर्याप्त संख्या, कम मानदेय प्राप्त आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, 3 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिये झूलाधर की अनउपलब्ध ाता जैसी समस्यायें धरातल पर नजर आती है। वृहद स्तर पर राजनैतिक इच्छा शक्ति और बजट प्रावधान में कम प्राथमिकता इसे प्रभावित करती है। वर्तमान में सकल घरेलू उत्पाद का 3000 करोड़ रुपयों का प्रावधान सकल घरेलू उत्पाद का 1/10वां हिस्सा भी नहीं हैं। यह तथ्य और स्पष्ट होता है जब हम इसकी तुलना रक्षा के लिये किये गये आवंटन से करते हैं। यदि संसद में बच्चों के लिए उठाये जाने वाले प्रश्नों को देखे तो यह दोनों सदनों में उठाये गए प्रश्नों का मात्र 3 प्रतिशत होता है। आश्चर्य की बात नहीं है– बच्चे मतदाता नहीं होते।

मध्यप्रदेश में आदिवासी क्षेत्र में मात्र 49784 आंगनवाड़ी केन्द्र है जबकि वास्तविक आवश्यकता 1.10 लाख केन्द्रों की है। इसी प्रकार शहरी क्षेत्रों में अब भी 16849 केन्द्रों की जरूरत है।

कुपोषण इस प्रकार एक जटिल समस्या है। घरेलू खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना आवश्यक है और यह तभी संभव है जब गरीब समर्थक नीतियां बनाई जाए तो कुपोषण और भूख को समाप्त करने के प्रति लक्षित हों। हम ब्राजील से सीख सकते हैं। जहां भूख और कुपोषण को राष्ट्रीय लज्जा माना जाता है। वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में जहां गरीबों के कल्याण को नजर अंदाज किया जाता है, खाद्य असरूक्षा बढ़ने के आसार नजर आते हैं। हम किसी प्रकार सरकार के निर्णय को स्वीकार कर सकते है जब वह लाखों टन अनाज पशु आहार के लिए निर्यात करती है और महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश जैसे राज्यों में कुपोषण से मौतों की मूक दर्शक बनी रहती है। आज के समय में किसानों को खाद्यान्न से हटकर नगदी फसलों के उत्पादन को बढ़ावा देने के कारण खाद्य संकट और गहरा सकता है और देश को फिर से खाद्यान्नों के लिए दूसरों पर निर्भर होना पड़ सकता है। हाल ही में जनवितरण प्रणाली को समाप्त करने के सरकार के प्रयास इस ओर इशारा करते हैं।

कुपोषण कार्यक्रमों और गतिविधियों से नही रूक सकता है। एक मजबूत जन समर्पण और

पहल जरूरी है। जब तक खाद्य सुरक्षा के लिये दूरगामी नीतियां निर्धारित न हो और बच्चों को नीति निर्धारण तथा बजट आवंटन में प्राथमिकता न दी जाए तो कुपोषण के निवारण में अधिक प्रगति संभव नहीं है।

सन् 1975 में यह मानते हुए कि कुपोषण और सतत बरकार रहने वाली भुखमरी की स्थिति को मिटाने बिना स्वएस्य् सत उत्पादिक और समता मूलक समाज स्थापित नहीं किया जा सकता है, समकित बाल विकास परियोजना शुरू की गई। तब एक व्यानपक नजरिये को आधार बनाकर आंगनवाड़ी कार्यक्रम की शुरूआत की गई थी। एक लंबे दौर तक इस कार्यक्रम को दोयम दर्जे का महतव दिया जाता रहा है। 31 साल गुजर गये किन्तु बचपन की भुखमरी को समाप्त नहीं किया जा सका।

संदर्भ स्रोत –

1. दास टी.सी. (1945) द पुरुम्स, एन ओल्ड कुकी ट्राइब आफ मणिपुर इन एंथ्रोपोलॉजिकल पेपर्स, युनिवर्सिटी आफ कलकत्ता।
2. दत्ता मजूमदार एनत्र(1956) – द संथाल : ए स्टडी इन कल्चर चेंज मेनेजर ऑ पब्लिकेशन्स, गवर्नमेंट आफ इण्डिया प्रेस, कलकत्ता।
3. बालारत्नम् एल.के. (1981) सर्पेन्ट वर्शिप इन केरला, मैन इन इण्डिया, खण्ड 26।
4. बसु, एम.एन. (1957) – मटेरियल एक्जिस्टेन्स आफ मेन, कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता।
5. विकीपिडया .2017
6. दैनिक भास्कर पत्रिका 2017

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

पंचायती राज में महिलाओं का योगदान

❐ डॉ. प्रवीर चन्द्र दुबे

शोध सारांश

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं का योगदान पंचायतों और स्थानीय निकायों में दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। महिलाएँ अपने योगदान के प्रति सचेत होने के बावजूद आज भी आर्थिक तथा सामाजिक अधिकारों से वंचित एवं उपेक्षित हैं। पंचायती राजव्यवस्था में महिलाओं के योगदान से तात्पर्य राजनीति में भागीदारी या नीति निर्माण से है। यह योगदान मतदाता स्तर से लेकर संसद तक होती है किन्तु आज वर्तमान समय में भी महिलाओं का योगदान हर स्तर पर देखने को मिलता है।

भारत में महिलाओं को सदैव सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यहाँ तक कहा जाता है कि महिला समृद्धि का वास होता है। वह सुख, शांति, राष्ट्रीय निर्माण की प्रक्रिया में अहम रहती है। जब तक वह विकास की धारा में अपनी सक्रिय भूमिका तथा भागीदारी नहीं निभाएंगी तब तक देश का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं है।

वास्तव में पंचायती राज व्यवस्था का प्रारंभ कब, कैसे, कहाँ से हुआ? हम यह वैदिक काल से सुनते-पढ़ते आ रहे हैं, परन्तु भारत में पंचायती राज व्यवस्था का अस्तित्व उस समय से माना जा सकता है जब से चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—की उत्पत्ति हुई। 'पंचायती राज' का शाब्दिक अर्थ 'पाँच प्रतिनिधियों के समूह का शासन'। ये पाँच प्रतिनिधि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और ईश्वर हैं। सभी चार वर्णों के लोग ईश्वर को साक्षी मानकर राज सामूहिक निर्णय लेते थे।

उसी के अनुसार शासन होता था जिसे पंचायती राज नाम दिया गया। भारत में 2 अक्टूबर, 1959 को पहली बार पंचायती राज राजस्थान के नागोर में लागू की गयी। भारत ने पंचायती राज के माध्यम से महिलाओं की राजनीति में भागीदारी बढ़ाने हेतु 50 प्रतिशत सीट वर्तमान में विकेन्द्रीकरण कर महिलाओं को सशक्त बनाने की विभिन्न योजनाएँ बनायी गयी। हम महिलाओं के योगदान को सामान्य तौर पर निम्न चार तत्त्वों द्वारा माप सकते हैं—

1. प्रबंधन एवं प्रशासन में उनकी भागीदारी का प्रतिशत।
2. व्यावसायिक एवं तकनीकी सेवाओं में उनका अनुपात।
3. संसद/विधान मण्डलों में महिलाओं की भागीदारी का अंश।
4. महिलाओं की प्रति व्यक्ति आमदनी और उनकी तुलनात्मक आर्थिक स्थिति।

भारत सरकार द्वारा वर्ष 2001 को महिलाओं सशक्तिकरण वर्ष के रूप में मनाया गया था और केन्द्र सरकार द्वारा पहली बार राष्ट्रीय उत्थान सरकार महिलाओं को समुचित विकास व समानता की आधारभूत व्यवस्थाएँ दीं। भारतीय संविधान में समानता अनु. 14 अवसर की समानता अनु. 16 समान वेतन अनु. 39 में और स्त्री

* संविदा सहायक प्राध्यापक (राजनीतिशास्त्र), यमुना प्रसाद शास्त्री महाविद्यालय, सिरमौर, रीवा (म.प्र.)

गरिमा जैसे उपबंध शामिल कर महिला सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त किया। 1971 में श्रीमती इन्दिरा गाँधी के समय पहली बार स्टेट्स आफ वूमैन कमेटी का गठन किया गया। इसी समय संयोग से 8 मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाने की घोषणा की गयी। 1975 पंचायती राज व्यवस्था लागू होने के पहले प्रश्न उठता था कि क्या महिलाएँ चुनाव में भाग लेने का साहस करेगी। क्या एकाएक पंचायती मंचों पर उन्मुक्त भाषण देंगी। क्या अफसर शाही शासन के समक्ष गाँव की समस्याओं को रखेगी?

लेकिन वर्तमान में इन प्रश्नों का जवाब मिल चुका है। महिलाओं की सक्रिय भागीदारी पंचायतों और स्थानीय निकायों में बढ़ती जा रही है। आज महिलाएँ पंचायत चुनाव लड़ते समय यह संकल्प कर चुनाव लड़ती हैं कि वह एक विद्यालय महाविद्यालय पढ़ने वाली लड़कियाँ यह तय कर पढ़ाई करती हैं कि वह दकियानूसी लालची और आधारिक समाज का हिस्सा नहीं बनेंगी। कार्य क्षेत्र के विभिन्न बैठकों में स्वयं बढ़-चढ़ कर भाग लेंगी न कि उनके पति या संबंधी अपने हस्ताक्षर हेतु किसी को घर न बुलाकर स्वयं अपने कार्यालय में उपस्थित होकर दायित्व का निर्वाहन करेंगी। महिलाओं का यही योगदान पंचायती राज के लिए प्रबल रहा है।

73वें संशोधन में महिलाओं को अधिकार प्रदान करने की घोषणा एक मील के पत्थर के समान है। पंचायतों में महिलाओं सहभागिता अनिवार्य हो गयी है। महिलाओं के लिए आरक्षण की घोषणा प्रारंभ प्रतिक्रिया एक तरफ उत्तेजनाभरी तथा खुशी प्रदान करने वाली है और दूसरी तरफ परेशानी की बात यह रही कि पंचायत के तीनों स्तरों के लिए चुनाव के समय हजारों और लाखों महिलाओं को खोजने की आवश्यकता है।

73वें संशोधन के अनुसार कम-से-कम एक तिहाई महिलाओं सभी स्थानीय स्वशासकीय निकायों तथा पंचायतों के स्तर पर निर्वाचित होगी। जिसमें पंच, सरपंच, प्रधान पंचायत समिति प्रमुख और जिला परिषद सभी स्तर पर सम्मिलित है। इस आरक्षण में अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़े वर्ग की महिलाओं को आरक्षण दिया गया। स्थानीय स्तर के सभी प्रमुख नीतियों जैसे निःशुल्क भूमि आवंटन आवास निर्माण उन्नत चूल्हा कार्यक्रम जवाहर रोजगार योजना समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम स्वरोजगार कार्यक्रम के कार्यान्वयन आदि में दे रही है। रोजगार योजना और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम स्वरोजगार कार्यक्रम के कार्यान्वयन आदि में दे रही है। रोजगार योजना और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम में लाभार्थियों महिलाओं के लिए क्रमशः 30 और 40 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गयी है।

महिलाओं पंचायती राज संस्थाओं में इन रूपों में सहभागी हो सकते हैं—

1. महिला मतदाता के रूप में योगदान।
2. राजनीतिक दलों के सदस्यों के रूप में योगदान।
3. महिला मण्डल के सदस्यों के साथ साझेदारी के रूप में।
4. प्रत्याशियों के रूप में योगदान।
5. पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित सदस्य के रूप में।

पंचायत राज व्यवस्था में जन सहभागिता के लिए आरक्षण शिक्षा तथा प्रशिक्षण महिलाओं दायित्व का बोध कराने की विश्लेषण की जरूरत है। महात्मा गाँधी जी का ग्राम स्वराज की कल्पना साकारा करने में पंचायती राज व्यवस्था महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. महात्मा गांधी, पंचायत राज, उद्धत सिंह एवं कुमार, ग्रामीण स्थानीय स्व-शासन पूर्वोक्त, पृ. 11
2. जवाहर लाल नेहरू, द रोल ऑफ पंचायत इन इण्डिया, ए.आई.सी.सी., न्यू दिल्ली 1957, पृ. 4
3. हमारे अधिकार–विविध साक्षरता एवं महिलाएँ, महिलाएँ समाख्या उत्तरांचल, सरस्वती प्रेस, देहरादून-2654194
4. चौहान उपेन्द्र उत्तर प्रदेश में ग्राम पंचायत प्रतियोगिता दर्पण, वर्ष 23(7), आगरा-2001, पृ. 44-46

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

रीवा जिले में जनसंख्या जनांकिकीय प्रवृत्तियाँ

❐ डॉ. एम.एल. तिवारी*
❐ सीमा दुबे**

आयु संरचना जनसंख्या में श्रमशक्ति को निर्धारित करती है। भारत में कार्यशील जनसंख्या का आयु वर्ग 15–60 वर्ष माना जाता है। आयु के अनुसार जनसंख्या का विवेचन विशेष महत्व रखता है। इससे इन अनेक बातों के संबंध में जानकारी प्राप्त होती है। जैसे कि शिक्षा–संस्थाओं में प्रवेश करने वालों की संख्या, श्रमशक्ति का आकार विवाह–योग्य आयुवाले व्यक्तियों की संख्या देश में मतदाताओं का अनुपात बुढ़े लोग आदि। इस प्रकार वयमूलक रचना का विवाह और मृत्युदर जनसंख्या के व्यावसायिक ढाँचे पर तथा देश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रियाओं पर भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। अस्तु आयु–श्रेणी की दृष्टि से किसी देश की जनसंख्या के विश्लेषण का महत्व स्पष्ट है।

1981 की जनगणना के अनुसार भारत में 0–14 वर्ष तक के आयु–वर्ग के बच्चों का अनुपात 40 प्रतिशत, 15–59 वर्ष तक के आयु–वर्ग के व्यक्तियों का अनुपात 54 प्रतिशत तथा 60 वर्ष का और उससे ऊपर के आयु–वर्ग का अनुपात 6 प्रतिशत के लगभग था। स्पष्ट है कि देश की जनसंख्या में बालकों का अनुपात बहुत अधिक है। विकसित देशों में बालकों का यह अनुपात 20 से 25 प्रतिशत के बीच हुआ करता है। भारत में बाल जनसंख्या के अधिक अनुपात का मूलकारण ऊँची जन्म दर है। हाल में शिशु–मरण में कमी आ जाने के फलस्वरूप भी बाल जनसंख्या में वृद्धि हुई है। भारत में शिशु–मरणदर 1951 में 183 प्रति हजार थी। जो घटकर 1981 में 114 प्रति हजार और 1991 में केवल 78 प्रति हजार रह गई थी।

बालकों की यह अधिकता वस्तुतः अनुत्पादक उपभोक्ताओं की अधिकता का सूचक है। इससे यह बात का बोध होता है कि देश की कार्यशील जनसंख्या पर आश्रितों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। साथ ही यह वर्धनशील जनसंख्या का भी परिचायक है–प्रो0 सैंड वर्ग के अनुसार यदि कुल जनसंख्या में बाल–जनसंख्या का अनुपात 40 प्रतिशत के लगभग है तो वह तेजी से बढ़ने वाली जनसंख्या होगी। इसके विपरीत यदि यह 20 प्रतिशत के लगभग है तो जनसंख्या की प्रवृत्ति घटने की ओर होगी। और यदि अनुपात 30 प्रतिशत के आसपास है तो जनसंख्या में स्थिरता की स्थिति पाई जाएगी। भारत में यह अनुपात 40 के लगभग है यह इस बात का संकेतक है कि देश की जनसंख्या वर्तमान जनसंख्या के अनुरूप है।

हाल के वर्षों में जन्म और मृत्यु–दर एवं प्रत्याशित आयु में परिवर्तनों के कारण वयमूलक

* प्राध्यापक, सेवानिवृत्त, जनता महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, शासकीय टी.आर.एस. महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

रचना में परिवर्तन आया। और भविष्य में अधिक तेजी से परिवर्तन आने की संभावना है। अनुमान है कि 0.14 वर्ष तक के आयु वर्ग के बच्चों का अनुपात 1981 में 40 प्रतिशत से घटकर 1992 में 35.6 प्रतिशत रह गया। आशा है कि यह अनुपात और गिरकर 2000 तक 32.7 प्रतिशत रह गया। इसके विपरीत कार्यकारी–आयु वर्ग 15.59 वर्ष के लोगों का अनुपात बढ़ेगा। यह अनुपात जो 57.7 प्रतिशत से बढ़कर 2000 में 59.8 प्रतिशत और 2007 में 62.3 प्रतिशत हो गया। इसके फलस्वरूप देश में आश्रितों के अनुपात में कमी आएगी। आश्रितों के इस अनुपात में कमी होने से जीवन–स्तर और बचन–क्षमता पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। साथ ही देश में स्कूल–शिक्षा फैलाने का काम कम दुष्कर हो सकेगा। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि को सीमित करने के अतिरिक्त जन्म–दर में कमी लाना, आश्रितों के अनुपात को घटाने एवं स्कूल–शिक्षा की सुविध ाओं में दबाव को कम करने की दृष्टि से भी विशेष महत्व रखता है। कार्यकारी आयु–वर्ग के लोगों के अनुपात में वृद्धि होने से हमें रोजगार–अवसरों के सृजन में और तेजी लानी होगी। अन्यथा बेरोजगारी की समस्या। और उलझ जाएगी। 60 वर्ष से ऊपर आयु वाले बूढे लोगों का अनुपात भी बढ़ेगा। यह अनुपात जो 1992 में 6.6 प्रतिशत था। वह बढ़कर 2000 में 7.5 प्रतिशत और 2007 में 8.3 प्रतिशत हो लेगा।

अतः हमें बूढे लोगों की देख–भाल की ओर अधिक ध्यान देना होगा। विशेष रूप से इस कारण कि आधुनिकीकरण और शहरीकरण के प्रभाव से संयुक्त परिवार प्रणाली का आधार और कमजोर होता जा रहा है।

जनसंख्या व प्रत्याशित आयु :–

जनसंख्या की उत्तमता किसी भी देश की एक महत्वपूर्ण जनांकिकी विशेषता है। जोकि लोगों की जीवन प्रत्याशा एवं साक्षरता की दृष्टि से देखी जा सकती है। किसी भी देश के लोग जन्म के समय से जीवित रहने के लिए जितने समय की आशा रखते हैं। उसे जीवन प्रत्याशा कहा जाता है।

किसी भी देश में प्रत्याशित आयु मुख्य रूप से मृत्युदर एवं मृत्यु के समय की आयु पर निर्भर होती है। यदि कम उम्र में मृत्युदर कम तथा मृत्यु के समय लोगों की आयु अधिक है। तो प्रत्याशित आयु अधिक होगी। भारत में जीवन स्तर निम्न होने के कारण लोगों को पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता जिसके फलस्वरूप संक्रामक बीमारियों से ग्रस्त हो जाते हैं। बच्चे कुपोषण के कारण शिशु अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार महिलाओं में प्रसूति काल में मृत्यु–दर अधि ाक होती है। परन्तु अब धीरे–धीरे स्वास्थ्य, जीवन–स्तर बाल, स्वास्थ्य एवं प्रसूति सेवाओं में विस्तार से बाल मृत्युदर में कमी आयी है। जिससे जीवन–प्रत्यासा में वृद्धि हो रही है।

1901–1911 की अवधि में जीवन प्रत्याशा 22.9 वर्ष थी जो कि 1971–81 की अवधि में बढ़कर 53.6 वर्ष और 1991–92 में 58.2 वर्ष हो गयी। इसी प्रकार 1996–2001 की अवधि में बढ़कर 53.6 वर्ष और 1991–92 में 58.2 वर्ष हो गयी।

इसी प्रकार 1996–2001 की अवधि में पुरुषों की प्रत्याशित आयु 62.3 तथा महिलाओं की 65.3 वर्ष हो गयी तथा यह अनुमान लगाया गया कि वर्ष 2006 एवं 2011 में पुरुषों एवं महिलाओं की प्रत्याशित आयु क्रमशः 63.8 एवं 66.9 तथा 65.6 एवं 67.7 हो जाएगी।

सारणी–क्रमांक–1
भारत में जीवन प्रत्याशा (वर्ष में)

अवधि	पुरुष	महिला	योग
1901–1911	22.6	23.3	22.9
1911–1921	19.4	20.9	20.1
1921–1931	26.9	26.6	26.8
1931–1941	32.1	31.4	31.8
1941–1951	32.5	31.7	32.1
1951–1961	41.9	40.6	41.3
1961–1971	47.1	45.6	46.4
1971–1981	54.0	53.0	53.5
1991–1992	57.7	58.7	58.2
1996–2001	62.3	65.2	63.7
2001–2006	63.8	66.9	65.3
2006–2011	65.9	67.7	66.8

विश्वबैंक प्रतिवेदन 2000–01 के अनुसार वर्ष 1998 में जन्म लेने वालों की औसत प्रत्याशित आयु भारत में पुरुषों की 62 वर्ष एवं महिलाओं की 64 वर्ष बतायी गयी है। जबकि फ्रांस, स्पेन, जापान तथा स्वीडन आदि देशों में प्रत्याशित आयु पुरुष एवं महिलाओं की 75 वर्ष से 85 वर्ष के बीच है परन्तु दूसरी ओर भूटान, यूथोपिया एवं अंगोला जैसे देशों की औसत प्रत्याशित आयु 42 से 48 वर्ष के बीच है।

जनसंख्या व साक्षरता :–

किसी भी देश में वहाँ की कुशल एवं साक्षर मानवशक्ति अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती हैं। साक्षरता एवं तकनीकी ज्ञान जनसंख्या की जीवन उत्तमता का अन्य महत्वपूर्ण पहलू है। साक्षरता एवं देश के समाजर्थिक विकास में धनात्मक सह–संबंध ा है। जनगणना की दृष्टि से वही व्यक्ति साक्षर माना जाता है। जो स्व–विवेक से किसी भाषा को पढ़–लिख सके। इस परिभाषा के अनुसार पढ़ना एवं लिखना दोनों आवश्यक है। स्वतंत्र भारत में साक्षरता के प्रति किये गये अथक प्रयासों के बावजूद भी साक्षरता का अनुपात अभी भी बहुत कम है।

साक्षरता :–

जनसंख्या से जुड़ा एक अन्य महत्वपूर्ण विषय साक्षरता की दर है। भारत के साक्षरता दर में पिछले दशकों से सतत् वृद्धि हुई है।

1951 में भारत की साक्षरता दर 18.33 प्रतिशत थी, वहीं यह 2001 में बढ़कर 64.8 प्रतिशत हो गयी 2011 के अंतिम आँकड़े के अनुसार साक्षरता 8.16 (1951) से बढ़कर 73.0 हो गई है। जहाँ साक्षरता दर में 8.16 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वही साक्षर जनसंख्या में 2001 की तुलना में वर्ष 2011 में 36.15 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई, पुरुषों में साक्षरता दर 80.9 प्रतिशत है। वहीं महिलाओं में 64.6 प्रतिशत है।

स्त्री–पुरुषों के बीच साक्षरता संबंधी यह अनुपात बहुत ही स्पष्ट है।

साक्षरता दर :–

7 वर्ष और उससे अधिक आयु वाली कुल जनसंख्या में साक्षरों के प्रतिशत को जनसंख्या की साक्षरता दर कहते हैं।

$$\text{साक्षरता - दर} = \frac{\text{साक्षरों की संख्या}}{7 + \text{आयु वाली जनसंख्या}} \times 100$$

साक्षरता–दर :–

किसी देश की जनसंख्या का गुणात्मक पहलू बड़ी सीमा तक साक्षरता के स्तर पर निर्भर करता है। साक्षर जनसंख्या का अनुपात जितना अधिक होगा, देश के आर्थिक और सामाजिक विकास में

स्पष्टतः उतनी ही अधिक सुविधा मिल सकेगी। निरक्षरता हर क्षेत्र या कार्यक्रम में बाधक है। चाहे वह परिवार–नियोजन या पंचायती राज की सकुचित स्थापना के कार्य को लें। अथवा अन्य किसी प्रकार के विकास या सुधार संबंधी कार्यक्रम को लें। इस दृष्टि से देश की स्थिति बहुत असंतोजनक ठहरती है। 1991 की जनगणना के अनुसार सात वर्ष और उसके ऊपर आयु वाले व्यक्तियों को लेते हुए। देश में साक्षरता की दर 52 प्रतिशत है। इस प्रकार लगभग आधी जनसंख्या निरक्षर है। इसके विपरीत अमरीका, इंग्लैड़, आस्ट्रेलिया आदि देशों में लगभग शत–प्रतिशत लोग साक्षर हैं। हाँ यह बात अवश्य है कि देश में इधर कुछ समय से साक्षरता की दर बढ़ती रही है। पिछली जनगणनाओं में पांच वर्ष और उससे अधिक आयु वाले व्यक्तियों को लिया गया था। इस आधार पर साक्षरता की दर 1951 में 18 प्रतिशत, 1961 में 28 प्रतिशत और 1981 में 41 प्रतिशत थी। इस प्रकार पिछले 40 वर्षों में साक्षरता दर लगभग तीन गुनी हो गई है।

ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में स्त्री–साक्षरता की दर पुरुष–साक्षरता से कम पाई जाती है। उदाहरण के लिए–1981 में पुरुष–साक्षरता की दर 46.9 प्रतिशत थी। यह दर ग्रामीण क्षेत्रों में 40. 8 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 65.8 प्रतिशत थी। उस वर्ष देश में स्त्री–साक्षरता की कुलदर 24.8 प्रतिशत थी। यह दर ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 17.9 प्रतिशत और शहरों के लिए 47.8 प्रतिशत थी। गांव और शहर तथा स्त्रियों और पुरुषों के संबंध में ही नहीं बल्कि देश के विभिन्न राज्यों में भी साक्षरता की दरों में भारी अंतर पाया जाता है। 1991 की जनगणना के अनुसार साक्षरता का स्तर केरल में सबसे अधिक है। 90 प्रतिशत और राजस्थान एवं बिहार में सबसे कम 38 प्रतिशत इस दृष्टि से जम्मू–कश्मीर, मध्यप्रदेश के रीवा जिला, अरूणांचल प्रदेश और उत्तरप्रदेश भी काफी पीछे ठहरते हैं।

देश के आर्थिक व सामाजिक विकास के लिए साक्षरता का तेजी से विस्तार किया जाना चाहिए। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों एवं उन राज्यों में जहाँ साक्षरता का स्तर अपेक्षाकृत बहुत नीचा है। स्त्री–साक्षरता के विस्तार की ओर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके लिए यही आवश्यक नहीं है कि अधिक धन–राशि की व्यवस्था की जाए। बल्कि शिक्षा–नीति में भी परिवर्तन जरूरी है। यह नीति इस प्रकार की होनी चाहिए कि प्राथमिक शिक्षा सबको मिल सके।

संदर्भ स्रोत :–

1. चौहान श्री शिवराज सिंह, मुख्यमंत्री म0प्र0 शासन, म0प्र0 में शिशु लिंगानुपात–स्टार समाचार 30 सितम्बर 2011
2. चौहान श्री शिवराज सिंह, मुख्मंत्री म0प्र0 शासन, बेटी है तो कल है बेटी बचाओ अभियान रोजगार और निर्माण, 17/10/2001 से 23/10/2011
3. सांख्यिकीय विभाग– म0प्र0 शासन, स्त्री, पुरुष लिंगानुपात 2001 से 2011 तक
4. दत्त गौरव व महाजन अश्विनी– भारतीय अर्थव्यवस्था, 51 संस्करण, एस0चांद एण्ड कम्पनी, प्रा0 लि0 रामनगर नई दिल्ली
5. तिवारी डॉ0 संजय, ग्रामीण विकासः–सरकार की विविध योजनाएँ ओमेगा पब्लिकेशन, दरियागंज नई दिल्ली
6. परमार जबर सिंह, मध्यप्रदेश दिग्दर्शन, अरिहंत पब्लिकेशन इण्डिया लि0मि0
7. मल्ल डी0के0, जनसंख्या एवं नगरीकरण एक सिंहावलोकन, मधुबन पब्लिकेशन इलाहाबाद (उ0प्र0)

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

गरीबों के विकास में स्वसहायता समूह की भूमिका

❐ डॉ. अनुपम सिंह

शोध सारांश

भारत सरकार ने ग्रामीण विकास मंत्रालय ने अप्रैल 1999 से ''स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना'' को मुख्य स्वारोजगार कार्यक्रम के रूप में स्वसहायता समूह द्वारा कार्यान्वित किया है जिसके द्वारा अत्यधिक गरीब व असहाय ग्रामीण अंचल के लोगों को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर उनके सर्वांगीण विकास के साथ ही देश के विकास में भी सहभागी बनाना है जिसमें मुख्य रूप से महिलाओं को स्वरोजगार से जोड़कर आत्मनिर्भर बनाकर सशक्त बनाना है।

मध्यप्रदेश की अधिकांश जनसख्या गाँवों में निवास करती है – पहले रोजगार और शिक्षा की कमी के कारण गरीबों की स्थिति अच्छी नहीं थी। जब सरकार ने 1999 के पहले जो योजनाएँ गरीबों के विकास के लिए बनाई थी ट्राइसेम दवकारा आदि ये सफल न हो सकीं क्योंकि बिचौलिए सरकार द्वारा गरीबों को दी जानी वाली सहायता का फायदा उठाते थे। गरीबों तक पूरी सहायता पहुँच ही नहीं पाती थी, इसलिए इन सभी योजनाओं को बन्द कर एक में ही समाहित कर 1999 में ''स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना'' बनी जो स्वसहायता समूह द्वारा गरीबों के विकास के लिए स्वयं स्वरोजगार के अवसर प्राप्त हो रहे हैं।

मध्य प्रदेश में स्वसहायता समूह के माध्यम से महिला सशक्तिकरण पर बल दिया जा रहा है महिला परिवार की रीढ़ है परिवार की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक उन्नति महिलाओं के सशक्त होने पर ही सम्भव है। पुरातन भारत मे यही रहा है, वर्तमान मे भी इसकी आवश्यकता को समझते हुए योजना विदों में राष्ट्रीय स्तर पर महिला सशक्तिकरण को लक्ष्य किया है।

पुराने महिला स्वसहायता समूहों के साथ–साथ गरीबी रेखा के नीचे के ऐसे परिवार जिनकी महिला स्वसहायता समूह से नहीं जुड़ी है उन्हें जागरूक कर नए स्वसहायता समूह गठित किए जा रहे हैं जिसमे इन्हें ग्राम पंचायत, जनपद पचायत, जिला पंचायत द्वारा पूर्ण जानकारी देकर उन्हीं से उपलब्ध साधनों को रोजगार से जोड़कर प्रशिक्षित किया जाता है। एक समूह में दस सदस्य होना जरूरी है जो कि गरीबी रेखा के नीचे होना जरूरी है यदि समूह में दस से कम सदस्य गरीबी रेखा के हैं तो इन समूहों में अनुदान की पात्रता व्यक्तिगत ऋण प्रकरणों के मापदण्ड से उपलब्ध करायी जाती है।

वित्तीय व्यवस्था

वर्तमान में ''दीन दयाल अन्त्योदय योजना राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन'' (DAY NRLM)

द्वारा स्वसहायता समूहों का सतत परीक्षण कर निर्देशों के अनुरूप उन्हें सशक्त करने हेतु विभिन्न स्तरों में विभाजित किया गया है।

1. सक्रिय समूह :– नियमित बैठक, नियमित बचत, आन्तरिक लेन–देन, ऋण वापसी दस्तावेज नियमित रखने वाले समूह यानी पंच सूत्र का पालन करने वाले समूह हैं।

2. अनियमित समूह :– उपरोक्त पंचसूत्र के पालन में नियमितता नहीं है।

3. निष्क्रिय समूह :–

(1) विवादग्रस्त समूह

(2) बन्द समूह

अब स्थिति यह कि आवश्यकता सभी समूहों को सक्रिय किया जा रहा है।

1. सक्रिय समूह :– बैंक लिंकेज कराना, समूह सदस्यों द्वारा आजीविका की निरन्तरता हेतु गतिविधियों का चयन।

2. अनियमित समूह :– पंच सूत्र पर नियमित कराना, बैंक लिंकेज, गतिविधि स्थापना।

3. निष्क्रिय समूह :–

1. विवादग्रस्त :– समूह की बैठकें नियमित कराकर आपसी विवाद समाप्त कर समूह को पंचसूत्र में स्थापित करना ।

2. बन्द समूह :– समूह के सदस्यों को सक्रिय कर समूह को पंचसूत्र पर लाना।

गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों के लिए ऋण संबंधी जानकारी पंचायत सचिव से लेकर ग्राम सभा के माध्यम से आवेदन किया जाता है। यहाँ कार्य न होने पर जनपद का मुख्य कार्यपालन अधिकारी से मिला जाता है ।

सक्रिय समूहों को परीक्षण उपरान्त दीनदयाल अन्त्योदन योजना राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन से मूल्यांकन अनुसार 10,000 से 15,000 के मध्य चक्रीय राशि उपलब्ध करायी जा रही है।

बैंक लिंकेज

जिन महिलाओं स्वसहायता समूहों ने गतिविधि प्लान बनाए हैं ऐसे समूहों को क्रेडिट लिंकेज किए जाने हेतु क्रमशः राशि उपयोगिता के आधार पर बढ़ते क्रम में खण्डवार दिया जाना है।

प्रथम अंश :– समूह के पास प्रस्तावित कोष के 4–8 गुना अधिकतम 50,000 इसमें जो भी अधिक हो दिया जाता है।

द्वितीय अंश :– मौजूद कोष के 5–10 गुना और अगले 12 महीनों के दौरान बचत अथवा 1,00,000 रू जो भी अधिक हो।

तृतीय अंश :– स्वसहायता समूहों द्वारा तैयार किए गए और फेडरेशन सहायता एजेंसी द्वारा मूल्यांकित माइक्रोक्रेडिट प्लान तथा पिछले क्रेडिट रिकार्ड के आधार पर न्यून्तम 2,00,000 रू.।

चतुर्थ अंश :– चौथे अंश के लिए राशि 4 से 10 लाख के बीच अथवा बाद वाले अंशों में उच्चतर हो सकती है।

उक्त ऋण राशि स्वसहायता समूहों और उनके सदस्यों के माइक्रोक्रेडिट प्लान के आधार पर होगी। साथ ही ऋण पर 7% ब्याज बैंक द्वारा निर्धारित होगा। उधार की कार्यनीत के मूल्यांकन पर 3% ब्याज अनुदान NRLM से समूह उधार खाते में सीधे देय होगा।

एक विशेष बात यह भी होती है कि महिला समूह बैंक लिंकेज से प्राप्त ऋण अपने महिला सदस्यों को उपलब्ध करते हुए बैकिंग कार्य करता है। इस प्रकार स्वयं स्वरोजगारमुखी इस योजना में समय–समय पर नए अवसरों के साथ पूरे मध्यप्रदेश में अधिक–से–अधिक महिलाओं को रोजगार से जोड़ा जा रहा है।

मैंने इस योजना का बड़ी गहनता से अध्ययन किया है। सरकार ने इस योजना द्वारा समाज से गरीबी दूर कर महिलाओं को सभी क्षेत्र में आगे

आने का अवसर प्रदान किया है। 1999 के पहले हमारे मध्यप्रदेश में ग्रामीण अंचल में गरीब परिवारों की स्थिति बड़ी दयनीय थी। न रोजगार के अवसर न शिक्षा की इतनी अच्छी व्यवस्था। लेकिन अब निरन्तर वर्तमान स्थिति यह है कि चारों ओर दूर–दूर ग्रामीण अंचल में भी रौनक आ गयी है महिलाएँ स्वावलंबी हो गयी है। रोजगार से जुड़ने के साथ ही पारिवारिक दायित्व का निर्वहन अच्छे से कर रही है और हर क्षेत्र में आगे आ रही है। सरकार इन्हें सभी सहायता दे रही है और समूहों द्वारा छोटे–छोटे अच्छे उद्योग शुरू हो गए है और भी सामानों के बिक्री के लिए सरकार द्वारा इन्हें साप्ताहिक बाजार भोपाल हाट आदि जैसी व्यवस्था की हुई है।

अतः ग्रामीण क्षेत्र के गरीबों का बहुत तीव्रता से विकास हो रहा है इस योजना के माध्यम से।

इसलिए महिला स्वसहायता समूह स्वैच्छिक संगठन महिला सदस्यों के परिवार के सर्वान्नमुखी विकास के लिए अग्रसर है। पंचायत राज पद पर पदस्थ महिलाएँ SHG को सशक्त करने में हर स्तर पर प्रयासरत हैं।

राजनौतिक सशक्तिकरण में महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी है। जैसे त्रिस्तरीय पंचायती राज में ही देखें।

ग्राम पंचायत :–

(1) पंच 50% अधिक

(2) सरपंच 50%

जनपद पंचायत :–

(1) सदस्य 50%

(2) अध्यक्ष 50%

जिला पंचायत :–

(1) सदस्य 50%

(2) अध्यक्ष 50%

इस प्रकार ग्रामीण महिलाएँ जागरूक हो रही हैं और धीरे–धीरे सभी क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं, व समाज के पूर्ण विकास में अपनी भागीदारी सुनिशचित कर रही हैं।

संन्दर्भ

1. स्वसहायता समूह, गठन प्रक्रिया एवं मागदर्शन पृ. क्र. 55–57
2. उद्यमिता विकास केन्द्र म.प्र., भोपाल
3. भारत में ग्रामीण विकास
4. मध्यप्रदेश पंचायती राज अधिनियम 1981 – व्ही. एस. कौरव.
5. आया अपना सुराज हर हाथ को काम, शहडोल मध्यप्रदेश
6. ग्राम विकास एवं ग्रामीण नेतृत्व के उभरते प्रतिमान– संदीप परमार
7. योजना पत्रिका
8. एस–जी. एस. बाई. प्रशिक्षण सीरीज–1 भारत सरकार
9. स्वसहायता समूह गठन प्रक्रिया व मार्गदर्शन
10. लोक संदेश मध्यप्रदेश विकास

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

भारतीय समाज की सुसंस्कृत संरचना में साहित्य का योगदान

❐ डॉ. रेखा रानी

शोध सारांश

साहित्यकार का प्रयोजन होता है अपने काव्य सृजन से अधिक से अधिक समाज देश और मानव का उत्थान करना। इसी प्रयोजन की प्राप्ति के निमित्त कवि काव्य का सृजन करता है। अर्थात् साहित्य और समाज का अटूट सम्बन्ध है। साहित्यकार उस सम्बन्ध को दृढ़ बनाने के लिए मानव जीवन के उन महत्त्वपूर्ण पहलुओं को अपने काव्य द्वारा उद्‌घाटित करता है जिससे एक उत्कृष्ट राष्ट्रा समस्त जगत में प्रकाश भरता है कविता मानव मन में उदात्त गुणों का विकास करती है। कविता पारिवारिक, सामाजिक राष्ट्रीय व वैश्विक स्तर पर मानव में सद्‌विचारों को प्रतिस्फुटित कर उसके जीवन को पूर्णतः सफल बनाती है। इसलिए कवि के बिना सम्पूर्ण जगत अन्धकारमय मालूम पड़ता है। कवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में प्राप्य भारत-भारती में कहा भी है—

''है अन्ध-सा अन्तर्जगत् कवि-रूप सविता के बिना,
सद्‌भाव जीवित रह नही सकते सु-कविता के बिना।''[1]

किसी भी काव्य अथवा साहित्य की रचना किसी विशिष्ट प्रयोजन को लेकर होती है, क्योंकि बिना प्रयोजन के संसार में कोई भी कार्य नहीं होता है। साहित्य का सीधा सम्बन्ध जीवन से है इसीलिए जीवन की सफलता के सभी उद्देश्य साहित्य के उद्देश्य हैं। साहित्य जितने प्रभावशाली ढंग से शिक्षा देकर जीवन को सफल बना सकता हैं। ज्ञान के स्तर क्षेत्र इतने प्रभावशाली और स हज तरीके से मानव मन को प्रेरित नहीं कर सकते हैं—

जिस प्रकार सृष्टि का विशेष उद्देश्य मंगल भाव है, उसी प्रकार साहित्य का भी विशेष प्रयोजन समाज का मंगल ही है। साहित्यकार मानव की आन्तरिक उद्वेलना को शान्त कर उन्हें एक नवीन जीवन की प्रेरणा प्रदान करता है, जो एक औषधि की तरह कार्य करती है। साहित्यकार मानवीय व्यक्तित्व में सामंजस्य कर उनके अनुभवों को मधुर, सरस एवं संगीतमय बना आनंदित कर देता है। उनकी बौद्धिकता का विकास कर धूमिल हुए चित्रों को स्पष्ट करता है। साहित्य व्यक्ति को उसके वास्तविक सामाजिक स्वरूप से परिचित कराता है। साहित्यकार का सम्पूर्ण साहित्य प्रयोजन ही लोक मंगल, लोक कल्याण की सहज भावना से आप्लावित होता है।

* बैकुण्ठी देवी कन्या महाविद्यालय, आगरा

जीवन से साहित्य का अटूट सम्बन्ध होने से काव्य समाज की ही अभिव्यक्ति है, इसलिए जीवन के आदर्श और प्रयोजन ही साहित्य के आदर्श और प्रयोजन हैं। पुरुषार्थ चतुष्ट्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति भी भारतीय जीवन दर्शन का आधार मानी गयी है। साहित्य से जीवन का निकट सम्बन्ध होने के कारण साहित्य का प्रयोजन भी इनकी प्राप्ति रहा है।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पुरुषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति हेतु महाभारत से बढ़कर शायद दूसरा ग्रन्थ नहीं है। रामायण, महाभारत भारतीय संस्कृति के अनमोल रत्न हैं। पं बलदेव उपाध्याय के शब्दों में, ''रामायण और महाभारत हमारे जातीय इतिहास हैं।'' [2] भारतीय सभ्यता व संस्कृति का काव्य रूप इन ग्रन्थों में से जिस प्रकार फूट कर निकलता है, वैसा अन्यत्र नहीं। महाभारत को पुरुषार्थ चतुष्ट्य प्राप्ति का साधन माना गया है। यह ग्रन्थ चारों पुरुषार्थों की उपलब्धि कराने वालों, सम्पूर्ण कार्यों का साधक एवं कोकिल के मधुर गान की भाँति पूर्णतया तापनाशक है—

''धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भारतवर्षम्
यदि हस्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।''[3]

गोवर्धनाचार्य ने भी महाभारत के महत्व का वर्णन करते हुए लिखा है—

''व्यासगिरां निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे।
भूषणतयैव सज्ञां यदङ्गितां भारती वहति॥''[4]

महाभारत के महत्व को देखते हुए इसे पंचमवेद कहा जाता है। इसमें नीति, धर्म एवं आचार-विचार की दृष्टि से भारतीय आत्मा का यथार्थ वर्णन हुआ है। ''रामायण और महाभारत दोनों भारतीय संस्कृति के अनमोल रत्न हैं। जिसमें भारत की एकता तथा राष्ट्रीयता के दर्शन होते हैं। भारतीय संस्कृति का जैसा सजीव एवं गत्यात्मक चित्रण इस ग्रन्थ युगल में हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। सांसारिक दृष्टि से दोनों दो भिन्न काल की रचनाएँ हैं।

रामायणकालीन संस्कृति का प्राण धर्म था तो वहीं महाभारत काल में कर्म को विशेष महत्त्व दिया गया है। रामायणकालीन संस्कृति विशेष उन्नत अवस्था में थी। उसमें आदर्श का, सदाचार का, त्याग व तप का महत्त्व था, तो महाभारतकालीन संस्कृति में यथार्थ का महत्त्व था। दोनों युगों के सांस्कृतिक आदर्शों का महान अन्तर दोनों रचनाओं में चित्रित समाज के आदर्शों में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

कवि को अपने आत्मसन्तोष के साथ लोक कल्याण को ध्यान में रखकर काव्य रचना करनी चाहिए क्योंकि साहित्य और समाज में अटूट सम्बन्ध है और कवि समाज का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए वैचारिक रूप से उसे समाज का दर्पण कहते हैं। वह लोक मंगल की चिन्ता किये बिना कार्य नहीं करता। तुलसी ने काव्य प्रयोजन की ओर संकेत करते हुए रामचरितमानस में लिखा है कि ''यश, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गंगा जी की तरह सबका हित करने वाली हो।''

''कीरति भनिति भूति भलि सोई,
सुरसरि सम सब कहँ हित होई।''[5]

मैथिलीशरण गुप्त मानवता के उत्कर्ष के लिए ही साहित्य की रचना मानते हैं। उनके विचार में वही साहित्य उच्च होता है जो सत्य का उद्घाटक हो, क्योंकि सत्य ही हमारे समाज की महत्त्वपूर्ण शक्ति है।

''साहित्य मानव-जीवन के सत्य को सुन्दर से आवेष्ठित कर, मानव के सत्य को शिवं से परिपूर्ण कर देता है।''[6]

गुप्तजी ने काव्य को मानव-जीवन का प्रकाश कहा है, क्योंकि साहित्य मानव का कल्याण कर उसके जीवन में नवस्फूर्ति का संचरण करता है। इसलिए ''साहित्य का उच्च कोटि का होना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उच्च साहित्य ही अमर होता है। श्रेष्ठ साहित्य ही समाज की सच्चाई को व्यक्त करता है। साहित्य जितना श्रेष्ठ होगा, वह उतना ही समाज का उत्थान करेगा। गुप्तजी ने इस सच्चाई को स्वीकार किया है।''[7]

व्यक्ति का जीवन भले ही समाप्त हो जाए, लेकिन साहित्य उसकी जीवन गाथा को अभिव्यक्त करके चिरस्थाई

रूप प्रदान करता है। इसलिए उन्होंने कला को कल के लिए नहीं अपितु कला को जीवन के लिए स्वीकार किया है—

''किन्तु होना चाहिए कब क्या कहाँ,
व्यक्त करती है, कला ही यह यहाँ॥''[8]

गुप्तजी ने प्रत्येक कला का मुख्य गुण आनन्द प्राप्ति को माना है। कला ही आनन्द, सत्य और शिव का प्रतिनिधित्व करता है। कला ही सत्य-असत्य, शिव-अशिव, सुन्दर-असुन्दर का ज्ञान कराती है। उन्होंने अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति को ही कला माना है।

''अभिव्यक्ति को कुशल शक्ति ही तो कला है।''[9]

मैथिलीशरणगुप्त ने ऐसे काव्य साहित्य का निर्माण किया, जिससे मानव अपने चरित्र को उदात्त बना सके। जो लोक हित का साधक बन सके। जिसका प्रयोजन भारतीय समाज का मंगल करना हो, वे जन साधारण में ही भारतीय समाज के सर्वांगीण विकास की परिकल्पना करते हैं। उन्होंने असद् विचारों का परिष्कार तथा सद्विचारों का नवीनीकरण करके एक आदर्श समाज की कल्पना की है। गुप्तजी ने सभी देशवासियों को अपने मंगल के लिए प्रेरित करते हुए कहा—

''होकर निराश कभी न बैठो, नित्य उद्योगी रहो, सब देश हितकारी कार्य में अन्योन्य सहयोगी रहो। धर्मार्थ के भोगी रहो बस कर्म के योगी रहो, रोगी रहो तो प्रेम-रूपी रोग के रोगी रहो॥''[10]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य के दो उद्देश्य बताए हैं। पहला है, काव्य का किस प्रकार से मानव समाज पर प्रभाव पड़ता है और दूसरा है, संवेदनीयता या प्रेषणीयता। काव्य का सर्वसाधारण के लिए प्रभावोत्पादक एवं प्रेरणादायी होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रेरणा पर बल देते हुए शुक्ल जी कहते हैं—''एक की अनुभूति को दूसरे के हृदय तक पहुँचाना यही कला का लक्ष्य होता है।[11] साहित्य ही मानव में कर्म करने के प्रति जाग्रति उत्पन्न कर देता है। उसमें अपने उत्तरदायित्त्व को समझने और संभालने की क्षमता भी विकसित हो जाती है।

काव्य के अनुशीलन से मानव हृदय का विकास हो जाता है। उसमें लोकमंगल की भावना बलवती हो जाती है। ''काव्य का लक्ष्य है जगत् और जीवन के मार्मिक पक्ष को गोचर रूप में लाकर सामने रखना, जिससे मनुष्य अपने को व्यक्तिगत संकुचित घेरे से अपने हृदय को निकाल कर उसे विश्वव्यापी और त्रिकालवर्तिनी अनुभूति में लीन करे। ''इसी लक्ष्य के भीतर जीवन के ऊँचे से ऊँचे उद्देश्य आ जाते हैं।''[12] वर्ड्सवर्थ साहित्य के प्रयोजन में उपदेश के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि प्रत्येक कवि महान शिक्षक होता है—''काव्य का उपयोग मनुष्य का अस्तित्व के ढाँचे में सुधार के लिए होना चाहिये।''[13]

साहित्य में रवीन्द्रनाथ टैगोर का नाम एक समुद्र की तरह था। जिसकी गहराई अथाह थी। जिसे कभी मापा नहीं जा सकता था। उनकी कविताएँ और कहानियाँ विश्व को एक अलग रास्ता दिखाती हैं। साहित्य की विभिन्न विधाओं में महारथ हासिल करने वाले रवीन्द्रनाथ टैगोर ने साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में लगन और ईमानदारी से काम किया। ''टैगोर की लोकप्रिय रचनाओं में सबसे लोकप्रिय रचना गीतांजलि रही है।'' ''वे विश्व के एकमात्र ऐसे साहित्यकार थे जिनकी दो रचनाएँ दो देशों का राष्ट्रगान बना।''[14] भारत का राष्ट्रगान—''जन-गण-मन'' और बांग्लादेश का राष्ट्रगान—''आमर सोनार बांग्लो''। उनके लिए समाज व समाज में रह रही महिलाओं का स्थान तथा नारी जीवन की विशेषताएँ गंभीर चिंतन के विषय थे।

काव्य में सत्य का उद्घाटन करते हुए अरस्तू ने कवि के कर्म अवधारणा को महत्त्व देते हुए कहा—

''कवि का कर्त्तव्य कर्म जो कुछ हो चुका है, उसका वर्णन नहीं है, वरन् जो हो सकता है, जो सम्भाव्यता या आवश्यकता के नियम के अधीन सम्भव है, उसका वर्णन करना है।''[15]

निष्कर्ष

भारतीय समाज की सुसंस्कृति संरचना में साहित्य का चरम प्रयोजन लोककल्याणकारी भावना है। साहित्य-मानवता के सभी कुत्सित भेद-भावों को मिटाकर अनश्चेतना को समन्वय के सूत्र से जोड़कर विश्व कल्याण का चरम उन्नयन ही प्रत्येक साहित्य का परम लक्ष्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारत-भारती, भविष्यत् खण्ड, पृ. 182
2. प्राचीन भारतीय सभ्यता, डॉ. जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल
3. प्राचीन भारतीय सभ्यता, डॉ. जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल
4. प्राचीन भारतीय सभ्यता, डॉ. जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल
5. रामचरितमानस, तुलसीदास, पृ. 20
6. प्रिय-प्रवास और साकेत की आदर्शगत तुलना, विद्यावाचस्पति श्री वल्लभ शर्मा, पृ. 10
7. पद्य-प्रबन्ध, हिन्दी की वर्तमान दशा, पृ. 74
8. साकेत, प्रथम सर्ग, पृ. 12
9. साकेत, पंचम सर्ग, पृ. 75
10. भारत-भारती, भविष्य खण्ड, पृ. 172
11. चिन्तामणि, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, भाग-2, पृ. 122
12. चिन्तामणि, भाग-2, रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 107
13. पाश्चात्य काव्यशास्त्र, देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृ. 124
14. गाँधी, नेहरू, टैगोर—एक समग्र जीवन परिचय, आर. एस. सिंह पृ. 90
15. हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, तिलकराज शर्मा, पृ. 23

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

कबीर तथा गोरखनाथ की कविताओं में सामाजिक चेतना का तुलनात्मक अध्ययन

❐ नलनी वर्मा

शोध सारांश

कबीर भी गोरखनाथ की तरह महान विचारक थे। उन्होंने शताब्दियों की सीमा को तोड़कर दीर्घकाल तक भारतीय जनता का पथ आलोकित किया। वे संत कवियों के सिरमौर हैं। हिन्दुओं, मुसलमानों, सिक्खों आदि सभी को वे समान रूप से प्रिय हैं। आधुनिक राष्ट्रवादियों के लिए हिन्दू-मुसलमान एकता के अग्रदूत तथा मानव धर्म के प्रवर्तक एवं प्रगतिशील तत्वों की दृष्टि में समाज सुधारक के रूप में मान्य हैं। उनके विचारों की उदारता से प्रभावित पाश्चात्य विद्वानों ने उन्हें इसाई धर्म से प्रभावित घोषित किया और कहा कि उनके उपदेश 'बाइबिल' के निकट हैं। पाश्चात्य विद्वानों का यह कथन गलत है किन्तु इससे इतना तो स्पष्ट है कि पाश्चात्य विद्वान भी कबीर की महानता को स्वीकार करते हैं।

शब्द बीज—*कबीर, गोरखनाथ, कविता, सामाजिक चेतना।*

प्रस्तावना

सामाजिक चेतना का अभिप्राय समाज के प्रति चैतन्य होना या समाज के प्रति जागरूक होना है। समाज जन समुदाय का दूसरा रूप है। आदिमकाल से मानव समूह में रहता आया है। वह जहाँ में अकेले भले ही आता है किन्तु अकेले रहने का आदी नहीं है। धीरे-धीरे समाज की बंदिशों में जकड़ जाता है। वह जैसे-जैसे बोध होता जाता है वैसे-वैसे समाज के रीति-रिवाज के अनुसार व्यवहार करने लगता है। धीरे-धीरे यही उसकी आदत बन जाती है, फिर वह अकेला जी नहीं सकता। उसको जीने के लिए हर पल, हर कदम साथ की जरूरत होती है, जिससे वह समाज के जाति-धर्म की बंदिशों में फँसता जाता है।

समाज के तरह-तरह के संस्कार उसे जीने की कला सिखाने लगते हैं। यही क्रम हर व्यक्ति के जीवन में चलता रहता है। कहने का तात्पर्य है कि मनुष्य की बंदिशें ही समाज का दूसरा नाम है। समाज के विकास क्रम में अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों समान भाव से आयीं। समय-समय पर परिष्कार कर बुराइयों को तिरस्कृत किया जाता रहा, फिर भी ये मूलतः नष्ट नहीं हुई। यही बुराइयाँ धीरे-धीरे धर्म का अंग बनती गयीं। अन्धानुकरण और अंधविश्वास के कारण कुछ धार्मिक पुरोधा समाज की बुराइयों को धर्म का अंग बताकर जनता को गुमराह करते रहे। यही बुराइयाँ आगे चलकर विकट रूप धारण करती गयी जो कि मानव के लिए घातक बनीं। इन्हीं बुराइयों ने एक ईश्वर के कई रूप बना दिये, जिससे धर्म संघर्ष शुरू हो गया। इन्हीं बुराइयों

* शोधार्थी

ने व्यक्ति को व्यक्ति से अलग कर दिया, जिससे जाति संघर्ष शुरू हो गया। समाज में छुआछूत, ऊँच-नीच का भेद-भाव पनप गया। इन्हीं सामाजिक बुराइयों से ग्रसित मानव समाज को निजात दिलाने के लिए समय-समय महान पुरुष अवतरित होते रहे। छठी शताब्दी ई.पू. में महावीर जैन और गौतम बुद्ध अवतरित हुए और इन सभी बुराइयों से जनता को आगाह किया और उनको मुक्ति का मार्ग दर्शाया। आगे चलकर गोरखनाथ ने उनकी परम्परा को प्रगतिशील किया। गोरखनाथ से प्रभावित संतों (कबीर, नानक, रैदास, दादू आदि) ने इस सामाजिक अभियान को और विस्तार दिया।

गोरखनाथ पूर्ण योगी और सिद्ध पुरुष थे। उनका प्रकृति और दैवीय शक्तियों पर पूर्ण नियंत्रण था। निर्गुण संतों और हिंदी सूफी कवियों पर उनकी अमिट छाप है। उनके जन्म के साथ-साथ एक नये धर्म का उदय हुआ, जिसे हम मानव धर्म कह सकते हैं। यदि गोरखनाथ न होते तो न कबीर होते, न नानक होते, न दादू होते, न फरीद होते, न मीरा होतीं। इनके मौलिक आधार गोरखनाथ ही थे,वे महान् ज्ञाता थे। हिन्दी और संस्कृत में वे अनेक ग्रंथ लिखे—'गोरखशतक', 'योगचिंता मर्म', 'योगमहिमा', 'ज्ञानामृत', 'योग मार्तण्ड', 'योग सिद्धान्त पद्धति', 'विवेक मार्तण्ड', 'सिद्ध-सिद्धान्त पद्धति', 'अमनस्क', 'अवधूत गीता', 'गोरक्षकल्प', 'गोरक्ष कौमुदी', 'गोरक्षगीता', 'गोरक्ष चिकित्सा', 'गोरक्ष पद्धति', 'योगबीज', 'योगसिंहासन पद्धति', 'हठयोग', 'हठसंहिता', योग विषय आदि। उनके नैतिक और सामाजिक उपदेशों के डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने गोरखबानी के नाम से संकलित किया है।

गोरखनाथ परम सुधारक, सच्चे मानवतावादी, सामाजिक समानता और सहिष्णुता के पुजारी योगाचार्य थे। संतोष, संयम, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, दान, धैर्य, शान्ति, त्याग और तपस्या उनके व्यक्तित्व के प्रमुख गुण थे। उन्होंने अपने समय में व्याप्त समाज की अनेक विसंगतियों पर प्रहार किया। मंदिर-मस्जिद को छलावा बताया और तीर्थ यात्रा को निष्फल और शून्य मात्र कहा। गोरखनाथ की सम्पूर्ण मीमांसा धार्मिक और सामाजिक हलचल पर निर्भर करती है। उनके आविर्भाव के समय देश में सामन्ती व्यवस्था थी। केन्द्रीय सत्ता का अभाव था। सामन्तों की व्यष्टि चिंता नहीं बल्कि व्यक्ति रहती थी। तात्पर्य यह है कि जनता दुखित थी। सामन्त ऐसो आराम की जिन्दगी में व्यस्त थे। उनके कारिन्दे सामान्य जनता को प्रताड़ित करते थे। मुसलमानों का आगमन हो रहा था। राजनैतिक संघर्ष जारी थे। हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे पर वर्चस्व स्थापित करने की होड़ में लगे थे। उस समय समाज की आंतरिक बुराइयों जाति प्रथा, भेदभाव, ऊँच-नीच, सती प्रथा, बाल विवाह आदि पर ध्यान देने वाला कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो इनकी मार से जनता को उबार सके। ऐसी राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक हलचल के बीच गोरखनाथ योग साधना के साथ सामान्य जनता के बीच जीवन मुक्ति और नैतिक उपदेश लेकर अवतरित हुए। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल दिया। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर ईश्वर की सत्ता का एहसास कराया, जिससे वह देवालयों और तीर्थों का भ्रमण न कर अपने अन्दर ही संयम रखकर अपना विकास करता रहे। उन्होंने नैतिक उद्धार और व्यक्ति के निर्वाण को ही मानव लक्ष्य बताया। समाज की बुराइयों में फँसी जनता को योग मार्ग के रस्ते चलकर मुक्ति का मार्ग दिखाया।

कबीर अनुभूतिजन्य ज्ञान को ही महत्त्व देते हैं। रचनाधर्मिता उनका मूल ध्येय नहीं था। उनका मूल ध्येय समाज में व्याप्त बुराइयों पर प्रहार करना था। इसके लिए उन्हें विभिन्न स्थानों पर जाना पड़ा। तरह-तरह के विरोध झेलने पड़े। इस वैचारिक अभियान के लिए उन्हें शब्द और शैली की जरूरत थी। शब्द तो स्थान भ्रमण से ही मिल गये किन्तु शैली उनके अपने व्यक्तित्व को देन थी। वे काव्य रचना नहीं करना चाहते थे फिर भी उनकी प्रभावपूर्ण शैली और अचूक शब्दावली से प्रभावित उनके शिष्यों ने उनकी वाणी को 'बीजक' में संकलित कर लिया।

कबीर के व्यक्तित्व का निर्माण इतिहास के संक्रमण काल में हुआ। उस समय साधु और वैरागी समाज में अपनी स्वत्व स्थापना हेतु प्रयत्नशील थे। इनमें से एक कबीर भी थे। समाज के सतही वातावरण का जमकर खण्डन करने के कारण उनको कट्टर मुसलमानों की प्रताड़ता भी सहनी पड़ी। सामान्य जनता की हित साधना से प्रेरित कबीर अनन्तकाल से शोषित और पीड़ित जनसमुदाय के कल्याणार्थ धार्मिक-सामाजिक कुरीतियों की जड़ों पर निर्मम प्रहार करके सहज सदाचार पर जोर दिया। उन्होंने वेद, शास्त्र, पुराण,कुरान का उपदेश प्रसारित करने की जगह सत्य,

अहिंसा, कथनी-करनी में सामंजस्य जैसे पहलुओं पर ध्यान दिया। उनके काव्य का महत्व इसी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति और लोकधर्म के उत्तरदायित्व का सफल निर्वहन करने के कारण है। उनका काव्य अनेक भारतीय एवं अभारतीय तत्वों के सामाजिक पुंज का विकसित रूप है। भारतीय तत्त्वों में उपनिषद का ब्रह्मवाद, शंकराचार्य और अद्वैतवाद, नाथ पंथियों का शून्यवाद और योग साधना, सिद्धों की उलटवासियाँ, वैष्णवों का मुक्तिवाद और बौद्धधर्म द्वारा वैदिक कर्मकाण्ड का विरोध, दुःखवाद और समविष्ट हैं। अभारतीय तत्त्वों में इस्लाम का एकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा और अवतार की अस्वीकृति तथा सूफी दर्शन का दाम्पत्य प्रतीक समाहित है। इन्हीं तत्त्वों के आधार पर कबीर काव्य की नींव टिकी है।

गोरखनाथ और कबीर की चेतना के आधार भले ही पृथक् नजर आते हों पर उनके सामाजिक आधार में गहरी एकसूत्रता नजर आती है। दोनों की सामाजिक चेतना के आधार पर कमोवेश एक ही है। उनकी सामाजिक चेतना का समूल प्राप्त करने के लिए 'समाज एवं सामाजिक चेतना' के अन्तर्गत अध्ययन करते हुए मैंने पाया कि व्यक्ति आदिमकाल से ही समूह में रहते आया है। उसकी इस प्रवृत्ति ने समाज का निर्माण किया। व्यक्ति का समाज में उत्पन्न होना ही स्वयं समाज के लिए पूर्ण आवश्यकता उत्पन्न कर लेना है। समाज विविध रीतियों, क्रिया-कलापों, अधिकार व परस्पर सहायता, समूहगत विभाजन, मानव व्यवहार पर नियंत्रण और स्वतंत्रताओं की व्यवस्था है। समाज सामाजिक संबंधों की एक अमूर्त व्यवस्था है। व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार समाज के स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है। समाज पारस्परिक निर्भरता की भावना पर संगठित होता है। समाज के विकास क्रम में अच्छाइयाँ और बुराइयाँ समाज भाव से आयीं। समय-समय पर इनमें परिष्कार कर बुराइयों को तिरस्कृत किया जाता रहा है। धीरे-धीरे समाज की कुछ बुराइयाँ भी समाज का अंग बनती गयीं। अंधविश्वास और अन्धानुकरण के द्वारा कुछ धार्मिक पुरोधा समाज की बुराइयों को धर्म का अंग बताकर जनता को गुमराह करते रहे। यही बुराइयाँ आगे चलकर विकट रूप धारण करती गयीं जो कि मानव के लिए घातक बनीं। इन्हीं बुराइयों ने व्यक्ति को व्यक्ति से अलग कर दिया जिससे जाति संघर्ष शुरू हो गया। समाज में ऊँच-नीच और छुआछूत का भेदभाव पनप गया। इन्हीं सामाजिक बुराइयों से ग्रसित मानव समाज को निजात दिलाने के लिए समय-समय पर महान पुरुष अवतरित होते रहे। गोरखनाथ और कबीर ने इस सामाजिक अभियान को और विस्तार दिया।

'मध्ययुगीन भारतीय समाज' विषयक तथ्यों के अन्तर्गत अध्ययन करते हुए मैंने पाया कि उस समय भारत के मुसलमानों का शासन था। मुस्लिम शासन की नींव भेदभाव और शक्तिप्रदर्शन पर टिकी थी। धार्मिक विस्तारवादी नीति के तहत बलपूर्वक धर्म परिवर्तन कराये जा रहे थे। हिन्दू समाज में भय का वातावरण व्याप्त था। यही कारण है कि समाज, धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए, हिन्दू रक्त की पवित्रता बनाये रखने के लिए जातियों के नियम और नियंत्रण अब पहले की अपेक्षा अधिक जटिल कर दिये गये। समाज में जातियों के अनेक विवेकशून्य नियंत्रण, रीतियाँ, परिपाटियाँ बन गयी थीं। हिन्दुओं के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन को जातिप्रथा के नियमों और नियंत्रणों में जकड़ दिया गया। किसी हिन्दू के लिए अपने जीवन में उत्कर्ष, परिवर्तन या नवीनता के लिए जाति के नियंत्रणों से मुक्त होना कठिन कार्य था।

'आलोच्य कवियों का संक्षिप्त परिचय एवं रचनात्मक परिवेश' विषयक विश्लेषण करने से मैंने गोरखनाथ एवं कबीर के जन्म, मृत्यु, वंश, परिवार एवं उनके गुरु के बारे में विशेष रूप से जानकारी प्राप्त हुई, मैंने पाया कि गोरखनाथ का आविर्भाव दसवीं से बारहवीं शताब्दी के मध्य हुआ होगा। उनके गुरु मत्स्येन्द्र नाथ थे। वे शिव के निर्गुण रूप के उपासक थे। उन्होंने हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं में उपदेश दिया। उनके बारे में हमें व्यवस्थित ज्ञान पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल की 'गोरखबानी' से प्राप्त होता है। विभिन्न ग्रन्थों और विद्वानों के शोध-पत्रों से मैंने पाया कि कबीर का आविर्भाव चौदहवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ होगा। वे अनाथ थे। नीमा और वीरू ने उनका पालन-पोषण किया था। बचपन से साधु-संगति उनको अच्छी लगती थी। उनका जन्म स्थान एवं मृत्यु स्थान विवाद के घेरे में है, फिर भी उनके काव्य को पढ़कर लगता है कि काशी और मगहर ही क्रमशः उनका जन्म

एवं मृत्यु स्थान है। उनकी संकलित रचनाओं से स्पष्ट है कि वे अपने समय की समाज व्यवस्था से बहुत आहत थे। यही कारण है कि वे बार-बार हिन्दू और मुस्लिम व्यवस्था पर प्रहार करते हैं। जहाँ तक उनके गुरु का प्रश्न है तो मैंने पाया कि उनका पहला गुरु उनका व्यक्तिगत अनुभव था। उसको आगे बढ़ाने का कार्य रामानन्द ने किया। 'गोरखनाथ की सामाजिक चेतना' के विश्लेषण करने से ज्ञात हुआ कि गोरखनाथ समाज के प्रति बहुत ही सजग थे। समाज की विभेदकारी नीति से वे बहुत आहत थे। इसलिए उन्होंने हिन्दू और मुस्लिम दोनों समाजों पर निःसंकोच वार किया। दोनों ही धर्म व्यक्ति-व्यक्ति में भेद स्थापित कर रहे थे। यही भेद व्यक्ति के अंदर वैमनस्य पैदा कर रहे थे। गोरखनाथ ने सभी व्यक्तियों को एक परम सत्ता का अंश बताया जिससे कि आपसी भेदभाव दूर हो सके। उन्होंने बहुदेवोपासना और बाह्याडम्बरों में डूबे समाज को दिशा देने का काम किया। उन्होंने बताया कि समाज में फैले हुए पण्डा, पुरोहित, काजी और मुल्ला समाज को दिग्भ्रमित कर रहे हैं। ये व्यक्ति को ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग से च्युत कर रहे हैं, जिससे समाज में ऊँच-नीच और जाति-पाँति का भेद-भाव पैदा हो रहा है।

'कबीर की सामाजिक चेतना' अन्तर्गत यह देखने को मिलता है कि कबीर व्यक्ति स्वतंत्रता के हिमायती थे जो लोक कल्याण पर आधारित था। कबीर के गुरु रामानन्द वर्ण व्यवस्था के अन्दर सुधार के हिमायती थे जबकि कबीर न तो वर्ण व्यवस्था के अन्दर सुधार के हिमायती थे और न ही सगुण ईश्वर की उपासना के हिमायती थे। वे इस पूरी व्यवस्था को छलावा मानते थे। 'गोरखनाथ और कबीर की सामाजिक चेतना के आन्तरिक सूत्र और नये मानवीय समाज के निर्माण का स्वप्न' में उनकी सामाजिक चेतना का तुलनात्मक अध्ययन है। गोरखनाथ और कबीर ने तत्समय की धार्मिक और सामाजिक संकीर्णताओं पर व्यंग्य किया। वे समाज के प्रति सदा संवेदनशील रहे। उन्होंने प्रत्येक जीव को ईश्वर का अंश माना। इसलिए व्यक्ति-व्यक्ति का भेद उनकी दृष्टि में घोर अन्याय था। वे एक ऐसे स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें सभी मानव समान हों, सभी का धार्मिक सामाजिक लक्ष्य मानव कल्याण हो।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि गोरखनाथ और कबीर की सामाजिक चेतना के द्वारा हिन्दू और मुसलमानों की तमाम धार्मिक संकीर्णताओं को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने मंदिर-मस्जिद, वेद-शास्त्र, पूजा-पाठ, व्रत-उपवास, जाति-पाँति, छुआछूत, रोजा-नमाज, अजान आदि को समाज और मानवमात्र के लिए घातक बताया। जहाँ भक्ति आन्दोलन सबके लिए मंदिरों के द्वार खोलने के पक्ष में था, वहीं कबीर ने मंदिर को ही गलत साबित कर दिया। केवल धर्म और सामाजिक विषमता की ओर ही उनका ध्यान नहीं गया बल्कि इस विषमता के लिए उन्होंने समाज की आर्थिक विषमता को एक हद तक जिम्मेदार कर दिया। आर्थिक विषमता के कारण ही सबसे पहले व्यक्ति छोटा-बड़ा हुआ। आगे चलकर यही ऊँच-नीच का भेदभाव स्थापित करने में मददगार साबित हुआ।

फलतः गोरखनाथ और कबीर की सामाजिक चेतना ने भेदभाव की समस्त सीमाओं को तोड़कर जिस आदर्श मानव को सामने रखा, वह मानव व्यक्तित्व को ब्रह्मत्व तक ले जाता है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. डॉ. महेन्द्र भटनागर कवि श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन', राज्यपाल एण्ड संस, नई दिल्ली।
2. डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, शिवमंगल सिंह 'सुमन' मनुष्य और सृष्टा सामयिक प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली।
3. सुमन के काव्य में राष्ट्रीयता पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी प्रा. लि. करोलबाग, नई दिल्ली।
4. डॉ. प्रसिद्ध नारायण चौबे, लोक चेतना के राष्ट्रीय, कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन' नवोदय सेल्स शहदरा, नई दिल्ली।
5. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-1 प्रकाशन, साधना पाकेट बुक, 39 यू.ए. रोड दिल्ली।

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

विश्वविद्यालय पंचवर्षीय योजना के अनुदानों के व्यय का विश्लेषण

❐ पंकज सिंह तिवारी

शोध सारांश

म.प्र. के विश्वविद्यालय ग्रन्थालयों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्राप्त अनुदानों के व्यय, आवश्यकता, उपयोगिता एवं आपेक्षित परिणामों का सारगार्भिक अध्ययन किया गया है। विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालयों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्राप्त बजट का अधिकांशतया उपयोग कर लिया गया है, एवं इसमें और आवश्यकता महसूस की जा रही है।

भूमिका :–

मध्य प्रदेश के शैक्षणिक संस्थानों के विकास के लिये विश्वविद्यालयीन शिक्षा का एक उच्च स्थान है, जिसके अभाव में इसकी कल्पना ही नही की जा सकती है। परंतु किसी भी संस्था के लिये ग्रन्थालय उसका हृदय होता है, जिस प्रकार सारे व्यक्तियों के जीवन दाहिनी के रूप हृदय का होना आवश्यक है, उसी प्रकार पुस्तकालय के विस्तार एवं उपयोगिता को बढ़ाने के लिए वित्त का होना जरूरी है, जिसके अभाव में वहाँ के छात्रों, शोधार्थियों, एवं संस्था का विकास नही हो सकता। अतः उस देश का विकास सम्भव नही है क्योंकि यही किसी देश की रीढ़ होती है, जिसके अभाव में कोई भी देश सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक रूप से विकसित नही हो सकता। जिसका विवरण निम्नानुसार प्रस्तुत है–

सारणी क्रमांक–1.1

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दसवीं पंचवर्षीय योजना में कितनी राशि विश्वविद्यालयीन ग्रंथालय को प्राप्त हुई की स्थिति

विश्वविद्यालय का नाम	स्वीकृत राशि	व्यय राशि
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर	37,50000=00	37,50000=00
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा	50,00,000=00	50,00,000=00
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल	75,00,000=00	75,00,000=00
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर	60,00,000=00	60,00,000=00
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर	35,00,000=00	35,00,000=00
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन	1,50,00,000=00	1,35,00,000=00
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर	-	-

सारणी क्रमांक 1.1 में प्रदर्शित आंकड़ों से स्पष्ट है कि विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालयों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पुस्तकालयीन विकास हेतु अनुदान प्राप्त होता है। अधिकांश विश्वविद्यालयों ने उपलब्ध अनुदान का शत प्रतिशत उपयोग किया है। ग्रन्थालयों से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार 07 में से 06 ग्रन्थालयों को विश्वविद्यालय

* पुष्पराज नगर, रीवा (म.प्र.)

अनुदान आयोग द्वारा राशि स्वीकृत होती है जिसे 05 विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालयों द्वारा सम्पूर्ण राशि व्यय बतायी गई, एक विश्वविद्यालय द्वारा 10 प्रतिशत राशि शेष बतायी गई, वही एक विश्वविद्यालय ने प्राप्त अनुदान और व्यय के सम्बन्ध में सम्यक जानकारी देने में असमर्थता व्यक्त की।

सारणी क्रमांक–1.2

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में विश्वविद्यालयीन ग्रंथालय को दी गई अनुदान राशि की स्थिति

विश्वविद्यालय का नाम	स्वीकृत राशि	व्यय राशि
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर	2,00,00,000=00	2,00,00,000=00
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा	28,80,000=00	28,80,000=00
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल	80,00,000=00	80,00,000=00
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर	81,00,000=00	81,00,000=00
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर	1,00,00,000=00	1,00,00,000=00
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन	1,50,00,000=00	1,35,00,000=00
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर	-	-

उपरोक्त सारणी क्रमांक 1.2 में प्रदर्शित आंकड़ों से स्पष्ट है कि म.प्र. के विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालयों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना अन्तर्गत प्रदत्त अनुदानों का विश्लेषण किया गया, जिसके अनुसार विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालयों से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार 07 में से 06 ग्रन्थालयों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा राशि स्वीकृत होती है जिसे 05 विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालयों द्वारा सम्पूर्ण राशि व्यय बतायी गई, एक विश्वविद्यालय द्वारा 10 प्रतिशत राशि शेष बतायी गई, वहीं जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर से आंकड़ा अप्राप्त है।

सारणी क्रमांक–1.3

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दसवीं एवं ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजनान्तर्गत प्राप्त अनुदानों का विभिन्न मदों पर व्यय की गई राशि/संख्या का विवरण

विश्व–विद्यालय की संख्या	विश्वविद्यालय अनुदान आयोग			
	विभिन्न मदें	दसवीं पंचवर्षीय योजना (संख्या)	ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (संख्या)	योग
07	पुस्तकें	15732	8387	24119
	जर्नल्स	143	209	352
	कम्प्यूटर	32	138	170
	फोटोकॉपीयर	02	05	7
	श्रव्य दृश्य साधन	00	00	0
	खुले रैक/आलमारी	200	250	450
	कैटलॉग कैबिनेट	05	12	17
	मैंगजीन रैक	04	15	19
	रीडिंग टेबल	23	45	68
	न्यूज पेपर स्टैण्ड	05	15	20
	अन्य	00	00	0
	भवन का क्षेत्रफल	00	00	0
	कर्मचारी की संख्या	111	180	291

उपरोक्त सारणी क्रमांक 1.3 में प्रदर्शित आंकड़ों से स्पष्ट है कि म.प्र. के विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालयों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दसवीं एवं ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना अन्तर्गत प्रदत्त अनुदानों का विभिन्न मदों पर व्यय की गई राशि का विश्लेषण किया गया, जिसके अनुसार विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालयों से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार 07 में से 07 ग्रन्थालयों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा राशि स्वीकृत होती है जिसे विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालयों द्वारा अलग–अलग मदों में राशि व्यय बतायी गई, जिसमें से पुस्तकें, जर्नल्स, कम्प्यूटर, फोटोकॉपीयर, आलमारी, रीडिंग टेबल एवं कर्मचारियों के लिए राशि का उपयोग किया गया। जिसमें से कुछ विश्वविद्यालयों द्वारा कुल राशि बताई गयी हैं, एवं कुछ ने किस पर व्यय हुआ केवल संख्या बस बताया गया है।

सारणी क्रमांक–1.4

विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालय में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दसवीं एवं ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजनान्तर्गत पुस्तकों हेतु स्वीकृति राशि की स्थिति

क्र.	मद	विश्वविद्यालयों की संख्या	हाँ	नहीं
1.	पाठ्य–पुस्तकें	07	05	02
2.	सन्दर्भ–पुस्तकें		03	04
3.	शोध–पत्रिकायें		03	04
4.	शोध–साहित्य		01	06
5.	दुर्लभ ग्रंथ		-	-
6.	सजिल्द पत्रिकायें		-	-
7.	सेमीनार कार्यवाही		-	-
8.	विश्वविद्यालय प्रतिवेदन		-	-
9.	अन्य		-	-

उपरोक्त सारणी क्रमांक 1.4 में प्रदर्शित आंकड़ों से स्पष्ट है कि म.प्र. के विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालयों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दसवीं एवं ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना अन्तर्गत प्रदत्त अनुदानों का पुस्तकों हेतु व्यय की गई राशि का विश्लेषण किया गया, जिसमें विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालयों से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार 07 में से 07 ग्रन्थालयों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा राशि स्वीकृत होती है, जिसे विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालयों द्वारा अलग–अलग मदों में राशि व्यय बतायी गई, जिसमें से पाठ्य–पुस्तकें, सन्दर्भ–पुस्तकें, शोध–पत्रिकायें, शोध–साहित्य के लिए राशि का उपयोग किया गया। दुर्लभ ग्रंथ, सजिल्द पत्रिकायें, सेमीनार कार्यवाही, विश्वविद्यालय प्रतिवेदन एवं अन्य का संग्रह की जानकारी अप्राप्त रही।

सारणी क्रमांक–1.5

विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालय में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को दसवीं एवं ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजनान्तर्गत राशि प्राप्त करने के लिये भेजे गये प्रस्तावों हेतु स्मरण पत्र देने का कार्य ग्रन्थालय द्वारा किया जाता है, की स्थिति

क्र.	विश्वविद्यालय का नाम	हाँ	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
1.	डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर	-	-	-	-
2.	अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा	हाँ	14.3	-	-
3.	बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल	हाँ	14.3	-	-
4.	रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर	-	-	-	-
5.	देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर	-	-	नहीं	14.3
6.	विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन	-	-	नहीं	14.3
7.	जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर	-	-	नहीं	14.3
कुल योग		02	28.6	03	42.9

उपरोक्त सारणी क्रमांक 1.5 में प्रदर्शित आंकड़ों से स्पष्ट है कि म.प्र. के विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालयों में विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालय में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को राशि प्राप्त करने के लिये भेजे गये प्रस्तावों हेतु स्मरण पत्र देने का कार्य ग्रन्थालय द्वारा किया जाता है का विश्लेषण किया गया, जिसमें विश्वविद्यालयीन ग्रन्थालयों से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार 07 में से 02 ग्रन्थालयों द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को स्मरणपत्र देने का कार्य किया जाता है, जिसका प्रतिशत 28.6 है, जबकि 03 ग्रन्थालयों द्वारा स्मरणपत्र नहीं दिया जाता है जिसका प्रतिशत 42.9 है और 02 ग्रन्थालयों की जानकारी अप्राप्त है।

सन्दर्भ :–

1. AWADHESH PRATAP SINGH UNIVERSITY. Annual Report. Rewa , 2006-2007.
2. BAJPAI, R. P. and UPADHYAY, M.P. Rural Development Information Network. Delhi, Library Progress (International) Vol.25 (No.2) July 2005.
3. BARHATULLAH UNIVERSITY . Annual Report. Bhopal, 2006-2007.
4. DEVI AHILYA UNIVERSITY. Annual Report. Indore, 2006-2007.
5. DR. HARI SINGH GOUR UNIVERSITY. Annual Report. Sagar, 2007-2008.
6. DR. HARI SINGH GOUR UNIVERSITY. Information Bulletin. Sagar, Dr. Hari Singh Gour University, 2005-2006.
7. GOVERNMENT OF MADHYA PRADESH . Economic Survey of Madhya Pradesh Statistical Department , 2007-2008.

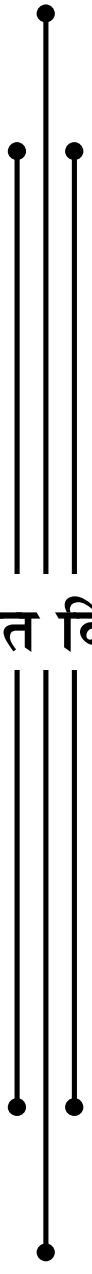

संस्कृत विभाग

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

महाभारते सत्यात्मको धर्मः

❐ डॉ. उमाकान्त मिश्र

शोध सारांश

महाभारतस्थशान्तिपर्वणः द्विनवत्यधिकशततमे अध्याये महाराजयुधिष्ठिरः काल-मृत्यु-यमादिः देवानां संहिताजापकब्राह्मणस्य च मध्ये परस्परसंवादविषये-भीष्मपितामहं पृच्छति। प्रसङ्गेऽस्मिन मृपविप्रयोः संवादेन सत्यधर्मस्य महिमा प्रतिपादितः। यथाश्रुतं यथादृष्टं यथानुमितं यथाचिन्तितं तथा मनसा वाचा कर्मणा वदति तत्सत्यम्। संसारस्य यावन्त व्यापाराः तावन्तः सर्वे लौकिकाः वैदिकाश्च व्यवहाराः सत्यादेव प्रवर्तन्ते।

स्वीकृतं खलु कृष्णद्वैपायनवेदव्यासद्वारा विचचितं महाभारतम् ऐतिहासिकमहाकाव्यत्त्वेन। विषयेऽस्मिन् विदुषां न किमपि वैमत्यं विद्यते एतन्महाभारतं संसारस्य समस्तविद्यानां शिल्पानां नाट्यानां दर्शनानां विविधकलानां साहित्यस्य समग्रप्रकरणानां न केवलं 'भाण्डागारम्' अपितु चूडान्तं निदर्शनम्। अतएव सत्यमेवोक्तम्—

'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।'[1]

अर्थात् यत्किमपि ज्ञानं महाभारते विद्यते तदन्यत्रापि, किन्तु यदत्र नास्ति तत् कुत्रापि नास्ति।

विदन्त्वेव मनीषिणः यन्महाभारते सन्ति अष्टादशपर्वाणि यथा—आदि-सभा-वन-विराट्-उद्योग-भीष्म-द्रोण-कर्ण-शल्य-सौप्तिक-स्त्री-शान्ति-अनुशासन-अश्वमेघ-आश्रमवासी-मौसल-महाप्रस्थानिक-स्वर्गारोहण इत्यादीनि।

अत्राऽस्माभिः शान्तिपर्वविषये किमपि वक्तव्यमस्ति। शान्तिपर्वणि शरशय्यायां शयानो भीष्मपितामहः राजधर्मं मोक्षधर्मं चाधिकृत्योपदिशति युधिष्ठिरम्। भीष्म-पितामहः आसीन्महान् अनुभवशीलः धर्मार्थ-काममोक्षरूपचतुर्वगस्य विशेषज्ञः, दीर्घायुष्मान् कुरुवंशे वरिष्ठः, लब्धप्रतिष्ठो महापुरुषः। सः कुरुक्षेत्र-हस्तिनापुरोः धर्ममर्यादाविषये तथा च स्वशासनस्याऽखण्डताविषये सर्वाधिकः चिन्तनशीलः आसीत्। धर्मन्यायमार्गानुयायिनः पाण्डवान् प्रति आसीदस्य अन्तःकरणेन पक्षपातः कौरवाणां पक्षे परवशतया चरन्नपि तेषां स्वार्थपरकदोषपूर्णनीतिकारणात् अत्यन्तं व्यथितः आसीत्। इच्छामृत्योर्वरदानं प्राप्यापि महारथी परमयोद्धा चाजन्मब्रह्मचारी भीष्मो महाभारतयुद्धे असंख्यबाणैर्बिद्धशरीरः सूर्यस्योत्तरायण-प्राप्तिं यावद् अर्थात् षण्मासपर्यन्तं स्वप्राणान् न तत्याज। एतत्समयान्तराले पितामहद्वारा युधिष्ठिरं प्रति धर्मोचितराजनीतेः मोक्षप्राप्तिकर्त्तव्यमार्गस्य सविस्तरम् उपदेशः प्रदत्तः। शान्तिपर्वण्येव निर्दिष्टकथोपाख्यानमाध्यमेन सत्यात्मकधर्मे विशेषतो बलं दत्तम्। यद्धि पर्वणोऽस्य द्विनवत्यधिक-शततमेऽध्याये (192) चित्रितम्।

महाभारतस्थशान्तिपर्वणः द्विनवत्यधिकशततमेऽध्याये महराजयुधिष्ठिरः काल-मृत्यु-यमादिदेवानां संहिताजापक-ब्राह्मणस्य च मध्ये परस्परसंवादविषये भीष्मपितामहं पृच्छति।

* प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (संस्कृत-अकादमिक), शा. रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

प्रसङ्गेऽस्मिन् तथ्योऽसावपि समायाति यद् एको जापक ब्राह्मणः सहस्रवर्षं यावद् जपकार्ये संलग्न आसीत्। तत्फलतः स्वयं वेदमाता सावित्री आत्मानं प्रकटयति एवञ्च कथयति अभीष्टवरयाञ्चा हेतोः—

किं प्रार्थयसि विप्रर्षे किं चेष्टं करवाणिते[2]।

किन्तु धर्मवित् स विप्रः निस्पृहभावे जपपरकसमाधिं प्रत्येव उत्तरोत्तरं वृद्धिहेतोः प्रार्थनां कृतवान्। यथा—

जप्यं प्रति ममेच्छेयं वर्धत्विति पुनः पुनः[3]॥12॥
मनसश्च समाधिर्मे वर्धेताहरहः शुभे[4]॥13॥

ततो देवी सावित्री 'एवमस्तु' इति प्रत्यभाषत। हे विप्र! त्वमेवं विधिना एकाग्रो नियतः सन् जपानुष्ठानं कुरु। साक्षाद् धर्मश्च त्वां समुपैष्यति, तेऽन्तिकं कालोमृत्युर्यमश्चापि समायास्यन्ति। अत्र तव तेषाञ्च मध्ये न्यायोचितो विवादो भविता। यत्र ते यमादि देवाः समेताः/एकत्रीभूताः/एकत्रिताः, तस्मिन्नेवकाले तीर्थयात्राम् उपागतः महाराज इक्ष्वाकुः तत्रागमत। अथ स ब्राह्मणः कुशलक्षेमविमर्शं कृत्वा राज्ञेऽभीष्टप्रदानाय अब्रवीत्। जपता त्वया यद् दिव्यं वर्षशतं जप्यं पूर्णं कृतं तस्य फलं मह्यं प्रदीयताम् इति राज्ञा कथितम्। विप्रेण यज्जपितं तस्य फलस्य अर्धं फलं ग्रहीतुं न सज्जीभूतः तदा स सर्वमेव जप्यकं फलं दातुं वचनं प्रदत्तम्—

अथ वा सर्वमेवेह जप्यकं मामकं फलम्।
राजन्! प्राप्नुर्हि कामं त्वं यदि सर्वमिहेच्छसि[5]॥

किन्तु 'किं च तस्य फलं वद' इति च राजनि प्रश्ने कृते विप्रः तत्फलनामविषये स्वकीयां असमर्थतां प्रकटयति। स राजानं भाषतेमया यज्जपितं तज्जन्यं च फलं तुभ्यं राज्ञे दत्तम्, अतः फलप्राप्तिं न जानामि; फलप्राप्तिविषये धर्मः कालः यमः मृत्युश्च एते साक्षिणः सन्ति—

फलप्राप्तिं न जानामि दत्तं यज्जपितं मया।
अयं धर्मश्च कालश्च यमोमृत्युश्च साक्षिणः[6]॥

यस्य पुलस्यनाम न विद्यते, यत्फलं संदिग्धं/अज्ञातमस्ति, तत्फलं ग्रहांतुं राजा नेच्छति। 'अज्ञातकुलशीलस्य मैत्री न हितकारिणी' अतः अज्ञातं फलं न स्वीकार्यम् इति राज्ञो मतम्। विप्रेणोक्तं यद् हे राजन्! त्वं 'देहि' इति वाक्यम् उक्त्वा कथम् अनृतम्/अशुभं कुरुषे। यदि मया दत्तं जप्यफलं त्वं न एषिष्यसे तर्हि त्वं स्वधर्मेभ्यः परिभ्रष्टो भूत्वा लोकान् अनुचरिष्यति। ब्राह्मणश्च तत्फलं दातुं वचनबद्धः दृढ़प्रतिज्ञश्चासीत्। सत्यंवचनानां रक्षार्थं जपयस्य समग्रं फलं स्वीकृतम्।

एवम् अन्ततः सत्यधर्मस्य विजयो जातः। मिथया/अनृत व्यवहारस्य पराजयो जातः। यमस्वर्गादिभिः दिव्यभोगरूप-प्रलोभनैः बहुशः लोभितः, किनतु जापको ब्राह्मणः सत्यधर्मपालनात् अणुमात्रमपि न विचलितः। जापकेन विप्रेणः सत्यधर्मस्य पूर्णरूपेण पालनात् तेन परमपदम् अव्यय शाश्वतब्रह्मपदं वा समधिगतम्।

नृपविप्रयोरुक्तसंवादेन सत्यधर्मस्य महिमा प्रतिपादितः। सत्यं नाम तावत् ''यथार्थे वाङ्मनसे सत्यम्''। यथाश्रुतं यथादृष्टं यथानुमितं, यथाचिन्तितं तथा मनसा वाचा कर्मणा वदति तत्सत्यम्। संसारस्य यावन्तः व्यापाराः तावन्तः सर्वे लौकिकाः वैदिकाश्च व्यवहाराः सत्यादेव प्रवर्तन्ते। यथा—

सत्यं वेदेषु जागर्ति फलं सत्ये परं स्मृतम्।
सत्याद्धर्मो दमश्चैव सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्[7]॥
यतो धर्मस्ततो सत्यं सर्वं सत्येन वर्धते[8]।
सत्यमेकाक्षरं ब्रह्म, सत्यमेकाक्षरं तपः।
सत्यमेकाक्षरो यज्ञः, सत्यमेकाक्षरं श्रुतम्[9]॥

वस्तुतः सत्यस्य स्वरूपम् 'ईशोपनिषदि' साध्वेव चित्रितम्—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखं
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये[10]॥

अमुस्मिन् मृगमरीचिकामये भ्रमयुते मायाप्रपञ्चवञ्चनामये च जगति काञ्चनकामिनीप्रभृतिभिः चाकचक्यमयैः पदार्थसार्थैः सर्वमेव वस्तुजातम् आवृत्तम्। येन जनाः पदार्थानां स्वाभाविकं सौन्दर्यं याथार्थ्यं गुणगणं, वास्तविकं च स्वरूपं विहाय बाह्याडम्बरैः विकृतेषु वस्तुषु प्रवर्तन्ते ते ''अन्धेन नीयमाना यथाऽन्धा'' एव सत्यस्वरूपं नानुभवन्ति।

एवमेव महाभारते धर्मस्वरूपं भीष्मेनोक्तम्—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्[11]॥

वस्तुतः आत्मकल्याणामुरूपं विश्वस्य
यत्र कल्याणं स्यात् स एव धर्मः।

ये सत्यसङ्गरा विवेकचक्षुषः मनस्विनः भवन्ति ते सत्यधर्माद् स्तोकमपि न प्रविचलन्ति यथा संहिता जापको ब्राह्मणकौशिकपैप्पलादिः। सत्यमुक्तं केनापि—

उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निः।
विकसति यदि पद्मं पर्वतानां शिखाग्रे
न भवति पुनरन्यद् भाषितं सज्जनानाम्॥

को न स्मरति भीष्मपितामहस्यस्वपितुः प्रसन्नतायै दाशकन्यापितुश्च विश्वासायकृतां भीष्मां प्रतिज्ञां यत्र स प्रत्यजानात्—

योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति।[12]

पुनरपि दाशराजस्य संशयम् आलक्ष्य राजसभायां भीष्मः तस्य परितोषाय धोरतरां प्रतिज्ञां कृतवान्—

दाशराज निबोधेदं वचनं मे नृपोत्तम।
शृण्वतां भूमिपालानां यद् ब्रवीमि पितुः कृते॥
अद्य प्रभृति मे दाश! ब्रह्मचर्यं भविष्यति
अपुत्रस्यापि मे लोकाः भविष्यन्त्यक्षया दिवि॥[13]

एतां प्रतिज्ञां न केवलं वाङ्मात्रेण परं कार्यरूपेण आजीवनं स अपालयत्।

सन्दर्भ सूची

1. महाभारत, आदिपर्व 62.53
2. महाभारत, शान्ति पर्व 192.11
3. महाभारत, शान्ति पर्व 192.12
4. महाभारत, शान्ति पर्व 192.13
5. महाभारत, शान्ति पर्व 192.49
6. महाभारत, शान्ति पर्व 192.51
7. महाभारत, शान्ति पर्व 192.64
8. महाभारत, शान्ति पर्व 192.69
9. महाभारत, शान्ति पर्व 192.63
10. ईशोपनिषद्
11. महाभारत
12. महाभारत
13. महाभारत

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

श्रुतं नोगोपाय वेदार्थावगमने आचार्ययास्कस्ययोगदानम्

❐ डॉ. द्वारिका नाथ त्रिपाठी

व्याख्यातासंस्कृतविभागीयोऽलीगढस्थ–धर्मसमाजस्नातकोत्तरमहाविद्यालयीयः।

विद्–ज्ञाने, विद्– सत्तायाम्, विद्–लृलाभे, विद् विचारणे, इत्येतेभ्यः अदादिदिवादितुदादिरूधादिगणेभ्यः पठितेभ्योधातुभ्यः अधिकरणे कृते घञिप्रत्यये वेद शब्दस्य निष्पत्तिर्भवति। अतःवेद शब्दात् प्रकृति प्रत्यय अर्थ सामञ्जस्य कारणात् ज्ञानात्मकः , सत्तात्मकः, लाभात्मकः, विचारात्मकश्चेति अर्था उपलभ्यन्ते। वेदस्य इमे अर्था आचार्ययास्कमताऽनुसारं स्वरसंस्कारौसमर्थौ प्रादेशिकेन विकारेण अन्नितौ स्यातां इति सिद्धान्ताऽनुसारं भवन्ति। यतोहि– विद् धातोः ज्ञानं सत्ता लाभः विचारश्च अर्थाः भवन्ति तथा घञ् प्रत्ययः करणाऽधिकरणयोः भवति। (प्रकृतिप्रत्यययोरभेदान्वयः) इति भट्टोजिदीक्षित सिद्धान्ततः एवं यास्कभाष्याऽनुसारमपि उभयोः प्रकृति प्रत्यययोः परस्परेन्विते उपर्युक्ताः अर्थाः सारल्येन कर्तुम् शक्यन्ते।

यथा वयं जानीमः यत् आर्याणां सभ्यता साहित्यस्य चारम्भः वेदाविर्भावादेव जातोऽस्ति। वयं सर्वे मन्यामहे यत् वेदः ब्रह्मवाणी अस्ति। अतः वेदः ब्रह्मवन्नित्यं, सार्वकालिकं, सार्वदेशिकं अपौरुषेयं चाऽस्ति। स्वीकर्तुम् शक्यते यत् आर्य जातेरितिहासोऽपि प्राचीनतमोऽस्ति। यतोहि– भारतीयधर्मसाहित्यभाषासभ्यतासंस्कृति कलाः इत्येतासांविकासेउन्नतौचाऽपि वेदानां प्रमुखतमंस्थानं वर्तते। यतोहि– उपर्युक्तानां कलादीनां मूलाऽधाराः वेदाः एव स्वीक्रियन्ते। भारतीयधर्म संस्कृतिसभ्यतानां मेरुदण्डः वेदः एवाऽङ्गीक्रियते।

आर्याणां वेदं प्रति श्रद्धा चाऽस्था स्टष्टेरारम्भादेवस्तः। वसुधायाः कस्मिंस्चिदपि क्षेत्रे निवसन्तः आर्याः हिन्दवश्च स्व संस्कृते पर्वसु सामाजिकसमारोहेषु च आर्याणां हिन्दूनां च प्रति गृहं हवनादिकं वेद मन्त्रैरुच्चारणपूर्वकमेव सोल्लासं श्रद्धापूर्वकं च आयोजनं विधियते। भारतवर्षे प्रचीनकालादेव धर्मदर्शनसदाचारसम्बन्धे विभिन्नाः मत–मतान्तराः प्रचलिताः आसन्, परन्तु ते सर्वे स्वमताऽधारं वेदानेव अमन्यन्त, तथाऽचार्यैः स्व–स्व मतानां पुष्टिः वेद मन्त्र प्रमाणैः कृता।

भारतीयसाहित्ये वेदगुणगौरवगानं प्राचीनतः एव अद्याऽवधि निरन्तरं कृतवान् भवन्नऽस्ति। वेदोत्तरकालीनेषु साहित्येषु यथा–ब्रह्मणाऽरण्य–कोपनिषद्वेदाङ्गदर्शनस्मृति प्रभृति ग्रन्थेषु वेदाः परमात्मकृता स्व्यक्रियत। वस्तुतस्तु उपर्युक्ताः सर्वे विषयाः वेदमन्त्राणांव्याख्यारुपेणैव सन्ति। आचार्य मन्वऽनुसारन्तु वेद निन्दकाः नास्तिकाः भवन्ति, तात्पर्यं इदं अस्ति यत् भारतीय मनीषा ईश्वरतोऽप्यधिकं महत्वं वेदं प्रददाति।

भारतीय दर्शनेषु प्रतिपादिताः सर्वे सिद्धान्ताः प्रायेण वेदप्रमाणैरेव प्रमाणी क्रियन्ते । अन्ततः इदं यत् ईश्वरीय सत्तां असन्दिग्धरूपेणास्वीकुर्वद्भिः

* प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, धर्म समाज स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

सांख्याऽचार्यैरपि वेद प्रमाणान् मत्वैव स्व सिद्धान्ताः व्याख्यायन्ते।

वेदानां माहात्म्यं न खलु केवलं भारतवर्षे एव सीमितमस्ति अपितु अनेक देशानां विद्वान्सः वेदेषु सन्निहितैः ज्ञानैः तद्गुणैश्चाऽपि प्रभाविताः अभवन्। भारतवर्षं समये–समये आगन्तारः विभिन्नेभ्यः देशेभ्यः पाश्चात्य विद्वान्सः वैदिक साहित्यस्य विशालतां मनुभूय एवं तन्निहितैः ज्ञान विज्ञानैः पूर्णतया प्रभाविताः आसन्, तथा ते महाभागाः वेदानां अध्ययनं मनुष्येभ्यः नितरां कल्याणप्रदं उपयोगित्वं च अवर्णयन्। एषां विदुषामनुसारं वेदः मानवानां कृते प्राचीनतम् साहित्य ग्रन्थोऽस्ति, तथा च वैदिक साहित्येषु आर्याणां सहस्रतोऽप्यधिकं प्राचीनतमं इतिहासः दरिदृश्यते, अर्थात् आर्येतिहासपरिपूर्णा वैदिकसाहित्याः वर्तन्ते। एषु वैदिक ग्रन्थेषु विज्ञानाध्यात्मधारा या निरन्तरं प्रवहनशीला तस्याः आवश्यकता इदानीमपि मानवानां कृते अतीवोपयोगिनी वर्तमानेऽपि वर्तते। अनेके पाश्चात्यविद्वान्सः यथा– मैक्समूलर, विन्टरविट्ज, राथ, कोलब्रुक, मैकडानल प्रभृतयः वैदिक साहित्याध्ययने स्व–स्व सम्पूर्णं जीवनं समर्पितवन्तः आसन्।

अथ वेद शब्द साधुत्वपूर्वकं, वेद महत्तादि विश्लेषणानन्तरं, पाश्चात्य विद्वज्जनोपरि वेदप्रभावादि विषयेषु भूमिकायां चर्चानन्तरं सम्प्रति स्व शोधपत्रं विस्तरितुम् यत्र आचार्यो यास्कस्य भाष्यमाश्रित्य श्वासयं प्रकटितुं समुत्सुखोऽस्मि।

यथा यत् मयापूर्वमेवाख्यातं यत् धर्म स्वरूपः निष्कारणः शडङ्गोवेदो ब्रह्मवन्नित्योऽस्ति कः धर्मः इत्याशङ्कायां उच्यते–

धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधं दशकं धर्मलक्षणम्।।

इति गीता।।

धर्मस्य लक्षणं प्रतिपादयनश्रूयतां धर्म सर्वश्वं श्रुत्वा चाप्यवधारयतां आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरे दित्याख्यातम्। तात्पर्यं यत् वेदेषु इमे सर्वे गुणाः निहिताः वर्तन्ते आशयं यत् मानव समासजस्य कृते मनुर्भवनार्थं च उपदेशः वेदेश्वेव येन प्रकारेण ब्रह्म प्राप्त्यर्थं अहिंसा सत्य ब्रह्मचर्याऽस्तेयाऽ– परिग्रहाऽङ्गीकार पूर्वकं, शौच संतोष तपःस्वाध्यायेश्वर प्राणिधानानि आवश्यकानि भवन्ति, तेनैव प्रकारेण वेदानां मध्ययनार्थं कामक्रोधलोभमोहमदमत्सरादीनां परित्यागपुरः सरं नित्य नैमित्तिक प्रायश्चित्तोपासना– दिनिकर्माणि अत्यावश्यकानि सन्ति।

यद्यपि वेदानां श्रवणं, अध्ययनं, दर्शनमपि पापनाशकं भवति। तथापि वेदार्थ ज्ञानं बिनावेद श्रवणादिकं नोचितम्। भगवता पतञ्जलिना व्याकरण प्रयोजनाऽवसरे यदधीतं इति प्रयोजनं प्रतिपादितं, पुनश्चाऽपि आचार्य कौत्साऽनुसारं नियतवाचोयुक्त– योनियतानुपूर्व्याः भवन्तीति कथनात् केवलं वेद श्रवणे एव पुण्यं इति सिद्धान्तेन सर्वेषां यास्कसायण– दयानन्दादीनांवेदभाष्यकाराणां वेद भाष्ये श्रमः व्यर्थो यास्यतीति। मन्ये यदधीतं अविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते, इति महर्षेः पतञ्जलेः सिद्धान्तं अत्यन्तं समीचीनमस्ति। अस्मादेव कारणात् आचार्य यास्कः गो शब्दादारभ्य देवपत्नी पर्यन्तं त्रिसप्तत्युत्तरसप्त– सताधिकसहस्रशब्दानां समाम्नायं, वैदिक शब्दकोशं पर्यायत्वेन निघण्टुं विरच्य तस्य व्याख्याग्रन्थरूपेण निरुक्त माध्यमेन समाम्नात शब्दानां निर्वचनं वेद मन्त्रार्थावगमनार्थम् चकार।

इह प्राप्ताऽवसरस्य सदुपयोगो भविष्यति यत् यास्काऽनुसारं निघण्टु शब्दस्य निर्वचनं कुर्याम्। नि उपसर्ग पूर्वक गम् धातोः कृते औणादिक तुन् प्रत्ययेन निष्पन्नः निगन्तु शब्दे कृते गकारस्य धकारे नकारस्य णकारे तकारस्य च टकारे निघण्टु शब्दस्य आचार्य यास्कः निर्वचनं करोति। अत्र प्रायेण व्याकरणस्य सर्वे सूत्राः बाधिताः, कारणं यत् आचार्य यास्कः वैदिक शब्द निर्वचनाऽवसरे व्याकरण नियमान् दण्डं प्रदर्श्य साधयति। अस्तु आचार्य यास्कः केवलं वैदिक मन्त्रार्थमेव लक्षीकृत्य वैदिक शब्दान् निर्वक्ति।

यद्यप्यऽष्टाध्याय्यां महर्षिणा पाणिनिना तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् इति सूत्रं लिखितं येन सवर्ण संज्ञायाः विधानमस्ति, गकार घकारयोः परस्परं सवर्ण संज्ञा तु भवति, परञ्च गकारस्य स्थाने घकारः न कर्तुम् शक्यते, सूत्र निर्देशाभावात्। एवमेव नकारस्य स्थाने ष्टुना ष्टुः इति सूत्रेण णकारः भवति परञ्च निघण्टोरत्र न पुनश्चाऽपि तकारस्याऽपि टकारो व्याकरण नियमाऽनुसारं न कर्तुम् शक्यते, परञ्च यास्कस्तु चक्षुषी निमिल्य येन केनापि प्रकारेण मन्त्रार्थ सिध्यर्थम् अति परोक्षवृत्तिमाश्रित्य वैदिक शब्दान् निरुवाच। मन्ये उपमन्यु आचार्यस्याऽनुयायिनः नि उपसर्ग पूर्वक गम् धातोः सि–त–नि इत्युणादि सूत्रेण कृते तुनि निघण्टु शब्दस्य निर्वचनमाचक्षते, इह पर्यन्तं तु व्याकरस्य लेश मात्रं संस्कारं व्याकरणस्याऽस्ति। परञ्च आङ् उपसर्ग पूर्वकं हन धातोः, उतवा सम् आङ् उपसर्ग पूर्वक हन धातोः कृते तुनि औणादिक सूत्रेण आ उतवा समा इत्यनयोः स्थाने न्यादेशे हकारस्य घकारः नकारस्य णकारः तथा च तकारस्य टकारादेशे निघण्टु शब्दस्य निर्वचने प्रथम निघण्टुतोऽल्पं व्याकरण संस्कारं प्रतिभाति, एवं च सम् आङ् उपसर्ग पूर्वक ह्व धातोः कृते तुनि ऋकारस्य गुणे रपरे कृते समा इत्यस्य न्यादेशे हकारस्य घकारे रेफस्य णकारे तथा च तकारस्य टकारादेशे कृते समा हर्तु इत्यस्य स्थाने निघण्टु शब्दस्य निर्वचने व्याकरणस्य किंचिदप्यन्सम् नानुभूयते अत्र आचार्य यास्कः प्रथम निघण्टु शब्दस्य निर्वचने निगम शब्द कारणात् निघण्टु शब्दं स्वीकरोति, यतोहि – तत्र केवलं प्रत्यय भेदः, द्वितीये आङ् उपसर्ग पूर्वक हन धातोः कृते तुनि निघण्टु शब्दे पाठ कारणात् तथा च सम् आङ् उपसर्ग पूर्वक ह्व धातोः कृते तुनि चयन कारणात्, अर्थात् वेदाः निगमाः भवन्ति, वेदानां पाठ महत्ता, एवं वेद मन्त्रेभ्यः चित्वा – चित्वा शब्दाः निघण्टु रूपे सङ्गृहीताः अतिपरोक्षवृत्तिमाश्रित्य यास्कः मन्त्रार्थ करणार्थं वैदिक व्यवहारार्थं च निरुवाच। यास्कस्य सम्पूर्णतया लक्ष्यं वैदिक मन्त्राणां षुष्ठुतया अर्थावगमनेऽस्ति अतः यत् कृतं तत् षुष्ठ्वेव।

वयं सर्वे जानीमः यत् शब्दाः चतुश्प्रकारकाः भवन्ति। अस्याऽभिधानं शेषाऽवतारेण भगवता पतञ्जलिना व्याकरणप्रयोजनोद्घाटनाऽवसरे महाभाष्ये गौण प्रयोजनं अविधीयते–चत्वारीति, मन्ये तदनुसारमेव यास्काऽचार्यः[3] तद्यानि चत्वार पदजातानि नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्च तानी मानि भवन्ति। कस्यचित् वाक्यस्य कृते एतेषां अर्थात् नामाख्यातोपसर्ग निपातानां प्रायेणाऽवश्यकता भवती। वैदिक मन्त्रेऽपि एतेषामेव नामख्यातोपसर्ग निपातानां प्रयोगो दृश्यते। एतेषां चतुर्णां महर्षिणा पतञ्जलिना महाभाष्यपस्पशाह्निके चत्वारीति प्रयोजने सविस्तरं चर्चितम्। वस्तुतस्तु नामाख्यातेचोपसर्ग निपाताश्च इत्यत्र यास्केन नाम शब्दस्य व्याख्या करणीया आसीत्। किन्तु प्रथमतः आख्यातस्य लक्षणं यास्केन दत्तम्, यथा– भाव प्रधानमाख्यातम्। सत्वप्रधानानि नामानि। अत्र व्यतिक्रमः। आचार्य यास्काऽनुसारं आख्यातं भावप्रधानं भवति। कः भावः इत्यस्य ज्ञानं आवश्यकं मत्वा वैयाकरणभूषणसारकारेण उक्तम्– व्यापारस्तु भावनाऽभिधासाध्यत्वेनाऽभिधीयमाना क्रिया इत्येते सर्वे परस्परं पर्यायवाचिनः। तत्र क्रिया द्विविधा भवति– सिद्धाऽवस्थाऽपन्ना साध्याऽवस्थाऽपन्ना च। सिद्धाऽवस्थाऽपन्नाक्रिया सा वर्तते। यत्र सत्वस्याऽपि उपलब्धिर्भवति, यथा – व्रज्या, पक्तिरिति। साध्याऽवस्थाऽपन्नाक्रिया सा भवति यत्र उपक्क्रम प्रभृत्यपवर्ग पर्यन्तं भावस्य प्रतीतिर्भवति, यथा – व्रजति पचतीति। एतत् भर्तृहरिणावाक्यपदीयेलिखितम्, यथा – यावत् सिद्धमसिद्धम् वा साध्यत्वेनाऽभिधीयते, आश्रितक्रमरूपत्वात् सा क्रियेत्यभिधीयते। व्यवहारेपि दृश्यते यत् पचति प्रयोगे अनेकाः अवान्तरभूताः क्रियाः पचतित्यस्मिन् समाविष्टाः। यथा– महानसस्थिता महिला तण्डुलादि शुद्धीकरणादारभ्य

पाकान्त पर्यन्तं इदमेवाचष्टे यत् भोजनं पचामि । परञ्च पच्धातोरेव निष्पन्नः पाक् शब्दः सिद्धाऽवस्थाऽपन्नाक्रिया युक्तः तत्र न काचिदपि अवान्तर क्रिया संलग्नाऽस्ति। अत्रैव यास्काऽचार्यस्य आशयः। तात्पर्यं यत् साध्याऽवस्थाऽपन्नाक्रियायां आकांक्षा भवति, परञ्च सिद्धाऽवस्थाऽपन्नायां न काचिदप्याकाङ्क्षा।

नाम शब्दः प्रातिपदिकेऽर्थे प्रयुङ्क्ते। तात्पर्यं यत् प्रातिपदिक पर्यायवाची नामाऽस्ति। अत एवोच्यते– एकंद्विकंत्रिकंचैवचतुष्कंपञ्चकम् तथा इति कौण्डभट्टमहोदयेन वैयाकरणभूषणसारस्य नामार्थनिर्णय प्रकरणे लिखितमस्ति। एवमेव भट्टोजिदीक्षितेन सिद्धान्तकौमुद्याः नाम धातु प्रकरणे नाम शब्दः प्रातिपदिकेऽर्थे प्रयुक्तः। अथ चापि महर्षिणा पतञ्जलिना नामाख्यातोपसर्ग निपाताश्च, इत्यत्र प्रातिपदिकेऽर्थे एव नाम शब्दस्य प्रयोगः कृतः। सोऽयं नाम शब्दः अत्र यास्काऽचारेण प्रातिपदिकेऽर्थे प्रयुज्य नामाख्याते इत्युक्ते। अत्र नाम शब्दस्य लक्षणं कुर्वन् आचार्य यास्कः आचष्टे सत्वप्रधानानि इति। किम् नाम सत्वं इति ऊह्यं – महर्षिणा पाणिनिना चादयोऽसत्वे, प्रादयश्च इति सूत्र द्वयं लिखितं, तयोः अर्थं व्याहरन् आचार्य भट्टोजिदीक्षितेन सिद्धान्तकौमुद्यां वृत्तिर्लिख्यते – अद्रव्यार्थाश्चादयः निपाताः स्युः , प्रादयश्च तथा। अनेन ज्ञायते यत् सत्व शब्दः द्रव्यार्थो भवति। अतः सत्वप्रधानानि नामानि इत्यस्य स्थाने सरलीकरणार्थं द्रव्यप्रधानानि नामानि कर्तुम् शक्यते। तात्पर्यं यत्– यत्र सत्वानाम उतवा द्रव्याणां आधिक्यं भवति तत् नाम अथवा प्रातिपदिकं उच्यते। एवमेव यत्र द्रव्यापेक्षया– भावाऽधिक्यम् भवति तदाख्यातं कथ्यते। यथा– आख्यातस्य भेदद्वयं सिद्धाऽवस्थाऽपन्नाक्रिया, साध्याऽवस्थाऽपन्नाक्रिया चेति मत्वा यास्काऽचार्येण पचति, पक्तिः इति एवमेव व्रजति व्रज्या इत्युदाहरणद्वयं प्रदत्तम्। तथैव नाम्नोऽपि प्रकारद्वयं भवति। यथा– कर्ता, हर्ता, भर्ता एवं गौः अश्वः पुरुषश्चेति अत्र कर्तेत्यादि शब्देषु प्रकृति प्रत्यययोः अर्थः तदनुसारमेव ज्ञातुम् शक्यते, परञ्च गौरित्यादि शब्देषु स्पष्टतया प्रकृति प्रत्यययोः अर्थज्ञानाऽभावात् वैयाकरणानामनुसारं शब्दाः इमे रूढयः। तात्पर्यं यत् नैरुक्तानां मते यथा– शब्दार्थज्ञाने प्रत्यक्षवृत्तिः परोक्षवृत्तिः अतिपरोक्षवृत्तिश्च भवन्ति। तथैव वैयाकरणानां मतेऽपि यौगिकः योगरूढ़िः रूढ़िश्च शब्द साधुत्वे इत्येताषां वृत्तीनां समाश्रयणं पृथक् पृथगाऽचार्यैः क्रियते। वेदभाष्यकारेण आचार्य यास्केन उपरि नामाख्यातयोः लक्षणं प्रदत्तम्। तद् विषये एवात्रोच्यते – अदः इति सत्वानामुपदेशः गौरश्वः पुरुषोहस्तीति। तात्पर्यं यत् सर्वनामवाचक शब्दैः सर्वाणि नामानि कथ्यन्ते तथा गौः अश्वः पुरुषः हस्ती इत्येतैः एकैकस्य प्रातिपदिकस्य नाम्नः कृते विशिष्ट शब्दाः प्रयुज्यन्ते। एवमेव भवतीति भावस्य, एवं आस्ते शेते व्रजति तिष्ठति इत्यादिषु भाव विषये वार्षायणेः मतं व्याहरन् यास्काऽचार्येणोच्यते षड भावविकारा भवन्तीति। तात्पर्यं यत् भावे षड विकाराः दृश्यन्ते (1) जायते, (2) अस्ति, (3) विपरिणमते, (4) वर्धते, (5) अपक्षीयते, (6) विनष्यतीति। जायतेभावविकारः पूर्वभावस्य– आदिममाचष्टे न अपरभावमाचष्टे न प्रतिशेधति, अस्ति इत्युत्पन्नस्य सत्वस्य अवधारणमस्ति, विपरिणमते इति तृतीय भावविकारेण अप्रच्यवमानस्य तत्वाद्विकारं आचष्टे, वर्धते इति चतुर्थ भाव विकारेण प्रकारद्वयं वर्धनं अवगन्तव्यम् – शरीरेण विजयेन वेति, अपक्षीयते इति पञ्चमेन भावविकारेण विपरिणमते इत्येतस्य प्रातिलोम्यं ज्ञातव्यम्, विनष्यति– इत्यपरभावस्या– ऽदिममाचष्टे न पूर्वभावमाचष्टे, न प्रतिषेधति। अतोऽन्ये भाव विकारा एतेषामेव विकाराभवन्तीति सर्वैरवधेयम्।

नामाख्यातानन्तरं आचार्य यास्केन उपसर्गमाख्यायते। तत्र उपसर्ग विषये मतद्वयमस्ति। प्रथमं मतं शाकटायनस्य द्वितीयं च गार्ग्यस्य स्तः। यद्यपिऽमौ वैयाकरणौ, यतोहि – महर्षिणा पाणिनिना

अनयोः चर्चा स्वाष्टाध्याय्याः सादरं अधोलिखितयोः सूत्रयोः कृता। यथा– (1) त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य, (2) ओतो गार्ग्यस्य। अत्र उपसर्गः कः इत्यस्मिन् विषये यास्काऽचार्यः मौनोऽस्ति। परञ्चास्य उपसर्गस्योल्लेखः दाक्षी पुत्रेण स्वाष्टाध्याय्यां उपसर्गाः क्रियायोगे इति कृतः तथा चास्य व्याख्या रूपेण भट्टोजिदीक्षितः सिद्धान्तकौमुद्यां प्रादयः क्रियायोगे उपसर्ग संज्ञा स्युः, एव मग्रे गतिश्च, इति पाणिनि सूत्रेण प्रादीनां क्रियायोगे गति संज्ञा अपि भवति। तात्पर्यं इदं अस्ति यत् प्रथमतः प्रादयः अव्ययवाचकाः। परं चैतेषां क्रियायोगे उपसर्ग संज्ञा, इति संज्ञा च भवतः। परन्तु इयं चर्चा यास्केनाऽत्र न कृता। शाकटायनस्यमतानुसारं इमे उपसर्गाः स्वतन्त्रतः नार्थवाचकाः अपितु नामाख्यातयोरर्थद्योतकाः। किन्तु गार्ग्यमताऽनुसारं उपसर्गाः स्वतन्त्ररूपेणाऽपि अर्थवाचकाः भवन्ति। यथा– आ इत्यर्वागर्थे प्रयुज्यते तथा प्र परा इत्येतस्य प्रातिलोम्यम्, अभि इत्याभिमुख्यं तथा प्रति इत्येतस्य प्रातिलोम्यम्, अति सु इत्यभिपूजिताऽर्थे निर्दुर इत्येतयोः प्रातिलोम्यम्, नि अव इति विनिग्रहार्थयोः उद् इत्येतयोः प्रातिलोम्यम्, सम् इत्येकी भावम् वि अप इत्येतस्य प्रातिलोम्यम्, अनु इति सादृष्याऽपरभावं, अपि इति संसर्गम्, उप इत्यस्य उपजनेर्थे प्रयोगे भवति, तु परि इति सर्वतोभावं, अधि उपसर्गस्य उपरिभाव मैस्वर्येऽर्थे प्रयोगः क्रीयते । अनेन प्रकारेण इमे उपसर्गाः गार्ग्य मतानुसारं उच्चावचानर्थान् प्राहुः। वेद मन्त्रार्थ दृष्ट्या उपसर्गानां वाचकत्वस्वीकरणमनिवार्यमस्ति। यतोहि– वैदिक मन्त्रेषु प्रायेण उपसर्गाः स्वतन्त्रतया अर्थानाचक्षते।

वेद भाष्यकारः श्रीमान् यास्काऽचार्यः निपातानां विषये स्व मतं प्रस्तुयन्नाचष्टे– उच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्ति इति निपाताः। वेद मन्त्रार्थ दृष्ट्या कथनमिदं समीचीनमस्ति, परञ्च निपाताः वस्तुतः अव्ययाः वर्तन्ते। अव्ययान्तरगतचादीनां द्रव्य भिन्नेऽर्थे महर्षिणा पाणिनिना चादयोसत्वे, प्रादयश्च इति सूत्रद्वयेन उपर्युक्तानां निपात संज्ञा कृता। तयोः चर्चामकुर्वन् यास्काऽचार्यः उच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्ति इति निपात चर्चाम् करोति। तेषु निपातेषु केचित् उपमार्थकाः, केचित् कर्मोप संग्रहार्थकाः तथा केचित् पदपूरणाः भवन्ति इति यास्क कथनम्। तेषामेते चत्वारः उपमाऽर्थे प्रयुञ्जते। इवेति भाषायां च अन्वध्यायं च, अर्थात् इव इति निपातस्य लौकिके संस्कृते वैदिके संस्कृते च उपमार्थे प्रयोगो भवति। यथा– अग्निरिव (ऋग्वेद 10/84/2)। इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठ (ऋग्वेद 10/173/2)। न निपातस्य भाषायां निषेधेर्थे प्रयोगो भवति, परञ्च वैदिक मन्त्रेषु उपमार्थे निषेधेर्थे च प्रयोगौ दृश्येते। वैशिष्ट्यं इदं यत् निषेधेर्थे न इत्यस्य पूर्वे प्रयोगो भवति तु उपमार्थे पश्चात् प्रयोगो दृश्यते। यथा– नेद्रं देवममंसत (ऋग्वेद 10/86/1)। अत्र न निपातः निषेधेर्थे प्रयुक्तः। दुर्मदासो न सुरायाम् (ऋग्वेद 8/2/12)। अत्र न निपातः उपमार्थियोऽस्ति। अतः पश्चात् न इत्यस्य प्रयोगोऽस्ति। एतदनन्तरं चिद् इत्यस्य निपातस्य आचार्य यास्केन अनेकार्थतान् व्याहरन्नाख्यायते। यथा– आचार्यश्चिदिदं ब्रूयादिति पूजायाम्। तात्पर्यं इदं यत् प्रयोगेऽस्मिन् यास्काऽचार्यः चिन्निपातस्य पूजार्थे प्रयोगम् चकार। एवं आचार्यः कस्मात् इति प्रश्नमुथ्थाप्य आचष्टे यत् आचार्यः आचारं ग्राहयति, आचिनोति अर्थान्, आचिनोति बुद्धिमिति वा। आचार्यश्चिदत्र कथयित्वा यास्काऽचार्यः चिद् निपात माध्यमेन आचार्यस्य वैशिष्ट्यं द्योतयति। आशयं इदं अस्ति यत् आचार्यः एव इदं वक्तुम् समर्थः, नान्यः । दृश्यते यदत्राऽचार्य शब्दस्य निर्वचनं आङ् उपसर्ग पूर्वक चर् धातोः ण्यत् प्रत्ययेन, उतवा आङ् उपसर्ग पूर्वक चिञ् धातोः आचार्य यास्कः करोति। यद्यप्यत्र आङ् उपसर्ग पूर्वक चिञ् चयने इत्यस्मात् धातोः व्याकरण दृष्ट्या आचार्य शब्दस्य निर्वचनं कदापि न कर्तुम् शक्यते। तथापि वैदिक मन्त्रार्थ दृष्ट्या चिञ् धातोः आचार्य शब्दस्य निर्वचनं अनिवार्यमस्ति, अतः यास्केन तत्

कृतम्। एवमेव नु निपातस्याऽपि अनेके स्वर्थेषु प्रयोगो भवति। यथा– लौकिक संस्कृते इदं नु करिष्यति इत्यत्र हेत्वपदेशे, कथं नु करिष्यति इत्यनु पृष्टे, नन्वेतदकार्षीदिति, इत्यत्र उत्तरे नु शब्दस्य प्रयोगः कृतः । परञ्च वेदे नु निपातस्य प्रयोगः उपमार्थेऽपि भवति। यथा– वृक्षस्य नु ते पुरूहूत वयाः (ऋग्वेद 6/24/3)। इत्यस्मिन् मन्त्रे नु निपातस्य उपमार्थे प्रयोगोजातः। एवमेव अन्येषामपि निपातानां वेदे विभिन्ने स्वर्थेषु प्रयोगः दरिदृश्यते। तेषां छन्दोभ्य समाहृत्य–समाहृत्य आचार्य यास्केन निपाताः अन्विषिता।

मन्येऽहम् यत् सर्वेषां निपातानां शोधपत्रे प्रदर्शनम्, शोध प्रबन्ध इव विशालकायो भविष्यति, अतः केषान्चिदेव निपातानां वैदिकमुदाहरणं अत्र प्रस्तुतम् मया। शम्मिति।

सन्दर्भः–

1. तद् यत्र स्वर संस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन विकारेण अन्वितौ स्याताम्। सम् विज्ञातानि। (निरुक्त प्रथमोऽध्यायः चतुर्थः पादः)।
2. प्रकृतिप्रत्यययोरभेदान्वयः। (भट्टोजिदीक्षित– सिद्धान्तकौमुदी कारक प्रकरणम्)।
3. ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गोवेदोऽध्येयोज्ञेयश्च (पातञ्जल महाभाष्य पस्पशाह्निकान्तर्गतम्)।
4. अंहिसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिगहा यमाः।(पातञ्जल योगदर्शन 2/30)।
5. शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानिनियमाः। (पातञ्जल योगदर्शन 2/32)।
6. नित्य नैमित्तिक प्रायश्चित्तोपासनानि। (सदानन्द वेदान्तसारे)।
7. यदधीतं अविज्ञातं निगदे नैव शब्द्यते, अनग्नाविव शुष्कैधोनतज्ज्वलति करहिचित्।
   (पातञ्जल महाभाष्य पस्पशाह्निकाऽन्तरर्गतम्)।
8. नियतवाचो युक्तयोनियतानुपूर्व्याः भवन्ति। (निरुक्त प्रथमोऽध्यायः पञ्चमः पादः)।
9. सि–त–नि–गमि–मसि–सचि–अवि–घाञ्–ब्रुशिभ्यस्तुन्। उणादि (1–69)
10. चत्वारिश्रिंगास्त्रयोअस्यपादाः द्वेशीर्षे सप्तहस्ता–शोअस्य।
    त्रिधाबद्धो वृषभोरोरवितिमहोदेवो मर्त्याँ आविवेश।।
    (पातञ्जल महाभाष्य पस्पशाह्निकाऽन्तर्गतम्)।
11. तद्यानिचत्वारिपदजातानि नामाख्यातेचोपसर्ग निपाताश्च तानी मानि भवन्ति। (यास्क निरुक्त प्रथमोऽध्यायप्रथमपादाऽन्तर्गतम्)।
12. व्यापारस्तु भावनाऽभिधा – साध्यत्वेनाऽभिधीय–मानाक्रिया। (वैयाकरणभूषणसार धात्वर्थ निर्णयः)।
13. यावत् सिद्धमसिद्धं वा साध्यत्वेनाऽभिधीयते।
    आश्रितक्रमरूपत्वात् सा क्रियेत्यभिधीयते।।
    (वाक्यपदीये द्रष्टव्यम्)।
14. एकंद्विकंत्रिकंचाथचतुष्कंपञ्चकं तथा।
    नामार्थ इति सर्वेऽमी पक्षाः शास्त्रे निरूपिताः।।
    (वैयाकरणभूषणसारनामार्थनिर्णयेपञ्चविंशः)।
15. चादयोऽसत्वे (पाणिनिअष्टाध्यायी 1/4/57)।
16. प्रादयः (पाणिनिअष्टाध्यायी 1/4/58)।
17. त्रिपृभृतिषुशाकटाकयनस्य
    (पाणिनि अ0 8/4/50)।
18. ओतो गार्ग्यस्य (पा0 अ0 8/3/20)।
19. उपसर्गाः क्रियायोगे (पा0 अ0 1/4/59)।
23. अग्निरिव (ऋग्वेद 10/84/2)।
21. इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठ (ऋग्वेद 10/173/2)।
22. नेद्रं देवममंसत (ऋग्वेद 10/86/1)।
23. दुर्मदासो नसुरायाम् (ऋग्वेद 8/2/12)।
24. वृक्षस्यं नु ते पुरुहूत वयाः (ऋग्वेद 6/24/3)।

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

''धातुकाव्ये कारकसमासयोः समीक्षणम्''

❐ डॉ. रावेन्द्र कुमार मिश्र

सर्वप्रथमं कारकत्वमिति कः पदार्थः इति जिज्ञासा समुत्पद्यते? त्रीणि लक्षणानि विद्वद्भिः स्वीकृतानि–(1) क्रियानिष्पादकत्वं कारकत्वम्, (2) क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्, (3) क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्। एतानि त्रीण्यपि लक्षणानि अधस्तनपद्ये कारकषट्केषु घटन्ति। कारकभेदाः–

कर्ता कर्म च करणं च सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणञ्चचेत्याहुः कारकाणि षट्।

(i) कर्तृकारकविवेचनम्

तत्र प्रकृतधातुवाच्यव्यापाराश्रयत्वं कर्तृत्त्वम्। तदनुसारमत्र कर्तुः त्रीणि लक्षणानि प्रस्तूयन्ते। यथा (1) प्रकृतधात्वर्थव्यापाराश्रयत्वं कर्तृत्वम्। (2) प्रकृत. धातुवाच्यव्यापाराश्रयत्वं कर्तृत्वम्। (3) व्यापाराश्रयं कर्तृत्वम्। यद्यपि एषु विषयेषु यथाप्रसंगं बहुना चर्चितमस्ति न चोचितमत्र तथापि सूत्ररूपेण अभिव्यज्यते–''तिङ्समानाधिकरणे प्रथमा'', अपरः 'अभिहिते प्रथमा'।[1] उक्तानुसारं कर्तृकारक–निष्ठव्यापार एव प्रकृतधातुवाच्यः, नत्वन्यकारकनिष्ठो व्यापारः, यथा–वह्निना पचतीत्यत्र वह्निनिष्ठ प्रज्वलनादिः न प्रकृतधातुवाच्यः। कर्तृकारकादिभिन्ने कर्मादिकारके व्यापाराश्रयः कर्ता न भवत्वेतदर्थं धातुवाच्येति, तत्र केनचिदुक्ते सति प्रथमा भवत्येव। सूत्रकारमते तु कर्तृकर्माद्यर्थकप्रत्ययेन कर्त्रादि–प्रसंगानामुक्ते सति प्रथमाया अर्थः प्रातिपदिकार्थ एव भवति।

(ii) कर्मकारकविवेचनम्

व्याकरणशास्त्रीयकर्मसंज्ञकत्वमेव कर्मत्वम्। एतच्चानेकसूत्रबोधितत्वादनेकविधम्। तत्र व्यापकं कर्मव्वम् ''कर्तुरीप्सिततमं कर्म''[2], इतिसूत्रबोधितम्। परिष्कृतस्वरूपमस्य प्रकृतधात्वर्थप्रधानीभूत–व्यापारप्रयोज्यप्रकृतधात्वर्थफलाश्रयत्वेनोद्देश्यत्वं कर्मत्वम्। अर्थात् प्रकृतधात्वर्थप्रधानीभूतो यो व्यापार–स्तत्प्रयोज्यं यत् प्रकृतधात्वर्थफलं तत्फलाश्रयत्वेन उद्देश्यत्वमित्यर्थः। यथा चैत्रो हरिं भजतीत्यत्र प्रकृतधातुः भजधातुः तदर्थः प्रधानीभूतो व्यापारो भजनानुकूलो व्यापारस्तत् प्रयोज्यं प्रकृतधात्वर्थफलं प्रीतिरूपं फलं तदाश्रयत्वेनेच्छोद्देश्यत्वं हरेरिति भवति तस्य कर्मसंज्ञा। ईप्सिततमत्वस्यापि एतदेव लक्षणम्। आप्नोतेरिच्छासन्नन्तात् कर्मक्तान्तात् प्रकृत्यर्थाति–शयद्योतके तमपि निष्पन्न ईप्सिततमशब्दः। फलव्यापारयोः प्रकृतधात्वर्थत्वन्तु प्रत्यासत्तिलभ्यम्। तेन यदा पुष्ट्यर्थं माषभक्षणाय माषक्षेत्रे स्वाश्वबन्धनं तदा माषेष्वश्वं बध्नातीत्यादौ माषाणां न कर्मत्वम्, बन्धनप्रयोज्यभाक्षाणफलाश्रयत्वे ऽपि बध्नात्यर्थत्वाभावात्। लक्षणे प्रयोज्यत्वनिवेशात् गां पयो दोग्धीत्यादौ विभागानुकूलव्यापारार्थकदुहियोगे पयसः कर्मत्व– सिद्धिः।

(iii) करणकारकविवेचनम्

स्वनिष्ठाव्यापारव्यवधानेन फलनिष्पादकत्वं करणत्वम्। इदमेव साधकतमत्वम्। अर्थात् यस्य

* वार्ड नं. (3), इन्दिरा कालोनी, बालौदा बाजार (छत्तीसगढ़)

व्यापारस्य तत्क्षणे एव फलं स्यात्, तदेव करणम् यथा रामेण बाणेन हतो बाली इत्यत्र स्वबाणनिष्ठ–व्यापाराव्यहितोत्तरबालिप्राणवियोगरूपफलनिष्पादफत्वं बाणस्याऽस्तीति तस्य करणं सिद्धम्।[3] एतदुक्तौ प्रमाणम्–

क्रियायाः परिनिष्पत्तिर्यद्व्यापारदनन्तरम्।
विवक्ष्यते यदा यत्र करणं तत्तदा स्मृतम्।।[4]

(iv) सम्प्रदानकारक विवेचनम्

क्रियामात्रकर्मसम्बन्धाय क्रियायामुद्देश्यं यत्कारकं तत्वं सम्प्रदानत्वम्। अर्थात् कस्याश्चिदपि क्रियायाः कर्मणः सम्बद्धः यः इष्टो भवति, तस्य सम्प्रदानत्वं भवति। मात्रं ''कात्स्न्र्येऽवधारणे'' इति कोशात् मात्रशब्दः साकल्यार्थकः, तेन सकलक्रिया कर्मसम्बन्धाय, न तु दानक्रियामात्रकर्मसम्बन्धायार्थः। यथा–ब्रह्मणाय गां ददातीत्यत्र दानक्रियायाः कर्मीभूतगोः सम्बन्धाय दानपक्रियोद्देश्यः बाह्मणोऽस्ति। गोः ब्राह्मणस्य च स्वस्वामिभावसम्बन्धो भवति। तथा च मात्रग्रहणात् चैत्रः मैत्राय वार्तां कथयति अस्मिन् मैत्रवार्तयोः ज्ञातृज्ञेयभावः सम्बन्धः। अत्रापि तथैव सम्प्रदानत्वम्। अत एव पाणिनिनोक्तं ''कर्मणा यमभिप्रेति स सम्प्रदानम्।''[5] इति सम्प्रदानसंज्ञाबोधकं सूत्रमिदमस्ति।

(v) अपादानकारकविवेचनम्

तत्तत्कर्तृसमवेततत्तत्क्रियाजन्यप्रकृतधात्ववाच्य–विभागा श्रयत्वमपादानत्वम्। ''ध्रुवमपायेऽपादानम्''[6], इति अपादानसंज्ञाबोधकं सूत्रम्। यद्यपि स्थेयार्थकात् कुटादेः ध्रुवधातोः पचाद्यचि निष्पन्नो ध्रुवशब्दः। एवं च ध्रुवमस्थिरमचलमित्यर्थः प्रतीयते, तथापि–

अपाये यदुदासीनं चलं वा यदि वाचलम्।
ध्रुवमेवातदावेशात् तदपादानमुच्यते।।

इत्यभियुक्तोक्तकारिकाद्यनुसारेण 'ध्रुवपदम्' अवधिभूतपरमिति बोध्यम्। प्रकृतधात्वर्थप्रधानीभूत –व्यापाराश्रयत्वे सति तज्जन्यम् विभागाश्रयत्वं ध्रुवत्वभिति दीक्षितादिमतम्। मंजूषाकारस्तु अपाये गतिविशेषे सति यद् ध्रुवम्–अवधिभावोपगमाश्रयत्वे सति तदतिरिक्तावधित्वोपयोगिव्यापारानाश्रयत्वं ध्रुवत्वमिति। तन्मते प्रमाणन्तु अपादानसंज्ञा सूत्रभाष्यम्। उक्ताशयो वर्तते–तत्तत्कर्तृसमवेता अर्थात् समवायेन वर्तमाना क्रिया उत्तरदेशसंयोगानुकूला–पादप्रक्षेपणादिरूपा गमनक्रिया, तज्जन्यः प्रकृतधात्व–वाच्यो यो विभागः तदाश्रयत्वं ग्रामस्याऽस्तीति लक्षणसमन्वयः विभागो न हि गम्धातुवाच्य इति तस्य प्रकृतधात्ववाच्यत्वं सुष्पष्टमेव।

(vi) अधिकरणकारकविवेचनम्

कर्तृकर्मद्वारकव्यापाराधारत्वम् अधिकरणत्वम्। एतत्तु ''आधारोऽधिकरणम्''[7], इति सूत्रसामर्थ्यादेव लभ्यते। अस्यायमाशयः तथा हि उक्तसूत्रणे कर्तृकर्मघटितपरम्परासम्बन्धेन कर्मनिष्ठफल–रूपक्रियाधारस्य कर्तृनिष्ठव्यापाररूपक्रियाधारस्य चानेनाधिकरणसंज्ञा विधीयते। साक्षात्फलाधारे कर्मसंज्ञयासाक्षात् व्यापाराधारे च कर्तृसंज्ञयाऽस्य बाधात् इत्यवधेयम्। यथा–स्थाल्यामोदनं गृहे पचतीत्यादौ कर्मद्वारकविक्लित्तिरूपफलाधारः स्थाली, कर्तृद्वाराकव्यापाराधारो गृहमिति। अत्रायं निष्कर्षः कारकाधिकारेण एतेन क्रियान्वयाधारस्याधिकरणसंज्ञा विधीयते। क्रिया च धात्वर्थः। साक्षादाधारस्य पराभ्यां कर्तृकर्मसंज्ञाभ्यामाक्रान्तत्वात् सूत्रमिदं व्यर्थं सत् ज्ञापयति परम्परया तदाश्रयस्य ग्रहणं बोधयति।

तच्चाधिकरणं त्रिधाऽभिव्यापकमौपश्लेषिकं वैषयिकं चेति। तत्र सकलावयवव्याप्तौ व्यापकाधर–वारत्वम्–यत्र व्याप्यव्यापकभावघटित परम्परासम्बन्धेन क्रियाश्रयोऽभिव्यापकम्। यथा–तिलेषु तैलम्। उपसमीपे श्लेषः सम्बन्धस्तत्कृतमौपश्लेषिकम्। यथा–वटे गावः सन्ति। विषयताघटितपरम्परासम्बन्धेन क्रियाश्रयो वैषयिकम्। यथा मोक्षे इच्छाऽस्ति, खे पक्षिणः इत्यादि ज्ञेयम्।

शेषे षष्ठी :– एतदतिरिक्तमेव षष्ठी सम्बन्ध–विवक्षाकारणात् साक्षात्क्रियया सह सम्बन्धो न भवति, अत एव कारकेषु गणनाऽस्य न भवति। अस्यानेक–विधसम्बन्धः प्रतीयते यो व्यवहारे सदैव प्रयुज्यते यथा–राज्ञः पुरुषो गच्छति, मम पुस्तकमिदमस्ति, देवदत्तस्येयं माता वर्तते इत्यादि सम्बन्धकारकस्यो–दाहरणानि ज्ञातव्यानि सन्ति।

धातुकाव्यस्य विविधांशानुशीलनानन्तरं कारकादिप्रयोगस्यापि धातुकाव्यानुसारं परीशीलयितुं प्रयासः क्रियते। प्रयुक्तपद्येषु कर्तृकर्मादिकारकाणा–मन्वेषणपूर्वकं निर्देशः संक्षिप्तरूपेणात्र क्रियमाणोऽस्ति।

1	**प्रयोगः**	**विभक्तिः**	**कारकम्**	**सर्गः/श्लोकः**
2	गान्दिनी भूः	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/2
3	स	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/4
4	स्थितः	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/5
5	पृदाकुजित्	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/5
6	स	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/6
7	य	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/7
8	स	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/7
9	कः	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/7
10	खलः	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/8
11	संक्षयः	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/8
12	रदन्	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/8
13	विलिखन्	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/8
14	पीडयन्	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/8
15	नद्न्	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/8
16	अतर्दकाः	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/9
17	विकर्दमाशयाः	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/9
18	गुणबिन्दु–लोलुपाः	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/9
19	वयम्	प्रथमा	कर्तृकारकम्	1/10

इत्थमेव समस्तपद्येषु कर्तृकारकस्य प्रयोगाः कृताः सन्ति। कतिचन निर्देशानुसारं पूर्वोक्तवत् प्रयोगाः प्रस्तूयन्ते। यथा–यः, स, जनः, प्रदाधिता, वर्तनी, प्रश्लाखितम्, व्याप्तम्, वर्चमानाः, पशुपाः, सुलोचना, शचीसमप्रभा, सकञ्चुकाः, व्रजाङ्गना, हरिः, वासांसि, अहूर्णचित्ताः, जनाः, दानवाः, महनीयचेष्टितः, स भण्डिलः, पयोधिबाडितः, बल्भप्रगल्भाः पथिकाः, कललापिनः शुकाः, द्विजा, आशाः, भूषाः मालिकाः, कुमाराः, शुचमिष्टकराः, सपक्षाः[8], प्रयुक्ताः सन्ति।

द्वितीयसर्गस्थाः कर्तृकारकस्यापि कतिचन प्रयोगाः प्रस्तूयन्ते–गोपाः, कृष्णः, महेलाः, गोपीघटाः चेतः, ताः, दूतः, नाङ्गजः, यः वधूजनः, लीलाः, स्नाप्यमानः, गाः, सरामः, प्रतापाः, प्रपोलः, नीचाः, गान्दिनेयः, ते सचरन्तः, दुहानः, हरिः, पृक्ताग्रजः, वसानः, ब्रुवाणः, ईशः, गताः, पान्त्यः, दान्त्यः, कथाः, स विष्णुः इत्यादयः प्रयुक्ताः सन्ति।[9],

तदनुसारमेव तृतीयसर्गस्थपद्येषु कर्तृकारकस्य प्रयोगाः कतिचनात्र निर्दिश्यन्ते–भेरीरवः, मल्लाः, लूनवैरी, कर्णौ, सुश्वल्कनाः, कः, राजा, चाणूरः, क्षमाः, लोकः, कोपः, मूढाः, पादङ्कितः, अनुजाः, प्रह्रष्टाः इत्यादयः वहव सन्ति।[10],

कर्मकारकस्य प्रयोगाः कतिचन निर्दिश्यन्ते–प्रथमसर्गानुसारम् यथा–लोकनाथकम्, हरिम्, विभुम्, रथं, विधिम् विश्वम्, खाद्यानि, अक्लिन्दनीयान्, नन्दात्मजं, यां जनानतुण्डकान्, नटीजनान्, दीधितीन्, मठान्, जितान्, शोभितान्, शशान्, राक्षसान्, स्वकामुकान्, ब्रजं, प्रवल्लमानम्, देवनोत्सुकम्, सेव्यम्, प्रमोदितम्, सलितम्, महीतलम्, तं, तुरंगान्, सुखं, फलानि, तूषं निलयम्, निशाम्, आदि प्रयुक्ताः, सन्ति।[11],

द्वितीयसर्गेऽपि कर्मकारकस्य कतिचन प्रयोगाः प्रस्तूयन्ते– वियोगबहिम्, लग्नम्, रागम्, विषदम्, मारम्, सरोजम्, अच्युतम्, कटाक्षान्, दलं, क्षणं, मोदम्, गूढम्, तापम्, अजं, श्रियं भरन्तीम, तं, कृपाम्, मोहम्, कामम्, राजपथम्, जाग्रतम्, प्रीतिम्, मालाम्, भवन्तम्, कंसम्, बुधजनम्, नगरोद्यानम्, निशाम्

आदि।[12], इत्थमेव तृतीयसर्गस्थपद्येषु कर्मकारकस्य प्रयोगाः संकेतिताः सन्ति। यथा–रङ्गम्, स्वजनान्, नागम्, धुनानं, प्रियमयम्, दन्तवरम्, जनमतिम्, अश्वम्, अद्रिराजम्, तोषम्, चण्डातकम्, हलिनम्, मुष्टिम्, नृपतिम्, माम्, त्वाम् आदि।[13],

उपर्युक्तानुसारमेव करणकारकस्य कानिचित् उदाहरणानि प्रयुक्तपद्येषु निर्दिष्टानि सन्ति, येषां स्वरूपाणि अत्र निर्दिष्यन्ते। यथा–मुदा, अध्वना, शिखावलैः, फेनैः, शाखिभिः, शकैः, जनैः, जन्तुभिः, द्रुमैः, रश्मिभिः। कदनैः, संज्ञापितासुरेण, बकेन, याचमानैः, स्वरेण, जनैर्युवद्भिः, प्रवीणैः तथा च नयनप्रचम्पैः, वीरैः, सर्वैः, मुष्टिघातैः, कुद्धेन, गर्वितैः, इत्यादिप्रयोगाः, समुपलब्धाः सन्ति।[14], इत्थमेव सम्प्रदानकारकस्य साधुप्रयोगाः प्रोक्ताः पद्येषु तेषु कतिचनात्र प्रदर्श्यन्ते। यथा झषादिवपुषे, ते, भुवनाभिवृद्धयै, हरयेऽकिताय, सुसोहनाय, द्रुहेऽस्मै, इत्यादि।[15],

अपादानकारकस्यापि पूर्ववदेव कतिचन प्रयुक्तप्रयोगाः द्रष्टव्याः सन्ति। यथा–सज्जाद् भिया, मार्गात्, क्षणात्, अमथ्नात्, पुरात् इत्यादि।[16], पूर्वोक्तकारकाणाम् उदाहरणानि निर्दिष्टानि तथा चाधिकरणकारकस्यापि केचन प्रयोक्तप्रयोगाः द्रष्टव्याः सन्ति। यथा–हरौ, कचे, सुरार्चिते, यस्मिन्, जपे, चक्रे, वर्णने, फणीन्द्रे निशि, आदि। तथा चैवमपि–नाकिलोके, दृष्टौ कृटाद्येषु, हतेषु, रणेषु इत्यादयः।[17]

सम्बन्धे षष्ठी

यत्र सम्बन्धस्य ज्ञानं भवति तत्र सामान्यतया षष्ठी विभक्तिर्भवति। अस्य साक्षात् क्रियया सह सम्बन्धाभावत् कारकत्वं नैव मन्यते। अत एव स्वस्वामिभावादिवाचकत्वात् षष्ठी विभक्तिः प्रयुक्ताऽस्ति। धातुकाव्ये षष्ठी विभक्तेरपि बहूनि समुदाहरणानि द्रष्टव्यानि। यथा–सतां मनः[18], पश्यतः तस्य[19], चेतसाम्, अवेलितानाम्[20], खलात्मनाम[21], स्वसेविनाम्[22], सतां[23], कमलस्य[24], नृपस्य[25], शवतां गतस्य[26], खलानाम्[27], सुविस्मितस्य[28], स्तुवताम्[29], देवौघस्य[30], ईशस्य[31], गोपानां[32], सतां[33], महाहेः[34], पुंसाम्[35], भ्रूणस्य[36], अस्य[37], नृणाम्[38], उष्ट्रणाम्[39], तस्य[40]।

समास

धातुकाव्ये प्रयुक्तकारकाणां प्रयोगान् यथा स्थलमत्र कानिचित् प्रदर्श्य उक्तविन्दौ कारकपदेन सह आदिपदस्य योजनेन अनिर्दिष्टपदांशप्रकरणं वा गृह्यते यथोक्तबिन्दौ कारकादि पदं निर्दिश्यते, अत एवात्र आदिपदस्य संकेतेन समासपदमपि गृह्यते चेत् वरमेव नत्ववरं सिद्ध्यति। यतो हि संकेतितादिपदेन समासग्रहणं भूषणं न तु दूषणम्। अतः समासस्य समासेन परिचयं प्रस्तूय अन्यात्मकं बिन्दुम् अनुशीलनीयं वर्तते; तत्प्राक् धातुकाव्ये सामासिकप्रयोगान् अपि काञ्चन प्रदर्श्यैव अन्यं समीक्ष्यते।

सम्पूर्वकम् अस्धातोर्घञ्कृते समासपदं सिद्ध्यति। समसनं समासः कथ्यते। संक्षेपेण अत्रोच्यते यत् समासः पञ्चविधो भवति। केवलसमासमतिरिच्य विशेषसमासे गणना चतुर्धा भवति।

1. तत्पुरुषाः अर्थात् उत्तरपदस्यार्थो यदि क्रियायान्वितो भवति, तर्हि तत्पुरुषो भवति। यथा–राजपुरुषादिः। तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः। यथा नीलोत्पलम् आदि। कर्मधारयभेदो द्विगुः। यथा–पंचगवमादि।

2. ब्रहुब्रीहिः अस्योदाहरणम्–पीताम्बरादि भवति।

3. द्वन्द्वः उभयपदार्थस्य प्राधान्यं भवति–रामकृष्णौ इत्यादि।

4. अव्ययीभाव :– पूर्वपदार्थप्रधानत्वात् अव्ययीभावो भवति यथा–अधिहरि आदि।

सिद्धान्तकौमुद्यां षड्विधसमास्य गणना यथापूर्वमत्र प्रतिपादितं तथैव वर्तते। निम्नपद्येऽपि संकेतिमस्ति–

सुपां सुपा तिङा नाम्ना धातुनाथ तिङा तिङा।
सुबन्तेनेति च ज्ञेयः समासः षड्विधो बुधैः।।[41]

अनुसन्धेयधातुकाव्यीयानुसारमत्र कतिचन सामासिकपदानां प्रयोगाः प्रदर्श्यन्ते। यथा–प्रश्विन्दिताशम् प्रश्विन्दिताः सम्यग्धवलीकृता आशा दिशो येन तम् प्रश्विन्दिताशम्। नतभन्दिनम्–नतान् नमनकतृन् भन्दयितुं सुखयितुं कल्याणवतः कर्तुं शीलं यस्य तं नतभन्दिनम्।[42], अकत्थनः न कत्थनमात्मश्लाघा शीलं यस्य सः।[43], शिङ्घित आघ्रातः पुष्पाणां सौरभो यैस्ते शिङ्घितपुष्पसौरभाः[44], महनीयचेष्टितो महनीयं चेष्टितं व्यापारो यस्य सः।[45], रुण्डकलुण्डनोज्झितान्[46], अत्र षष्ठीतत्पुरुष–विग्रहोऽस्ति रुण्डकानां चौराणाम् लुण्ठनेन चौर्येण तृतीयापि तत्पुरुषो भवति तदा समासत्वात् तत्पदं भवति।

इत्थमेव अस्मिन् पदेऽपि तदेव वर्तते– अरिधिक्षकम्–अरीणां धीक्षकं क्लेशकं दाहकं वा तम् अरिधीक्षकम्[47], गोपीनां घटाः समूहाः इति ताः गोपीघटाः।[48], नन्दात्मजः–नन्दस्य आत्मजः पुत्रः इति नन्दात्मजः[49], एवमेव समीरधुतसौरभ–धूतभृङ्गम्[50]–अत्रानेकपदसमासत्वाद् बहुब्रीही–समासस्य प्राधान्यं वर्तते; पूर्वमपि समुदाहरणानि प्रस्तुतानि सन्ति। अव्ययीभावः समासोऽपि धातुकाव्येऽस्मिन् प्रयुज्यते यथा–समुचितम्[51], सहेषम्[52] आदि। धातुकाव्ये द्वन्द्वसमासस्य प्रयोगा अपि कृताः स्मितपुष्पलाच्छि[53], अलुण्ठिताशुण्ठितसौहृदान्वितैः54, इत्यादि पदानि भूरिशः प्रयोक्तानि सन्ति। उक्तविधसमासानां प्रयोगाः कृताः सन्ति, तेष्वपि बहुब्रीहिसमासस्य सर्वाधिकाः प्रयोगाः समुपलब्धाः सन्तिः।

संदर्भ स्रोत

क्र. ग्रन्थनामानि / लेखकः / संपादकः / टीकाकारः / प्रकाशनस्थानम् / प्रकाशनवर्षम्

1. धातुकाव्यम् / नारायणभट्टः / चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी / 1987
2. अष्टाध्यायी / महर्षि पाणिनि / चौखंबा संस्कृत भवन वाराणसी / 1980
3. वैयाकरण भूषणसार / कौण्डभट्ट / चौखंबा संस्कृत भवन वाराणसी / 1980
4. वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी / भट्टोजिदीक्षित / क्षेमराज श्रीकृष्णराज वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई / 1957
5. लघुशब्देन्दुशेखर / नागेश भट्ट / चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन वाराणसी / 1979
6. लघु सिद्धान्त कौमुदी / वरदराजाचार्यः / चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास / वाचस्पति गौरेला / चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी
8. शब्द कौस्तुभ / वाचस्पति गौरेला / चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी
9. अग्नि पुराणम् / महर्षि वेदव्यासः / हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, वार्ड क्र. 3, इन्दिरा कालोनी, बलौदा बाजार, (छ.ग.)

1. सिद्धान्तकौमुदी कारकप्रकरणम्, प्रथमभागः
2. सिद्धान्तकौमुदी कारकप्रकरणम्
3. तदेव
4. वाक्यपदीयम्
5. सिद्धान्त कौमुदी कारक प्रकरणम्
6. तदेव
7. सिद्धान्त कौमुदी कारक प्रकरणम्।
8. धातुकाव्यम् 1 / 11, 12, 22, 23, 52, 53, 54, 57, 84
9. तदेव 2 / 1, 2, 4, 5, 6, 9, 10, 13, 15, 16, 17, 18, 20, 21, 22, 28, 29, 43, 44, 45, 46, 47, 48, 49, 50, 55
10. तदेव 3 / 1, 3, 6, 13, 32, 35, 37, 45, 53, 62, 64, 66

11. तदेव 1/2, 3, 5, 6, 7, 8, 11, 33, 41, 42, 43, 44, 45, 52, 53, 57, 65, 66, 70, 86, 89, 92
12. धातुकाव्यम् 2/7, 8, 12, 14, 23, 29, 31, 38, 41, 47, 48, 52, 59, 64, 65, 71, 73, 84, 85
13. तदेव 3/3, 6, 12, 15, 21, 25, 32, 35, 52, 57, 60
14. तदेव 1/4 5, 14, 17, 18, 20, 24, 25, 26, 55, 2/5, 11, 17, 25, 33, 46, 55, 3/23, 28, 44, 52, 58
15. तदेव 1/87, 2/3, 8, 57, 64
16. तदेव 1/3, 34, 2/82, 3/10, 53
17. तदेव 1/4, 23, 28, 32, 51, 2/5, 13, 32, 73, 3/39, 40, 51, 69
18. धातुकाव्यम् 1/8
19. तदेव 1/47
20. तदेव 1/68–69
21. तदेव 1/70
22. तदेव 1/71
23. तदेव 1/76
24. तदेव 1/86
25. तदेव 1/90
26. तदेव 1/91
27. तदेव 2/11
28. तदेव 2/41
29. तदेव 2/47
30. तदेव 2/60
31. तदेव 2/76
32. तदेव 2/84
33. तदेव 3/12
34. तदेव 3/19
35. तदेव 3/26
36. तदेव 3/35
37. तदेव 3/54
38. तदेव 3/57
39. तदेव 3/58
40. तदेव 3/61
41. वैयाकरणभूषणकारभट्टोजिदीक्षितस्यमतम्।
42. धातुकाव्यम् 1/3
43. तदेव 1/6
44. तदेव 1/22
45. तदेव 1/34
46. तदेव 1/43
47. तदेव 1/77
48. तदेव 1/4
49. तदेव 1/11
50. तदेव 1/68
51. तदेव 1/78
52. तदेव 1/79
53. तदेव 2/28
54. तदेव 1

अप्रकाशित मौलिक शोध-पत्र, शोध प्रबन्ध, पुस्तक समीक्षा एवं पुस्तकों के प्रकाशन हेतु सम्पर्क करें :-

जी.एच. पब्लिकेशन

121, शहराराबाग, इलाहाबाद-211 003

e-mail : ghpublication@gmail.com

Ph. : 0532-2563028 (M) 09329225173

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

सुसंगत कृषि विकास हेतु नवीनतम तकनीकें

❐ शिव प्रसाद विश्वकर्मा*
❐ एस. पी. वर्मा**

Corresponding Authors : drspverma_kadc@rediffmail.com

शोध सारांश

देश की तेजी से बढ़ती हुई आबादी को दृष्टिगत रखते हुए उसी अनुपात में कृषि विकास दर को बनाये रखना किसानों एवं वैज्ञानिकों के समक्ष एक बहुत बड़ी चुनौती है। देश वर्तमान में 'हरित क्रान्ति' के दुष्परिणामों जैसे घटते कृषि के प्राकृतिक संसाधनों, फसलों की उपज में ठहराव, कृषि उत्पादन में बढ़ती लागत तथा राष्ट्रीय आय में कृषि क्षेत्र की निरन्तर घटती भागीदारी पहले से ही ग्रस्त है। वैश्विक जलवायु परिवर्तन का वृद्धि पर पड़ता दुष्प्रभाव एक और नई चुनौती बनकर उभरा है। इन बदली हुई परिस्थितियों में पारम्परिक कृषि उत्पादन विधाओं पर निर्भर न रहकर हमें विश्व के कृषि वैज्ञानिक शोधों एवं तकनीकों को अंगीकृत करना होगा जिससे उपरोक्त चुनौतियों का डटकर सामना करते हुए हम देश की आबादी को खाद्य एवं पोषण सुरक्षा प्रदान कर सकें तथा अपने वातावरण एवं स्वास्थ्य को भी सुरक्षित रख सकें।

भारतीय कृषि विकास हेतु नवीनतम तकनीकें

भारतीय कृषि ने विकास के अनेक दौर देखा है जिसमें हरितक्रान्ति, नीली क्रांति, पीली क्रांति तथा श्वेत क्रान्ति ने नये-नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं और कृषि की दशा एवं दिशा को नये आयाम दिये हैं। इन सभी क्रान्तियों में एक चीज सभी में शामिल थी वह थी तकनीकि का प्रयोग। तकनीकि के कृषि में प्रयोग के कारण ही भारत ने विश्व पटल पर अनेक कृषि खाद्य वस्तुओं में अपनी पहचान व प्रतिष्ठा बनाई है। स्वतन्त्रता के समय खाद्यान्न उत्पादन जो लगभग 50 मिलियन टन था वह आज बढ़कर 250 मिलियन टन से अधिक हो गया है। इसी प्रकार पशुधन एवं दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में भारत अग्रणी राष्ट्र के रूप में उभरकर सामने आया है। देश की लगभग 60 प्रतिशत आबादी कृषि क्षेत्र पर निर्भर है। कृषि क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन के बावजूद पिछले दो दशकों से किसानों द्वारा आत्महत्या करना देश के माथे पर कलंक के समान है। यही नहीं, भारतीय कृषि को आज फसलों की उपज में ठहराव, मृदा स्वास्थ्य में गिरावट, कृषि मदों को तेजी से बढ़ती हुई कीमतें, जलवायु परिवर्तन एवं कृषि संसाधनों में संकुचन जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

विश्व बैंक की ''भारत एक अवलोकन 2008'' की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण भारत की दो तिहाई आजीविका

* कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, इलाहाबाद-211001
** कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, इलाहाबाद-211001

कृषि पर आधारित है। ऐसे में भारतीय कृषि की धीमी विकास दर नीति-निर्धारकों के लिए चिन्ता का विषय है। वर्तमान कृषि क्रियाएँ आर्थिक रूप से न तो सस्ती है और न ही पारिस्थितिकी की दृष्टि से टिकाऊ। बहुत से कृषि उत्पादों की उपज कम है। इसके लिए खराब सिंचाई साधनों रख-रखाव तथा गुणवत्तापरक कृषि प्रसार सेवाओं की कमी मुख्य रूप से जिम्मेदार है। किसानों के उपज की विपणन की स्थिति खराब सड़क व्यवस्था, अल्पविकसित बाजार संरचना तथा बाजार पर आवश्यकता से अधिक नियंत्रण के कारण दयनीय है।

विश्व बैंक की यह रिपोर्ट दर्शाती है कि खेती की वर्तमान पद्धति से देश की एक अरब से अधिक आबादी की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को भविष्य में बनाये रखना आसान नहीं है। क्योंकि हरित क्रान्ति से उत्पन्न प्रथम एवं द्वितीय पीढ़ी की समस्याएँ चुनौतियों के रूप में सामने हैं। इन परिस्थितियों में कृषि में विज्ञान आधारित नई तकनीकियों के वृहद प्रयोग एवं निवेश से निम्न तीन महत्त्वपूर्ण लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं—

- किसानों एवं उनके परिवार का जीवन स्तर बेहतर बनाने हेतु गुणवत्ता युक्त फसलोत्पादन हो।
- विश्व की सम्पूर्ण आबादी को खाद्यान्न सुरक्षा एवं पोषण सुरक्षा द्वारा अच्छा स्वास्थ्य प्रदान करना।
- कृषि संसाधनों का न्यायसंगत उपयोग कर कृषि स्थायित्व को बढ़ावा देना।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए भारतीय कृषि में नवीनतम तकनीकों का प्रयोग करने की सख्त आवश्यकता है जिनमें से कुछ तकनीकों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

परिशुद्ध खेती की आवश्यकता

नन्देहा (20012) के अनुसार भारत में कृषि योग्य भूमि निरन्तर घटती जा रही है और आबादी तेजी से बढ़ती जा रही है। पर्याप्त अनाज उत्पादन हेतु भूमि की उर्वराशक्ति एवं उत्पादकता बढ़ाने से फसलों की पैदावार में वृद्धि हो सकती है। इसके लिए परिशुद्ध खेती (प्रिसीजन कृषि) की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। परिशुद्ध खेती सूचना तकनीकी पर आधारित कृषि की एक अत्याधुनिक अवधास्था है जो किसानों के लिए उपयोगी, पर्यावरण हितैषी तथा उत्पादन बढ़ाने की सम्भावनाओं के साथ प्राकृतिक संसाधनों के सुसंगत प्रयोग पर आधारित होती है। इस विधा में खेतों की स्थानीय जानकारी प्राप्त करने के लिए आधुनिक तकनीकों जैसे जी.आई.एस., जी.पी.एस., रिमोटसेन्सिंग तथा सूचना तकनीकी का प्रयोग किया जा सकता है। इन सभी सूचना तत्त्वों से सूचना प्राप्ति के पश्चात उनका विश्लेषण कर लागत साधनों की परिशुद्ध मात्रा निर्धारित की जाती है। जैसे—बीज दर, उर्वरक, सिंचाई आदि मात्रा का निर्धारण। (अग्निहोत्री, 2005) परिशुद्ध खेती स्थान विशेष कृषि के नाम से भी जानी जाती है। आने वाले समय में खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाने के लिए उत्पादन नलागत को घटाने एवं उपलब्ध संसाधनों के बेहतर उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए तथा भूमि का स्वास्थ्य बन टिकाऊ बनाये रखने के लिए परिशुद्ध खेती की भूमिका महत्त्वपूर्ण होगी। (मिश्रा, 2005)

आधुनिक कृषि यंत्र रोटावेटर का प्रयोग

उन्नत कृषि यंत्रों का प्रयोग भी नवीन तकनीकी है। इनके प्रयोग से मानव श्रम, ऊर्जा व समय की बचत तो होती ही है साथ ही कार्य की गुणवत्ता में भी वृद्धि होती है। खेत की तैयारी के लिए अनेकों बार जुताई एवं पाटा लगाने के स्थान पर रोटावेटर के प्रयोग से खेत शीघ्र ही बुवाई हेतु तैयार हो जाता है। यह एक बार डिस्क हैरो तथा दो बार कल्टीवेटर के बराबर की जुताई एक बार में करता है। इस मशीन से 50 से 60 प्रतिशत ऊर्जा की बचत होती है।

फर्टीगेशन तकनीकी

सिंचाई के पानी के साथ फसल तक उर्वरकों को पहुँचाना फर्टिगेशन कहलाता है। इस विधि से उर्वरकों को कम मात्रा में और कम अन्तराल पर पूर्व नियोजित सिंचाई के द्वारा फसल को प्रदान करते हैं। इससे उर्वरक उपयोग दक्षता बढ़ने के साथ-साथ पौधों की उनकी जरूरत के अनुसार पोषक तत्त्व प्राप्त हो जाते हैं। इस विधि से उर्वरक पौधे की जड़ तक सीधे पहुँचते हैं। जिससे फसल की वृद्धि अधिक होती है और खेत में खरपतवार कम उगते हैं।

एकीकृत पोषक तत्त्व प्रबंधन

एकीकृत पोषक तत्त्व प्रबंध के अन्तर्गत मात्र रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर न रहकर पोषक तत्त्वों में पूर्ति के लिए

अन्य स्त्रोतों जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद, हरी खाद जैसे उर्वरक, खलियाँ, वर्मीकम्पोस्ट का समावेश आदि का संतुलित प्रयोग किया जाता है जिससे भूमि का स्वास्थ्य एवं वातावरण टिकाऊ बना रहे।

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन

जहरीले रासायनिक खरपतवर नाशियों के प्रयोग से भूमि, जल एवं वातावरण तथा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए खरपतवारों का प्रबंध भौतिक, जैविक, यांत्रिक एवं सस्य वैज्ञानिक विधियों द्वारा करना प्रभावी एवं टिकाऊ होगा।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन

कीड़ों, मकौड़ों एवं रोगकारी जीवों के नियंत्रण के लिए रासायनिक अथवा संश्लेषित कृषि रक्षा रसायनों पर पूर्णतः निर्भर न रहकर जैविक विधियों, भौतिक विधियों, शस्य वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करना होगा। (शर्मा, 2006)

आलू-गेहूँ फसल प्रणाली

धान-गेहूँ फसल चक्र जो देश में सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है कि अवैज्ञानिक होने के कारण उसके दुष्परिणाम उपज में कमी या ठहराव तथा मृदा विकार आदि के रूप में सामने आने लगे हैं। इसके विकल्प के रूप में आलू-गेहूँ फसल प्रणाली अधिक स्थायी एवं लाभकारी सिद्ध हो सकती है। आलू भारत में सर्वाधिक लोकप्रिय सब्जिों में से एक है। भारत में यह विविधीकरण ग्रामीण गरीबी उन्मूलन तथा खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। यही नहीं कम अवधि में एवं कम ऊर्जा एवं इकाई क्षेत्रफल में सर्वाधिक उपज एवं लाभ देने वाली फसलों में से एक है। अगेती आलू के पश्चात देर से बोये गये गेहूँ की प्रजातियाँ जैसे राज-3777, पी.पी.डब्ल्यू-373, यू.पी.-2425, एच.डी.-2643 आदि की बुवाई कर अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

एकीकृत कृषि प्रणाली

खेत में निरंतर एक या दो फसलें उगाने से अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती है तथा खेती भी लाभकारी न होकर मात्र अजीविका का साधन बनी रहती है। इसलिए फार्म पर एकीकृत प्रणाली जैसे विविध फसलें उगाने के साथ बागवानी वाली फसलें, पशु पालन, मत्स्य पालन, मधुमक्खी पालन, आदि को अपनाना चाहिए जिससे किसान को समय-समय पर आमदनी होती रहेगी तथा फसल नष्ट होने या एक उद्यम में नुकसान होने पर अन्य उद्यमों से उसकी क्षतिपूर्ति होती रहेगी। एकीकृत कृषि प्रणाली से जैविक खेती को बढ़ावा मिलेगा और यह परिस्थितिकी के अनुकूल होगी। इस प्रणाली के अपनाने से प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव घटेगा, मृदा एवं पर्यावरण का स्वास्थ्य बना रहेगा। रोजगार सृजन होगा और खेती लाभकारी सिद्ध होगी इसके लिए कृषि, बागवानी, मात्स्यिकी, वानिकी पशुधन प्रणाली सर्वाधिक उपयुक्त पायी गयी है।

फसल अवशेष प्रबंधन

कृषि में मशीनीकरण के कारण उत्तर-पश्चिम भारत के किसान धान-गेहूँ फसलों के अवशेषों को अपने खेतों में जला देते हैं जिससे पर्यावरण प्रदूषित होता है तथा भूमि का तापमान 40 डिग्री सें.ग्रे. अधिक हो जाने के कारण मृदा के मित्र सूक्ष्म जीव मर जाते हैं। जैविक कार्बन का ह्रास हो जाता है। नाइट्रोजन व अन्य पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। अवशेष जलाने से उत्पन्न काले धुएँ में कार्बन डाई आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड, मीथेन आदि ग्रीन हाउस गैसें भारी मात्रा में उत्पन्न होकर पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा करती हैं। भारत में लगभग 500 मिलियन टन कृषि अवशेष प्रतिवर्ष पैदा होते हैं जिसमें सब्जियों, फलों के अवशेष, फसलों की पत्तियों, तने, ठूँठ आदि प्रमुख हैं। यदि इनको खेत में ही मिलाकर सड़ा दिया जाए तो भूमि को पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्त्व प्राप्त होने के साथ जलने वाले भारी नुकसान से बचा जा सकता है। जीरो टिलेज मशीन से फसलों की बुवाई अवशेष प्रबंधन की एक अत्याधुनिक सफल एवं सस्ती विधि है। इससे भूमि के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। (शर्मा एवं सहयोगी, 2001)

कृषि सूचना प्रौद्योगिकी

सूचना प्रौद्योगिकी किसानों, वैज्ञानिकों एवं सरकार के बीच सम्पर्क सेतु का कार्य करती है। इसके माध्यम से कृषि अनुसंधान एवं सरकारी योजनाओं की महत्वपूर्ण सूचनाएँ सीधे किसान तक पहुँचती हैं। इसके अन्तर्गत किसानों की

उपयुक्त किस्मों का चुनाव, मौसम पूर्वानुमान आधारित फसल उत्पादन, नाशीजीव प्रबन्धन तथा उत्पाद विपणन के क्षेत्रों में विषय-वस्तु विशेषज्ञों से जानकारी प्रदान की जाती है। जिससे किसान अपनी समस्या आ समाधान कर लाभान्वित होते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी का कृषि में उपयोग बढ़ाने हेतु मौसम संबंधी जानकारी, मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता, नाशी जीव प्रबन्धन, भूमि सम्बन्धी रिकार्डों को कम्प्यूटरीकृत किया जा रहा है जिससे कृषि अनुसंधान का लाभ सीधे किसानों तक पहुँच सके।

निर्देश

1. शर्मा, पी.के तथा मिश्रा, बी., J. Ind. Soc. Soil Sc., 2001, 49(3), 425-29

2. नन्देहा, के.एल. (2011), A Text Book of Introductory Agriculture 180-214

3. सिंह, जी.बी. तथा विश्वास, पी.पी., Fertilizer News, 2002, 45, 55-60

4. अग्निहोत्री, ए.के., Winter School Manual on Management of Soil Quality for Sustainable Agri (2005), 131-135

5. मिश्रा, बी., Winter School Manual on Management of Soil Quality for Sustainable Agri (2005), 164-73

6. शर्मा, जगपाल (2006), A Text Book on Fundamental Approaches in Sustainable Agriculture.

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

Vermicomposting and its Importance : A review

❒ Dr. S.P. Verma*

Corresponding Authors : drspverma_kadc@rediffmail.com

Introduction

Environmental degradation is a major threat confronting the world, and the use of chemical fertilizers contributes largely to the deterioration of the environment through depletion of fossil fuels, generation of carbon dioxide (CO2) and contamination of water resources. It leads to loss of soil fertility due to imbalanced use of fertilizers that has adversely impacted agricultural productivity and causes soil degradation. Now there is a growing realization that the adoption of ecological and sustainable farming practices can only reverse the declining trend in the global productivity and environment protection (Wani et al. 1995). On one hand tropical soils are deficient in all necessary plant nutrients and on the other hand large quantities of such nutrients contained in domestic wastes and agricultural byproducts are wasted. It is estimated that in cities and rural areas of India nearly 700 million tone organic wastes is generated annually which is either burned or land filled (Bhiday 1994). Such large quantities of organic wastes generated also pose a problem for safe disposal. Most of these organic residues are burned currently or used as land fillings. In nature's laboratory there are a number of organisms (micro and macro) that have the ability to convert organic waste into valuable resources containing plant nutrients and organic matter, which are critical for maintaining soil productivity. Microorganisms and earthworms are important biological organisms helping nature to maintain nutrient flows from one system to another and also minimize environmental degradation. The earthworm population is about 8–10 times higher in uncultivated area. This clearly indicates that earthworm population decreases with soil degradation and thus can be used as a sensitive indicator of soil degradation. In this report a simple biotechnological process, which could provide a 'win-win' solution to tackle the problem of safe disposal of waste as well as the most needed plant nutrients for sustainable productivity is described (Wani 2002).

What is Vermicomposting?

Vermicomposting is the process by which worms are used to convert organic materials (usually wastes) into a humus-like material known as vermicompost. Vermicomposting uses earthworms and other microorganisms to digest organic wastes, such as kitchen scraps.

Vermicomposting differs from composting in several ways (Gandhi et al. 1997). It is a mesophilic process, utilizing microorganisms and earthworms that are active at 10–32°C (not ambient temperature but temperature within the

* Kulbhaskar Ashram PG College, Allahabad-211 001

pile of moist organic material). The process is faster than composting; because the material passes through the earthworm gut, a significant but not yet fully understood transformation takes place, whereby the resulting earthworm castings (worm manure) are rich in microbial activity and plant growth regulators, and fortified with pest repellence attributes as well! In short, earthworms, through a type of biological alchemy, are capable of transforming garbage into 'gold' (Vermi Co 2001, Tara Crescent 2003).

Earth worms used in vermicomposting

There are an estimated 1800 species of earthworm worldwide (Edwards & Lofty, 1972). According to Card et al. (2004) earth worms are three types-

1. Anecic or (Greek for "out of the earth"): These are burrowing worms that come to the surface at night to drag food down into their permanent burrows deep within the mineral layers of the soil. Example: the Canadian Night crawler.

2. Endogeic (Greek for "within the earth"): These are also burrowing worms but their burrows are typically shallower and they feed on the organic matter already in the soil, so they come to the surface only rarely.

3. Epigeic (Greek for "upon the earth"): These worms live in the surface litter and feed on decaying organic matter. They do not have permanent burrows. These "decomposers" are the type of worm used in vermicomposting.

In the commercial production of vermicompost most commonly used earth worm is Eisenia fetida (Savigny) is commonly known as the "compost worm", "manure worm", "red worm", and "red wiggler".

Methods of vermicomposting

1. **Pits below the ground:** Composting is done in the cemented pits of size 5x5x3 feet. The unit is covered with thatch grass or any other locally available materials. This method is not preferred due to poor aeration, water logging at bottom, and more cost of production. Pits made for vermicomposting are 1 m deep and 1.5 m wide. The length may vary as per need.

2. Bed method: Composting is done on the pucca / kachcha floor by making bed (6x2x2 feet size) of organic mixture. This method is easy to maintain and to practice.

3. Heaping above the ground: The waste material is spread on a polythene sheet placed on the ground and then covered with cattle dung. Sunitha et al. (1997) compared the efficacy of pit and heap methods of preparing vermicompost under field conditions. Considering the biodegradation of wastes as the criterion, the heap method of preparing vermicompost was better than the pit method. Earthworm population was high in the heap method, with a 21-fold increase in *Eudrilus eugenae* as compared to 17-fold increase in the pit method. Biomass production was also higher in the heap method (46-fold increase) than in the pit method (31-fold). Consequent production of vermicompost was also higher in the heap method (51 kg) than in the pit method (40 kg).

4. Tanks above the ground: Tanks made up of different materials such as normal bricks, hollow bricks, shabaz stones, asbestos sheets and locally available rocks were evaluated for vermicompost preparation. Tanks can be constructed with the dimensions suitable for operations. At ICRISAT, we have evaluated tanks with dimensions of 1.5 m (5 feet) width, 4.5 m (15 feet) length and 0.9 m (3 feet) height. The commercial biodigester contains a partition wall with small holes to facilitate easy movement of earthworms from one tank to the other.

5. **Cement rings:** Vermicompost can also be prepared above the ground by using cement rings (ICRISAT and APRLP 2003). The size of the cement ring should be 90 cm in diameter and 30 cm in height.

6. **Commercial model:** The commercial model for vermicomposting developed by ICRISAT consists of four chambers enclosed by a wall (1.5 m width, 4.5 m length and 0.9 m height). The walls are made up of different materials such as normal bricks, hollow bricks, shabaz stones, asbestos sheets and locally available rocks. This model contains partition walls with small holes to facilitate easy movement of earthworms from one chamber to another. Providing an outlet at one corner of each chamber with a slight slope facilitates collection of excess water, which is reused later or used as earthworm leachate on crop. The four components of a tank are filled with plant residues one after another. The first chamber is filled layer by layer along with cow dung and then earthworms are released. Then the second chamber is filled layer by layer. Once the contents in the first chamber are processed the earthworms move to chamber 2, which is already filled and ready for earthworms. This facilitates harvesting of decomposed material from the first chamber and also saves labour for harvesting and introducing earthworms. This technology reduces labour cost and saves water as well as time.

Materials Required for Vermicomposting

A range of agricultural residues, all dry wastes, for example, sorghums traw and rice straw (after feeding cattle), dry leaves of crops and trees, pigeonpea (Cajanus cajan) stalks, groundnut (Arachis hypogaea) husk, soybean residues, vegetable wastes, weed (Parthenium) plants before flowering, fiber from coconut (Cocos nucifera) trees and sugarcane (Saccharum officinarum) trash can be converted into vermicompost. In addition, animal manures, dairy and poultry wastes, food industry wastes, municipal solid wastes, biogas sludge and bagasse from sugarcane factories also serve as good raw materials for vermicomposting.

The quantity of raw materials required using a cement ring of 90 cm in diameter and 30 cm in height or a pit or tank measuring 1.5 m × 1 m × 1 m is given below:

- Dry organic wastes (DOW) 50 kg
- Dung slurry (DS) 15 kg
- Rock phosphate (RP) 2 kg
- Earthworms (EW) 500–700
- Water (W) 5 L every three days

The various ingredients are used in the ratio of 5:1.5:0.2:50–75:0.5 of DOW:DS:RP:EW:W. In the tank or pit system 100 kg of raw material and 15–20 kg of cow dung are needed for each cubic meter of the bed.

Basic needs in vermicomposting process

It is an aerobic, bio-oxidation, non-thermophilic process of organic waste decomposition that depends upon earthworms to fragment, mix and promote microbial activity. The basic requirements during the process of vermicomposting are

- Suitable bedding
- Food source
- Adequate moisture
- Adequate aeration
- Suitable temperature
- Suitable pH

1. Bedding: Bedding is any material that provides the worms with a relatively stable habitat. This habitat must have the following characteristics:

- **High absorbency:** Worms breathe through their skins and therefore must have a moist environment in which to live. If a worm's skin dries out, it dies. The bedding must be able to absorb and retain water fairly well if the worms are to thrive.
- **Good bulking potential:** If the material is too dense to begin with, or packs too tightly, then the flow of air is reduced or eliminated. Worms require oxygen to live, just as we do. Different materials affect the overall porosity of the bedding through a variety of factors, including the range of particle size and shape,

the texture, and the strength and rigidity of its structure. The overall effect is referred to in this document as the material's **bulking** potential.

· **Low protein and/or ntrogen content (high Carbon: Nitrogen ratio):** Although the worms do consume their bedding as it breaks down, it is very important that this be a slow process. High protein/nitrogen levels can result in rapid degradation and its associated heating, creating inhospitable, often fatal, conditions. Heating can occur safely in the food layers of the vermiculture or vermicomposting system, but not in the bedding.

2. Worm Food: Regular input of feed materials for the earthworms is most essential step in the vermicomposting process. Compost worms are big eaters. Under ideal conditions, they are able to consume in excess of their body weight each day, although the general rule-of-thumb is ½ of their body weight per day 5.Earthworms can use a wide variety of organic materials as food but do exhibit food preferences Livestock excreta, viz., goat manure, cattle dung or pig manure are the most commonly used worm feedstock as these materials have higher nitrogen content. When the material with higher carbon content is used with C: N ratio exceeding 40: 1, it is advisable to add nitrogen supplements to ensure effective decomposition. The food should be added only as a limited layer as an excess of the waste many generate heat. From the waste ingested by the worms, 5-10% is being assimilated in their body and the rest are being excreted in the form of vermicast.

3. Moisture: Perhaps the most important requirement of earthworms is adequate moisture. They require moisture in the range of 60-70%. The feed stock should not be too wet otherwise it may create anaerobic conditions which may be fatal to earthworms. The bedding used must be able to hold sufficient moisture if the worms are to have a livable environment. They breathe through their skins and moisture content in the bedding of less than 50% is dangerous. The ideal moisture-content range for materials in conventional composting systems is 45-60% (Rink et al, 1992). In contrast, the ideal moisture-content range for vermicomposting or vermiculture processes is 70-90%. Within this broad range, researchers have found slightly different optimums: Dominguez and Edwards (1997) found the 80-90% range to be best, with 85% optimum, while Nova Scotia researchers found that 75-80% moisture contents produced the best growth and reproductive response (GEORG, 2004).

4. Aeration: Worms are oxygen breathers and cannot survive anaerobic conditions (defined as the absence of oxygen). When factors such as high levels of grease in the feedstock or excessive moisture combined with poor aeration conspire to cut off oxygen supplies, areas of the worm bed, or even the entire system, can become anaerobic. This will kill the worms very quickly. Not only are the worms deprived of oxygen, they are also killed by toxic substances (e.g., ammonia) created by different sets of microbes that bloom under these conditions. This is one of the main reasons for not including meat or other greasy wastes in worm feedstock unless they have been pre-composted to break down the oils and fats.

Worms in commercial vermicomposting units can operate quite well in their well insulated homes as long as there are small cracks or openings for ventilation somewhere in the system. Nevertheless, they operate best when ventilation is good and the material they are living in is relatively porous and well aerated. In fact, they help themselves in this area by aerating their bedding by their movement through it. This can be one of the major benefits of vermicomposting: the lack of a need to turn the material, since the worms do that work for you. The trick is to provide them with bedding that is not too densely packed to prevent this movement.

5. Temperature Control: The activity, metabolism, growth, respiration and reproduction of earthworms are greatly influenced by temperature. Most earthworm species used in vermicomposting require moderate temperatures from 10 – 35o C. While tolerances and preferences vary from species to species. Earthworms can tolerate cold and moist conditions far better than hot and dry conditions. For *Eisenia foetida* temperatures above 10oC (minimum) and preferably 15oC be maintained for maximizing vermicomposting efficiency and above 15oC (minimum) and preferably 20oC for vermiculture. Higher temperatures (> 35o C) may result in high mortality. Worms will redistribute themselves within piles, beds or windrows such that they get favourable temperatures in the bed.

6. pH: Worms can survive in a pH range of 5 to 9, but a range of 7.5 to 8.0 is considered to be the optimum. In general, the pH of worm beds tends to drop over time due to the fragmentation of organic matter under series of chemical reactions. Thus, if the food sources are alkaline, the effect is a moderating one, tending to neutral or slightly acidic, and if acidic (e.g., coffee grounds, peat moss); pH of the beds can drop well below 7. In such acidic conditions, pests like mites may become abundant. The pH can be adjusted upwards by adding calcium carbonate.

Steps in the process of vermicomposting

Vermicomposting involves the following steps -

(i) Cover the bottom of the cement ring with a layer of tiles or coconut husk or polythene sheet.

(ii) Spread 15–20 cm layer of organic waste material on the polythene sheet Sprinkle rock phosphate powder if available (it helps in improving nutritional quality of compost) on the waste material and then sprinkle cow dung slurry. Fill the ring completely in layers as described. Paste the top of the ring with soil or cow dung. Allow the material to decompose for 15 to 20 days.

(iii) When the heat evolved during the decomposition of the materials has subsided (15–20 days after heaping), release selected earthworms (500 to 700) through the cracks developed.

(iv) Cover the ring with wire mesh or gunny bag to prevent birds from picking the earthworms. Sprinkle water every three days to maintain adequate moisture and body temperature of the earthworms. The vermicompost is ready in about 2 months if agricultural waste is used and about 4 weeks if sericulture waste is used as substrate.

(v) The processed vermicompost is black, light in weight and free from bad odour.

(vi) When the compost is ready, do not water for 2–3 days to make compost easy for sifting. Pile the compost in small heaps and leave under ambient conditions for a couple of hours when all the worms move down the heap in the bed. Separate upper portion of the manure and sieve the lower portion to separate the earthworms from the manure. The culture in the bed contains different stages of the earthworm's life cycle, namely, cocoons, juveniles and adults. Transfer this culture to fresh half decomposed feed material. The excess as well as big earthworms can be used for feeding fish or poultry. Pack the compost in bags and store the bags in a cool place.

(vii) Prepare another pile about 20 days before removing the compost and repeat the process by following the same procedure as described above.

Precautions during the process

The following precautions should be taken during vermicomposting:

(i) The African species of earthworms, Eisenia fetida and Eudrilus eugenae are ideal for the preparation of vermicompost. Most Indian species are not suitable for the purpose.

(ii) Only plant-based materials such as grass, leaves or vegetable peelings should be utilized in preparing vermicompost.

(iii) Materials of animal origin such as eggshells, meat, bone, chicken droppings, etc are not suitable for preparing vermicompost.

(iv) Gliricidia loppings and tobacco leaves are not suitable for rearing earthworms.

(v) The earthworms should be protected against birds, termites, ants and rats.

(vi) Adequate moisture should be maintained during the process. Either stagnant water or lack of moisture could kill the earthworms.

(vii) After completion of the process, the vermicompost should be removed from the bed at regular intervals and replaced by fresh waste materials.

Harvesting of Vermicompost

When raw material is completely decomposed it appears black and granular. Watering should be stopped as compost gets ready. The compost shout be kept over a heap of partially decomposed cow dung so that earthworms could migrate to cow dung from compost. After two days compost can be separated and sieved for use.

Chemical composition of vermicompost

Characteristics	Percentage
Organic carbon	9.15 to 17.88
Total Nitrogen	0.5 to 0.9
Phosphorus	0 .1 t o 0. 2 6
Potassium	0.15 to 0.256
Sodium	0.055 to 0.3
Calcium & magnesium (Meq/100 g)	22.67 to 47.6
Copper; mg/L	2.0 to 9.5
Iron, mg/ L	2.0 to 9.3
Zinc, mg/ L	5.7 to 9.3
Sulphur, mg/ L	128.0 to 548.0

Importance of vermicompost

1. Source of plant nutrients: Earthworms consume various organic wastes and reduce the volume by 40–60%. Each earthworm weighs about 0.5 to 0.6 g, eats waste equivalent to its body weight and produces cast equivalent to about 50% of the waste it consumes in a day. These worm castings have been analyzed for chemical and biological properties. The moisture content of castings ranges between 32 and 66% and the pH is around 7.0. The worm castings contain higher percentage (nearly twofold) of both macro and micronutrients than the garden compost. From earlier studies also it is evident that vermicompost provides all nutrients in readily available form and also enhances uptake of nutrients by plants. Sreenivas et al. (2000) studied the integrated effect of application of fertilizer and vermicompost on soil available nitrozen (N) and uptake of ridge gourd (Luffa acutangula) at Rajendranagar, Andhra Pradesh, India. Soil available N increased significantly with increasing levels of vermicompost and highest N uptake was obtained at 50% of the recommended fertilizer rate plus 10 t ha-1 vermicompost. Similarly, the uptake of N, phosphorus (P), potassium (K) and magnesium (Mg) by rice (Oryza sativa) plant was highest when fertilizer was applied in combination with vermicompost (Jadhav et al. 1997).

2. As plant growth promoter: Growth promoting activity of vermicompost was tested using a plant bioassay method. The plumule length of maize (*Zea mays*) seedling was measured 48 h after soaking in vermicompost water and in normal water. The marked difference in plumule length of maize seedlings indicated that plant growth promoting hormones are present in vermicompost.

3. Improves crop growth and yield: Vermicompost plays a major role in improving growth and yield of different field crops, vegetables, flower and fruit crops. The application of vermicompost gave higher germination (93%) of mung bean (*Vigna radiata*) compared to the control (84%). Further, the

growth and yield of mung bean was also significantly higher with vermicompost application. Likewise, in another pot experiment, the fresh and dry matter yields of cowpea (*Vigna unguiculata*) were higher when soil was amended withvermicompost than with biodigested slurry (Karmegam and Daniel 2000).

The efficiency of vermicompost was evaluated in a field study by Desai et al. (1999). They stated that the application of vermicompost along with fertilizer N gave higher dry matter (16.2 g plant-1) and grain yield (3.6 t ha-1) of wheat (*Triticum aestivum*) and higher dry matter yield (0.66 g plant-1) of the following coriander (*Coriandrum sativum*) crop in sequential cropping system. Similarly, a positive response was obtained with the application of vermicompost to other field crops such as sorghum (*Sorghum bicolor*) (Patil and Sheelavantar 2000) and sunflower (*Helianthus annuus*) (Devi and Agarwal 1998). Application of vermicompost at 5 t ha-1 significantly increased yield of tomato (*Lycopersicon esculentum*) (5.8 t ha-1) in farmers' fields in Adarsha watershed, Kothapally, Andhra Pradesh compared to control (3.5 t ha-1). Similarly, greenhouse studies at Ohio State University in Columbus, Ohio, USA have indicated that vermicompost enhances transplant growth rate of vegetables. Amendment of vermicompost with a transplant grown without vermicompost had the highest amount of red marketable fruit at harvest. In addition, there were no symptoms of early blight lesions on the fruit at harvest. The yield of pea (*Pisum sativum*) was also higher with the application of vermicompost (10 t ha-1) along with recommended N, P and K than with these fertilizers alone (Reddy et al. 1998). Vadiraj et al. (1998) reported that application of vermicompost produced herbage yields of coriander cultivars that were comparable to those obtained with chemical fertilizers. The fresh weight of flowers such as *Chrysanthemum chinensis* increased with the application of different levels of vermicompost. Also, the number of flowers per plant (26), flower diameter (6 cm) and yield (0.5 t ha-1) were maximum with the application of 10 t ha-1 of vermicompost along with 50% of recommended dose of NPK fertilizer. However, the vase life of flowers (11 days) was high with the combined application of vermicompost at 15 t ha-1 and 50% of recommended dose of NPK fertilizer (Nethra et al. 1999).

4. Reduction in soil C:N ratio: Vermicomposting converts household waste into compost within 30 days, reduces the C:N ratio and retains more N than the traditional methods of preparing composts (Gandhi et al. 1997). The C:N ratio of the unprocessed olive cake, vermicomposted olive cake and manure were 42, 29 and 11, respectively. Both the unprocessed olive cake and vermicomposted olive cake immobilized soil N throughout the study duration of 91 days. Cattle manure mineralized an appreciable amount of N during the study. The prolonged immobilization of soil N by the vermicomposted olive cake was attributed to the C:N ratio of 29 and to the recalcitrant nature of its C and N composition. The results suggest that for use of vermicomposted dry olive cake as an organic soil amendment, the management of vermicomposting process should be so adjusted as to ensure more favorable N mineralization immobilization (Thompson and Nogales 1999).

5. Role in nitrogen cycle: Earthworms play an important role in the recycling of N in different agroecosystems, especially under *jhum* (shifting cultivation) where the use of agrochemicals is minimal. Bhadauria and Ramakrishnan (1996) reported that during the fallow period intervening between two crops at the same site in 5- to 15-year *jhum* system, earthworms participated in N cycle through cast-egestion, mucus production and dead tissue decomposition. Soil N losses were more

pronounced over a period of 15-year *jhum* system.The total soil N made available for plant uptake was higher than the total input of N to the soil through the addition of slashed vegetation, inorganic and organic manure, recycled crop residues and weeds.

6. Improved soil physical, chemical and biological properties: Limited studies on vermicompost indicate that it increases macropore space ranging from 50 to 500 ìm, resulting in improved air-water relationship in the soil which favorably affect plant growth (Marinari et al. 2000). The application of organic matter including vermicompost favorably affects soil pH, microbial population and soil enzyme activities (Maheswarappa et al. 1999). It also reduces the proportion of water-soluble chemical species, which cause possible environmental contamination (Mitchell and Edwards 1997).

Conclusion

The production of degradable organic waste and its safe disposal becomes the current global problem. Meanwhile the rejuvenation of degraded soils by protecting topsoil and sustainability of productive soils is a major concern at the international level. Provision of a sustainable environment in the soil by amending with good quality organic soil additives enhances the water holding capacity and nutrient supplying capacity of soil and also the development of resistance in plants to pests and diseases. By reducing the time of humification process and by evolving the methods to minimize the loss of nutrients during the course of decomposition, the fantasy becomes fact. Earthworms can serve as tools to facilitate these functions. They serve as "nature's plowman" and form nature's gift to produce good humus, which is the most precious material to fulfill the nutritional needs of crops. The utilization of vermicompost results in several benefits to farmers, industries, environment and overall national economy.

References

Bhiday MR. 1994. Earthworms in agriculture. Indian Farming 43(12):31–34.

Card, A.B., J.V. Anderson and J.G. Davis. 2004. Vermicomposting Horse Manure. Colorado State University Cooperative Extension no. 1.224.

Desai VR, Sabale RN and Raundal PV. 1999. Integrated nitrogen management in wheat-coriander cropping system. Journal of Maharasthra Agricultural Universities 24(3):273–275.

Devi D and Agarwal SK. 1998. Performance of sunflower hybrids as influenced by organic manure and fertilizer. Journal of Oilseeds Research 15(2):272–279.

Eastman, Bruce R., Philip N. Kane, Clive A. Edwards, Linda Trytek, Bintoro Gundadi, Andrea L. Stermer, Jacquelyn R. Mobley. 2000. "The Effectiveness of Vermiculture in Human Pathogen Reduction for USEPA Biosolids Stabilization".

Edwards, C.A. and J.R. Lofty 1972. Biology of Earthworms. London: Chapman and Hall Ltd. 283 pp. The classic textbook on earthworm biology by one of the world's leading authorities.

Gaddie, R.E. (Senior) and Donald E. Douglas. 1975. Earthworms for Ecology and Profit. Volume 1: Scientific Earthworm Farming. Bookworm Publishing Company, California. 180 pp.

Gandhi M, Sangwan V, Kapoor KK and Dilbaghi N. 1997. Composting of household wastes with and without earthworms. Environment and Ecology 15(2):432–434.

Georg, 2004. Feasibility of Developing the Organic and Transitional Farm Market for Processing Municipal and Farm Organic Wastes Using Large-Scale Vermicomposting. Good Earth Organic Resources Group, Halifax, Nova Scotia.

Jadhav AD, Talashilkar SC and Pawar AG. 1997. Influence of the conjunctive use of FYM,

vermicompost and urea on growth and nutrient uptake in rice. Journal of Maharashtra Agricultural Universities 22(2):249–250.

Karmegam N and Daniel T. 2000. Effect of biodigested slurry and vermicompost on the growth and yield of cowpea [Vigna unguiculata (L.)]. Environment and Ecology 18(2):367–370.

Marinari S, Masciandaro G, Ceccanti B and Grego S. 2000. Influence of organic and mineral fertilisers on soil biological and physical properties. Bioresource Technology 72(1):9–17.

Patil SL and Sheelavantar MN. 2000. Effect of moisture conservation practices, organic sources and nitrogen levels on yield, water use and root development of rabi sorghum [Sorghum bicolor (L.)] in the vertisols of semiarid tropics. Annals of Agricultural Research 21(21):32–36.

Rink, Robert (Editor), 1992. Authors: Maarten van de Kamp, George B. Wilson, Mark E. Singley, Tom L. Richard, John J. Kolega, Francis R. Gouin, Lucien Laliberty, Jr., David Kay, D.W. Murphy, Harry A. J. Hoitink, W.F. Brinton. On-Farm Composting Handbook. Natural Resource, Agriculture, and Engineering Service (NRAES-54), Ithaca, NY.

Sreenivas C, Muralidhar S and Rao MS. 2000. Vermicompost, a viable component of IPNSS in nitrogen nutrition of ridge gourd. Annals of Agricultural Research 21(1):108–113.

Sunitha ND, Giraddi RS, Kulkarni KA and Lingappa S. 1997. Evaluation methods of vermicomposting under open field conditions. Karnataka Journal of Agricultural Sciences 10(4): 987–990.

Tara Crescent. 2003. Vermicomposting. Development Alternatives (DA) Sustainable Livelihoods. (http:// www.dainet.org/livelihoods/default.htm).

Vermi Co. 2001. Vermicomposting technology for waste management and agriculture: an executive summary. (http:// www.vermico.com/summary.htm) PO Box 2334, Grants Pass, OR 97528, USA: Vermi Co.

Wani SP, Rupela OP and Lee KK. 1995. Sustainable agriculture in the semi-arid tropics through biological nitrogen fixation in grain legumes. Plant and Soil 174:29–49.

Wani SP. 2002. Improving the livelihoods: New partnerships for win-win solutions for natural resource management. Paper submitted in the 2nd International Agronomy Congress held at New Delhi, India during 26– 30 November 2002.

SHODH CHETNA – YEAR-2
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

ISSN : 2350-0441

Human Rights, Immigration and Happiness

❐ Dr. Sheetla Prasad Verma*

Corresponding Authors : drspverma_kadc@rediffmail.com

ABSTRACT

This paper explores the concepts of human rights and immigration. These two concepts are often associated with each other because of the questions that arise about the duties and obligations that a society has toward newcomers who have migrated into the community from foreign lands. To what extent should such newcomers be able to except that they would share in the rights and privileges of native members of the society? The language of human rights is often used by advocates on behalf of immigrants in an attempt to suggest that certain rights adhere to the human person regardless of current location on the globe. While the concept of human rights is one that has great appeal, the question of the foundation of human rights remains an ongoing philosophical concern: what are human rights, where do they come from and how are we to understand the basis upon which all human beings and societies could be held accountable for honoring human rights?

What is lacking is a universal understanding of human rights that is not bound by membership in a particular society but is prior to any such considerations as rights belonging to the human person as member of the human race.

KeyWords: Happiness, Human Rights, Immigration.

Introduction

From ancient times, the phenomenon of the migration of human persons from settled homelands to, from the point of view of the migrants, new and strange parts of the world has raised questions about the place, position and treatment of newcomers into an existing, self-defined human community. "The United Nations (UN) defines as an international migrant a person who stays outside their usual country of residence for at least one year. According to that definition, the UN estimated that in 2005 there were about 200 million international migrants.

In all of these experiences, the question of human rights become particularly cogent as immigrants are often seen as being guests, invited

* Kulbhaskar Ashram PG College, Allahabad-211 001

or not invited, into a country and, as such are not necessarily deserving of the same protections by the community as those who are considered citizens and/or native. And yet, if human rights exist, they adhere to the individual human person as a member of the human race irrespective of their membership or lack of membership in any other subordinate societies. Human rights ought to "trumph" so to speak, any other laws, regulations, restrictions, or societies that are contingent upon the accidents of time or place as they appear in the history of local communities or nations. Without this priority of place in regards to human rights the term itself seems to be vacuous. The human rights of immigrants then, particularly those who have entered another country without the required documentation, may be seen as something of a test case for this priority of human rights: the extent to which such rights would be honored or respected or recognized for a given resident of a society regardless of the legal standing of that person within the official polity would testify to the actualized priority of those rights that adhere to the person as a member of the human community.

A Conceptual Foundation for Human Rights

The Contractarian approach Sen traces back to Hobbes, Locke, Rousseau and Kant in the seventeenth century all of whom contributed to the concept of the "social contract" as the foundational principal that underlies the notion of social justice within a society. Sen explain more specifically that "this approach concentrates on identifying 'just' institutional arrangements for a society, which would yield a corresponding- hypothetical- contract. The demands of justice are, then, seen in terms of those institutional requirements, with the expectation that people would behave appropriately to make those institutions entirely effective.") In modern social ethics, this point of view is best represented by the work of John Rawls in his classic work. A theory of Justice. Sen identifies this approach as a transcendental approach in that the goal here is to focus on the ideal of justice, what perfect "transcendental institutionalism" as Sen names it seeks to create a priority institutions that would embody the perfect notion of justice and depends upon "the assumption that people's behavior would be exactly what would be needed for the proper functioning of the chosen institutions." The difficulty for this kind of idealism, of course, is that people have typically not always acted within institutional arrangements in the kind of selfless manner upon which the theory seems to hang (witness the complex of seemingly self-centered behaviors leading up to the economic collapse in 2008 following upon an environment of deregulation in, for instance, the housing and mortgage markets).

The Importance of Human Rights

The second element in Sen's foundation for human rights is a further exploration of the nature of the freedoms indicated in human rights language. While the question for this element is "What makes human rights important the focus of this element is on freedoms as these are the "what" that makes human right important. The importance of a human right is derived from the importance of the freedom to which it points. It is that freedom to which is seen as an essential aspect of human life and because of the importance of that freedom to any human life, the language of the right is crafted to express the inviolable character of that freedom. The freedom to live or the freedom not to be tortured are so critical to human existence that the human right to not have one's life taken from one or to not be tortured take on the same level of importance for ethical deliberation. Sen points out that this focus on freedoms rather than some other aspect of the human condition allows for "a motivating reason not only for celebrating our own rights and liberties, but also for our taking

an interest in the significant freedoms of others, not just their pleasures and desire-fulfillment (as under utilitarianism)". Is Instead of focusing on maximizing everyone's pleasure or desires, a seemingly very elusive and hard to measure outcome, the focus on freedom enables the comparative realizations approach to come to the fore in that freedom or the lack of freedom reflect actual social conditions that might be altered through various means in order to achieve a comparative improvement. Sen also discusses how this approach avoids other problems involved in utilitarian approaches such as "valuational distortions resulting from the neglect of substantive deprivation of those who are chronically disadvantaged but who learn, by force of circumstances, to take pleasure in small mercies and get reconciled to cutting down their desires to 'realistic proportions'.

Duties and Obligations

Any discussion of human rights is always closely associated with further discussion of the kinds of duties and obligations that such rights imposes on members of the community. In social contract language, the members of the community those bound by and to the social contract.

The Promotion of Human Rights

While the third element of a theory of human rights established the conceptual grounding for obligations tied to the existence of rights, Sen moves on in the fourth element to consider what forms of action may be used to promote human rights. In taking up this issue, Sen is returning to the concern he expressed previously about the need to not locate human rights entirely in the legal realm. Specifically, he argues that work toward the advancement of human rights may take at least two other forms that are distinct and which may not be reduced to simply being stages on the way to the endpoint of legislation.

The first form of activity to promote human rights involves the many avenues by which consciousness of human rights may be raised (and acceptance of them developed) through formal processes of recognition of those rights. These processes need not be legal in character nor carry any form of punitive action. They simply exist as proclamations that certain freedoms belong to human persons as universal rights. The prime example of this form of action is The Universal Declaration of Human Rights established by the United Nations in 1948.

The second form of action is what Sen calls "active agitation. In this form, the intention is to go beyond the raising of consciousness with regard to human rights. The idea is to advocate for the upholding of human rights through various means depending on the situation. These means may and do include human rights watch organizations that publicize violations of human rights with the aim of bringing public pressure to bear on leaders who sponsor or tolerate such abuses.

The Viability of Economic and Social Rights

In moving on to the fifth element in Sen's framework for human rights, we come to the point that seems most crucial to that aspect of the debate on immigrant rights which seems most contested, i.e., the foundation for the so-called second generation rights. No one who has sincerely entered into the dialogue about the ethics of human rights (recognizing, of course, that there exist many situations in which ethics and human rights are simply ignored) would today try to make an argument about the existence of the first generation rights for immigrants or anyone else.

The Importance of Public Reasoning in the final element of his theory of human rights, Sen concludes with a concept that has characterized much of his way of looking at social justice or,

in this case, human rights. In answering the question he poses about how these kinds of ethical pronouncements (i.e., human rights) are to be evaluated and disputes over them settled, Sen states: "I would argue that like that assessment of other ethical claims, there must be some test of open and informed scrutiny… The status of these ethical claims, there must be dependent ultimately on their survivability in unobstructed discussion. The form of what Sen has in mind here is illustrated by the kind of scrutiny to which the concept of second generation rights was subjected in the previous section. To the extent that the argument for inclusion of social or economic rights may be said to have survived the challenges of the institutionalization critique and the feasibility critique by way of Sen's response to those challenges, then to that extent such rights may be said to live another day and await other challenges.

Conclusion

In the introduction to this paper it was suggested that any theory for human rights faces perhaps its greatest test in the case of the rights of immigrants due to the difficulty of arguing for the rights of those who are quite literally strangers in a foreign land. In no other case is a coherent argument for rights that adhere to the person due to their humanity more necessary since often it is only their humanity that those who migrate bring with them into their new land. In what way can an argument be made that such rights exist, can they be said to go beyond the kind of political rights that cost little to ensure into the realm of social rights that involve extensive costs and the incursion of obligations on particular actors as well as on society as a whole?

In this paper, I have tried to follow Amartya Sen's conceptual framework for a theory of human rights as that was first expressed in his article Elements of a Theory of Human Rights and later in substantially the same form as part of his book The Idea of Justice. I have tried along the way at various points to bring the discussion back to the particular application of Sen's ideas to the human tights of immigrants. While it may be too early to see yet how Sen's approach will survive his own call for open and informed public scrutiny and, thus, the extent to which it will stand the test of time, it seems that several key elements in his approach represent a real advance in efforts to conceptually ground the fervent rhetoric of human rights advocates.

Finally, by calling for free, open and informed dialogue and scrutiny of all arguments for or against human rights, Sen has provided a methodological framework that has the potential to escape parochial visions of what is good or just in social arguments by the honest testing of ideas in the global court of public opinion. In his discussion of the arguments against the inclusion of social and economic entitlements as human rights, Sen has given a very valid example of the nature of the kind of ongoing open dialogue necessary for the advancement of any sort of ideas. And parallel to this line of reference, Sen has also opened up a broader frame of reference for thinking about the kinds of activities that may be undertaken in support of human rights and, by so doing, has enabled legitimate avenues for social action beyond strictly legal remedies.

Reference

1. The Right to Migrate as a Human Rights: The Current Argentine Immigration Law Cornell International Law Journal 43 (2010): 471-485.
2. K. Kahhd International Migration, A Very Short Introduction.
3. Sat, Arnarty & "Elements of a Theory of Human Rights."
4. The Idea of Justice, Cambridge.
5. "Introduction." In Adam Smith.

SHODH CHETNA – YEAR-2 **ISSN : 2350-0441**
(OCT. TO DEC., 2016) VOL. 4

कौशल पलायन की समस्याएँ

❐ डॉ. जे.पी. सिंह*

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध अलीगढ़ जनपद के गंगीरी व बिजौली विकास खण्डों पर आधारित किया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों से कौशल पलायन से ग्रामीण समाज पर प्रभाव पड़ता है। समाज से कुशल कामगार कारीगर दस्तकार, कलाकार व बुद्धजीवियों का पलायन से ग्रामीण समाज निरन्तर पिछड़ता जा रहा है। ग्रामीण समाज में संयुक्त परिवार होते हैं, परिवार के कौशल प्राप्त व्यक्ति के बुजुर्ग माता–पिता, पत्नि–बच्चे, गाँव में रह जाते हैं जिससे परिवार से व्यक्ति का नियन्त्रण हट जाता है या कौशल प्राप्त व्यक्ति शहरों में जाकर बस जाने से एकाकी परिवार को बढ़ावा मिलता है। संयुक्त परिवार की एकता की शक्ति नष्ट हो जाती है।

प्रस्तावना

ग्रामीण क्षेत्रों से निरन्तर हो रहे पलायन के कारण ग्रामीण लोक संस्कृति का महत्व घट रहा है। ग्रामीणजनों के शहरी संस्कृति को अपनाने से ग्रामीण लोक रीतियाँ, रिवाजो, परम्परायें समाप्त हो रही हैं। ग्रामीण समाज में दक्ष कारीगर, कलाकार, हस्तकारों के पलायन से गाँवों में इनकी कमी से ऐसा लगता है कि ग्रामीण समाज उजड़ रहा है।

ग्रामीणों में हीन भावना पैदा हो जाती है। वे यह सोचते हैं कि हम गाँव में रहकर अपने जीवन में कुछ नहींकर सकते हैं। ग्रामीण कौशल पलायन से ग्रामवासियों में निराशा की स्थिति साफ झलकती है। वे अपने को ग्रामीण क्षेत्र में पिछड़ा महसूस करते हैं।ग्रामीण क्षेत्र से कौशल पलायन से ग्रामीण क्षेत्रों पर सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण निम्नानुसार है –

परिवार में बिखराव/विघटन

अलीगढ़ जनपद के चयनित ब्लाक गंगीरी व बिजौली के ग्रामीण क्षेत्रों में जिन परिवारों में कौशल पलायन हुआ है, वे परिवार बिखर गये सामाजिक रूप से उनकी शक्ति कमजोर हो गयी। शोधार्थी को ज्ञात हुआ कि ये परिवार दो से लेकर पाँच भागों में बांट गये, जिस व्यक्ति को जिस शहर में रोजगार प्राप्त हो रहा है वह वहाँ रहने लगा। परिवार संयुक्त परिवार न रहकर एकांकी परिवारों में बँट गया है।

कौशल पलायन से एकाकी परिवारों के जन्म से इन परिवारों की आय निरन्तर घट रही है तथा अलग–अलग बसने के कारण अधिक खर्च भी होता है। इन कौशल प्राप्त कामगारों दस्तकारों, कलाकारों के बुजुर्ग माता–पिता, जिन्हें इस अवस्था में आराम की जरूरत है वे स्वयं अपना भरण पोषण करने के

* एसो. प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, डी.एस. कालेज, अलीगढ़ (उ.प्र.)

लिये विवश हैं। स्पष्ट है कि निरन्तर कौशलपलायन से ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार बिखराव/विघटित होते जा रहे है।

ग्रामीण लोक संस्कृति का ह्रास

ग्रामीण क्षेत्रों से निरन्तर कौशल पलायन से ग्रामीण लोक संस्कृति का ह्रास हुआहै। क्योंकि उनमें योगदान करने वाले लोग ग्राम छोड़कर जा चुके हैं। ग्रामीण कारीगर, दस्तकार, कलाकार रोजगार व आय की स्थिति को सुधारने के लिये अपने परम्परागत शार्यों को छोड़कर अन्य कार्यों को करने लगे हैं तथा सुदूर शहरों में जाकर वहाँ केरहन–सहन को अपना लिया है। वे भी ग्रामीण रीति–रिवाजों, परम्पराओं तथा धार्मिक त्यौहारों को भूलते चले जा रहे है।

भौतिकवादी तथा पश्चिमी संस्कृति को इन व्यक्तियों में आसानी के साथ देखा जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में मनोरंजन के लिये उत्सवों तथा अन्य अवसरों पर संगीत, रामलीला, रासलीला, भाट् तथा अन्य कलाकारों के द्वारा आयोजित किये जाते थे लेकिन टी०वी० चौनलों व सी०डी० व डी०वी०डी० प्लेयर आदि के प्रयोग से फिल्मों तथा फिल्मी गानों को अधिक महत्व दिया जा रहा है। रक्षाबन्धन के मौके पर कबड्डी/कुश्ती आदि खेल का आयोजन किया जाता था आज वह सब बीते समय की बात हो गयी है। आज क्रिकेट का अधिक महत्व दिया जा रहा है।

सामाजिक कुण्ठाऐं

ग्रामीण क्षेत्रों में कौशल पलायन से ग्रामीणजनों में विभिन्न प्रकार की सामाजिक कुण्ठायें विकसित हो रही है। अध्ययन हेतु चयनित ग्रामीण क्षेत्रों के ग्रामवासियों को है कि गांव में रहकर हम अपना विकास तथा अपनी पीढ़ी का विकास नहीं कर सुपाते। ग्रामवासियों में हीन भावना अधिक है। सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि वे अपने की शहरी व्यक्तियों से हीन मानते हैं।यह हीन भाव उन्हें आगे बढ़ने से रोकता है। जब गाँव का शहरों में रह रहा व्यक्ति आता है तो वे उसके पहनावे और सम्पन्नता से ईष्या मानते हैं। कभी कभी ये कुण्ठायें तलावों का भी कारण बनती हूँ।

ग्रामीण समाज में रिक्तता

अलीगढ़ जनपद के ब्लाक गंगीरी व बिजाली के चयनित ग्रामीण क्षेत्रों में कौशल प्राप्त व्यक्तियों के पलायन से ग्रामीण क्षेत्रों में हर निर्मित वस्तुएँ,कलाएँ तथा संगीत आदि की कमी महसूस की जा रही है जो सही समय तथा उचित मूल्यों पर ग्रामवासियों को अपने ही क्षेत्र में आसानी से प्राप्त नहीं हो रही है तथा इनकी कलाकारी, दस्तकारी, कारीगरी आदि नष्ट होती जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में इन वस्तुओं व सेवाओं की मांग व आय न होने के कारण ग्रामीण दस्तकार, कारीगर, कलाकार ग्रामीण क्षेत्रों को छोड़कर अन्य कार्यों को अपना रहे हैं तथा दूसरे शहरों में जा रहे हैं। वहाँ के वासी हो रहे हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों में आना उचित नहीं मानते हैं। इन सब स्थितियों की वजह से ग्रामीण क्षेत्रों में रिक्तता की स्थिति बन रही है।

सामाजिक निराशा

ग्रामीण कौशल पलायन से ग्राम में खुशहाली नजर नहीं आती है। ग्रामीण क्षेत्रों का अविकसित ढाँचा/असुरक्षा की स्थिति आय रोजगार की कमी, कुटीर व लघु उद्योग का पतन आदि से ग्रामवासियों में सामाजिक निराशा पनप रही है।

ग्रामवासी शहरी उच्च समाज से अपने समाज का पिछड़ापन महसूस करते हैं तथा शहरी उच्च समाज के व्यक्तियों के रहन सहन, खानपान, रीति–रिवाज, बोलचाल आदि की आलोचना करते हैं।

ग्रामीणों ने साक्षात्कार में बताया कि ग्राम में मनोरंजन के साधन नहीं है। बच्चों या युवकों के खेल कूद की भी सुविधायें नहीं हैं, जो शहरों में होती हैं, इसी प्रकार से ग्रामीण शहरों में उच्च शिक्षा व व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में संचार सुविधाओं का अभाव है। ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात की सुविधाओं का अभाव है। ग्रामीणवासियों ने बताया कि हम आकस्मिक कार्य को समय से नहीं कर सकते जैसे बीमारी की स्थिति में चिकित्सा आदि।ग्रामीण क्षेत्रों में सुरक्षा व्यवस्था के व्यापक इन्तजाम न होने के

कारण ग्रामीणजन अपने को ग्रामीण क्षेत्रों में असुरक्षित महसूस करते हैं।

ग्रामवासियों में सामाजिक निराशा पैदा होती जा रही है। इन सबके पीछे एकमहत्त्वपूर्ण कारक यह भी है कि उनके समाज के कुशल कामगार, कौशलप्राप्त व्यक्ति ग्राम छोड़कर चले जाते हैं। रह गये शेष परिवारजन अपने को निराश अनुभव करनेलगते हैं।

अन्य समस्याऐं

मनोवैज्ञानिक समस्याऐं

कौशल पलायन का ग्रामीणजनों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़ता है जो दो प्रकार का है। एक तो वे गाँव छोड़कर जाते व्यक्तियों के कारण हताश होते हैं। विशेषकर पविारीजन अपने को उपेक्षित महसूस करते हैं। उन्हें लगता है कि यह व्यक्ति पास में ही जब रूकता यदि ग्राम में रोजगार व आय के अवसर होते। दूसरी ओर उनमें भी ग्राम छोड़कर शहर जाने का मनोवैज्ञानिक प्रभाव शहर के प्रति होता है। इस प्रकार एक अलग तरह का अवसादभाव ग्रामीणजनों के मन में होता है।

सांस्कृतिक समस्याऐं

कौशलप्राप्त कारीगरों, हस्तकाकरों व शिल्पकारों, कलाकारों का ग्रामीण सांस्कृतिक जीवन में विशेष महत्व रहा है। उनके माध्यम से ग्रामीण लोक संस्कृति जीवित रही है ग्रामीण भारत की आत्मा है जिसे इन्हीं कारीगरों, कलाकारों व शिल्पकारों आदि ने वन्त रखा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अजीज, अब्दुल, द रूरल पुअर प्रोब्लम्स एण्ड प्रोस्पेक्टस'' आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली (1983)

2. गौड, के०डी० व सिंह, अनिल कुमार, ''इकॉनोमिक्स ऑफ एग्रो इण्डस्ट्रीज'' सनराइज पब्लिकेशन, 2006

3. घोष, बी०एन०, 'इकॉनोमिक डेवलपमेंट एण्ड सोशल चेन्ज', 1986

4. दत्तचन्द्र, ''विकास गरीबी और समता, रीगल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009

5. मदन जी०आर०, ''इण्डियास डेवलपिंग विलेजेज'' प्रिन्ट हाउस (इण्डिया), लखनऊ, 1983

6. वर्मा, उदय कुमार, रहमान, एम०एम० व चौहान, पूनम एस०. ''इम्पॉवरिंग –रूरल वर्कर्स सनराइज पब्लिकेशन, लक्ष्मी नगर, नई दिल्ली, 2005